ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

(आचार्य श्री भूतबलिप्रणीतसूत्राणि)

पंचम ग्रन्थः

(अंतरानुगम-भावानुगमअल्पबहुत्वानुगमाः)

गणिनी ज्ञानमती विरचित

सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितः

अथ अन्तरानुगमः

मंगलाचरणं

सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति, त्रैकाल्ये ये नरोत्तमाः।
सर्वार्थसिद्धिदातारः, ते मे कुर्वन्तु मंगलम्।।१।।

अत्र श्रीपार्श्वजिनालये श्रीसिद्धचक्रविधानावसरे चत्त्वारिंशदुत्तरद्विसहस्रगुणनामसहितसिद्धेभ्यो नमस्क्रियते स्वात्मसिद्धयै मया। यद्यपि एकैकस्यापि सिद्धपरमेष्ठिनः अनन्तानन्तगुणाः सन्ति तथापि वक्तुमशक्यत्वात् मध्यमरूपेण सहस्रादिनामभिः गुणस्तवनं क्रियते मुनिपुंगवेनेति। पुनश्च—

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—जो महापुरुष तीनों कालों में—भूतकाल में सिद्ध हो चुके हैं, वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं और भविष्य में सिद्धपद को प्राप्त करेंगे, वे सर्वार्थसिद्धि को प्रदान करने वाले—सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करने वाले सिद्धपरमेष्ठी भगवान मेरा और तुम्हारा मंगल करें अर्थात् हम सभी के लिए मंगलकारी होवें।

यहाँ (मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में) तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जिनमंदिर में श्रीसिद्धचक्रमंडल विधान के अवसर पर मैंने निजात्मा की सिद्धि के लिए दो हजार चालीस गुणनाम से सहित सिद्धों को नमन किया है। यद्यपि एक-एक सिद्ध परमेष्ठी में अनन्तानन्त गुण होते हैं, फिर भी उन अनन्तानन्त गुणों का कथन करने में असमर्थ मुनिपुंगव (श्रीजिनसेनाचार्य) के द्वारा मध्यम रूप से हजार आदि नामों के द्वारा उनका गुणस्तवन किया गया है।

पुनश्च श्लोक में कहा है—

आद्यन्तमध्यहीनाय प्रथमाय जिनेशिने।
दशार्द्धचापतुंगाय ऋषभाय नमो नमः।।२।।

श्रीमहावीरस्वामिहिमगिरिमध्यस्थिति पद्मसरोवरमुखकमलान्निर्गत्य श्रीगौतमस्वामिमुखकुण्डे पतित्वा प्रवाह्यमाना द्वादशांगांगबाह्यनदी—गंगानदी परमपवित्रास्ति। इयं आचार्यपरम्पराभिः वहन्ती श्रीधरसेनाचार्येण स्पृष्टा। इमां श्रीधरसेनाचार्यवाणीस्त्रोतस्विनीमवगाह्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिभट्टारकौ श्रुतज्ञानिनौ पवित्रीबभूवतुः।

आभ्यामाचार्याभ्यां इमे षट्खण्डागमग्रन्था ग्रथिताः। एषु जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति सन्ति।

अत्र प्रथमखण्डे जीवस्थाननाम्नि षट् ग्रन्थाः—पुस्तकानि विभक्तानि।

अस्मिन् जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगमः, क्षेत्रप्रमाणानुगमः, स्पर्शनानुगमः, कालानुगमः, अन्तरानुगमः, भावानुगमः, अल्पबहुत्वं चेति अष्टौ अनुयोगद्वाराणि पुनः नवचूलिकानाम-प्रकरणमस्ति।

अत्र प्रथमग्रन्थे सत्प्ररूपणा, द्वितीयग्रन्थे सत्प्ररूपणान्तर्गतालापाः, तृतीयग्रन्थे द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगमौ, चतुर्थग्रन्थे स्पर्शनानुगम-कालानुगमौ, पंचमग्रन्थे अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानि च गृहीतानि। षष्ठग्रन्थे नवचूलिकाः कथयिष्यन्ति।

संप्रति अस्मिन् पंचमग्रन्थे षड् महाधिकाराः क्रियन्ते। अन्तरानुगमे प्रथमद्वितीयौ, भावानुगमे तृतीयचतुर्थौ, अल्पबहुत्वे च पञ्चमषष्ठौ एवं विभक्ताः सन्ति।

श्लोकार्थ—आदि-मध्य और अन्त से रहित, पाँच सौ धनुष शरीर की अवगाहना वाले श्री प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।

श्री महावीर स्वामी रूपी हिमगिरि-हिमवान् पर्वत के मध्य में स्थित पद्मसरोवररूपी मुखकमल से निकलकर श्री गौतम गणधरस्वामी के मुखरूपी कुण्ड में गिरकर प्रवाहित हुई द्वादशांग और अंगबाह्यरूपी गंगा नदी परमपवित्र है। यह नदी आचार्य परम्परा से बहती हुई श्रीधरसेन आचार्य के द्वारा स्पर्शित हुई। श्री धरसेनाचार्य की उस ज्ञानगंगा में अवगाहन करके आचार्य श्री पुष्पदन्त और भूतबली भट्टारक ने श्रुतज्ञान से अपनी आत्मा को पवित्र किया।

इन्हीं दोनों आचार्यों ने इन षट्खण्डागम ग्रंथों को (सूत्रों की) रचना की है। वे जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्वविचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबंध नाम से जाने जाते हैं।

उनमें से यहाँ जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड छह ग्रंथ—पुस्तकों में विभक्त है।

इस जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रप्रमाणानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार हैं, पुनः नवचूलिका नाम का प्रकरण है।

उनमें से यहाँ प्रथम ग्रंथ में सत्प्ररूपणा है, द्वितीय ग्रंथ में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत आलाप अधिकार है। तृतीय ग्रंथ में द्रव्य प्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम है, चतुर्थग्रंथ में स्पर्शनानुगम और कालानुगम है, पंचम ग्रंथ में अन्तरानुगम-भावानुगम और अल्पबहुत्व का वर्णन है तथा छठे ग्रंथ में नव चूलिकाओं का कथन करेंगे।

अब इस पंचम ग्रंथ में छह महाधिकार करते हैं। अन्तरानुगम में प्रथम और द्वितीय, भावानुगम में तृतीय-चतुर्थ तथा अल्पबहुत्व नामक प्रकरण में पंचम-षष्ठ ये दो-दो महाधिकार हैं।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे सप्तनवत्यधिकत्रिशतसूत्रैः अन्तरानुगमोऽनुयोगद्वाराख्यः प्रारभ्यते। तत्र ओघादेशाभ्यां द्वौ महाधिकारौ स्तः। तस्मिन् गुणस्थानप्ररूपके प्रथमे महाधिकारे विंशतिसूत्राणि कथ्यन्ते।

मार्गणाप्ररूपके द्वितीयमहाधिकारे सप्तसप्तत्यधिकत्रिशतसूत्राणि सन्ति। तत्रापि तावत् गतिमार्गणायां अशीतिः सूत्राणि, इंद्रियमार्गणायां एकोनत्रिंशत्सूत्राणि, कायमार्गणायां त्रयोविंशतिः,योगे पंचविंशतिः, वेदे पंचचत्वारिंशत्, कषाये षट्, ज्ञानमार्गणायां एकोनत्रिंशत्, संयममार्गणायां चतुर्विंशतिः, दर्शने चतुर्दश, लेश्यायां द्वात्रिंशत्, भव्यमार्गणायां त्रीणि, सम्यक्त्वमार्गणायां अष्टचत्वारिंशत्, संज्ञिमार्गणायां पंच, आहारमार्गणायां च चतुर्दश सूत्राणि सन्तीति समुदायपातनिका।

अधुना प्रथममहाधिकारे सप्तस्थलैः विवरणं क्रियते। तत्र तावत् प्रथमस्थले अंतरानुगमकथनप्रतिज्ञारूपेण ''अंतराणुगमेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टीनां अंतरप्रतिपादनत्वेन ''ओघेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयस्थले सासादनसम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानयोः अंतरप्रतिपादनपरत्वेन ''सासण'' इत्यादिचत्वारि सूत्राणि, तदनंतरं चतुर्थस्थले असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि अप्रमत्तान्तानां अंतरप्ररूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं, तत्पश्चात् पंचमस्थले चतुर्णामुपशामकानां अंतरकथनमुख्यत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं, ततः परं षष्ठस्थले क्षपकाणां अयोगिनां च अंतरप्रतिपादनत्वेन ''चदुण्हं खवग-'' इत्यादिसूत्रत्रयं, पुनश्च सप्तमस्थले सयोगिनां अंतरप्ररूपणत्वेन ''सजोगि-'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका सूचितास्ति।

यहाँ षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के इस पंचम ग्रंथ में तीन सौ सत्तानवे सूत्रों के द्वारा अन्तरानुगम नाम का अनुयोगद्वार प्रारंभ हो रहा है। उस अनुयोगद्वार में ओघ और आदेशरूप में दो महाधिकार हैं। उसमें गुणस्थान का प्ररूपण करने वाले प्रथम महाधिकार में बीस (२०) सूत्र कहे जा रहे हैं।

मार्गणा का प्ररूपण करने वाले द्वितीय महाधिकार में तीन सौ सतत्तर (३७७) सूत्र हैं। उसमें भी गतिमार्गणा में अस्सी (८०) सूत्र हैं, इन्द्रियमार्गणा में उनतीस (२९) सूत्र हैं, कायमार्गणा में तेईस (२३) सूत्र हैं, योग मार्गणा में पच्चीस (२५) सूत्र हैं, वेदमार्गणा में पैंतालिस (४५) सूत्र हैं, कषायमार्गणा में छह (६) सूत्र हैं, ज्ञानमार्गणा में उनतीस (२९) सूत्र हैं, संयममार्गणा में चौबीस (२४) सूत्र हैं, दर्शनमार्गणा में चौदह (१४) सूत्र हैं, लेश्यामार्गणा में बत्तीस (३२) सूत्र हैं, भव्यमार्गणा में तीन (३) सूत्र हैं, सम्यक्त्व मार्गणा में अड़तालिस (४८) सूत्र हैं, संज्ञी मार्गणा में पाँच (५) सूत्र हैं और आहारमार्गणा में चौदह (१४) सूत्र हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब प्रथम महाधिकार में सात स्थलों के विवरण को कहते हैं। उनमें से प्रथम स्थल में अन्तरानुगम के कथन की प्रतिज्ञारूप से ''अंतराणुगमेण'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर बतलाने हेतु ''ओघेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानों का अन्तर बतलाने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक का अंतर बताने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थल में उपशमश्रेणी वाले चारों गुणस्थानों का अंतर बतलाने हेतु ''चदुण्हं'' इत्यादि चार सूत्र हैं। आगे छठे स्थल में क्षपक श्रेणी वालों का एवं अयोगिकेवलियों का अंतर बतलाने वाले ''चदुण्हं खवग...'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः सातवें स्थल में सयोगिकेवलियों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''सजोगि...'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

संप्रति अंतरानुगमप्रतिपादनाय प्रतिज्ञारूपेण सूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण—

अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नाम-स्थापना-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदेन षड्विधं अंतरं। तत्र नामान्तरं अन्तरशब्दो बाह्यार्थान् मुक्त्वा स्ववाचकत्वे प्रवृत्तः वर्तते। स्थापनान्तरं द्विविधं सद्भावासद्भावभेदेन। भरत-बाहुबलिनोः मध्ये उद्वेलयतोः नदः सद्भावस्थापनान्तरं। अन्तरमिति बुद्ध्या संकल्प्य दण्डवाणधनुरादयः असद्भावस्थापनान्तरं। द्रव्यान्तरं द्विविधं आगमनोआगमभेदेन। अन्तरप्राभृतज्ञायकः अनुपयुक्तः अन्तरद्रव्यागमो वा आगमद्रव्यान्तरं। नोआगमद्रव्यान्तरं ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदेन त्रिविधं। आधारे आधेयोपचारेण लब्धान्तरसंज्ञं ज्ञायकशरीरं भाविवर्तमान, समुत्यक्तभेदेन त्रिविधं भवति।**

अनाधारतया स्थितस्त भाविनः अंतरव्यपदेशः कथं ?

नैष दोषः, ओदनपर्यायानाधारेष्वपि तंदुलेषु अत्र ओदनव्यपदेशोपलंभात्।

भूतज्ञायकशरीरे कथं अंतरव्यवहारः?

न, राजपर्यायानाधारेऽपि पुरुषे राजा आगच्छति इति व्यवहारोपलंभात्।

भाविनो आगमद्रव्यान्तरं भाविकाले अंतरप्राभृतज्ञायकः,संप्रति अन्यपदार्थस्य उपयोगे सत्यपि

अब श्री भूतबली आचार्य यहाँ पर अन्तरानुगम अनुयोगद्वार का प्रतिपादन करने हेतु प्रतिज्ञारूप सूत्र को अवतरित करते हैं—

सूत्रार्थ—

अन्तरानुगम से निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से अन्तर छह प्रकार का होता है। उनमें बाह्य अर्थों को छोड़कर अपने आप में अर्थात् स्ववाचकता में प्रवृत्त होने वाला 'अन्तर' यह शब्द नाम अन्तर नामका निक्षेप है। स्थापना अन्तर सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकार का है। भरत और बाहुबली के बीच उमड़ता हुआ नद सद्भाव स्थापना अंतर है, अन्तर इस प्रकार की बुद्धि से संकल्प करके दंड, बाण, धनुष आदिक असद्भाव स्थापना अन्तर है।

द्रव्यान्तर आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। अन्तरविषयक प्राभृत के ज्ञायक तथा वर्तमान में अनुपयुक्त पुरुष को आगम द्रव्यान्तर कहते हैं। नोआगमद्रव्यान्तर ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। आधार में आधेय के उपचार से प्राप्त हुई है अन्तर संज्ञा जिसको ऐसा ज्ञायक शरीर भावि, वर्तमान और समुत्त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है।

शंका—अनाधारता से स्थित अर्थात् वर्तमान में जो अन्तरागम का आधार नहीं है ऐसे भावी शरीर के 'अन्तर' इस संज्ञा का व्यवहार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि भातरूप पर्याय के आधार न होने पर भी तंदुलों में यहाँ अर्थात् व्यवहार में भात संज्ञा पाई जाती है।

शंका—भूतज्ञायक शरीर में यह अन्तर का व्यवहार कैसे बनेगा ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि राज्य पर्याय के नहीं धारण करने वाले पुरुषों में भी 'राजा' इस प्रकार का व्यवहार पाया जाता है।

भविष्यकाल में जो अन्तर शास्त्र का ज्ञायक होगा, परन्तु वर्तमान में अन्य पदार्थ के उपयोग के होते हुए

अन्तरप्राभृतावगमरहितः। तद्व्यतिरिक्तद्रव्यान्तरं त्रिविधंसचित्ताचित्तमिश्रभेदेन। तत्र सचित्तान्तरं ऋषभसंभवयोर्मध्ये स्थितोऽजितो भगवान्। अचित्त तद्व्यतिरिक्तद्रव्यान्तरं नाम घनोदधितनुवातयोर्मध्ये स्थितो घनानिलः। मिश्रान्तरं ऊर्जयन्तशत्रुञ्जययोर्मध्ये स्थितग्रामनगरादीनि। क्षेत्रान्तरकालान्तरे द्रव्यान्तरे प्रविष्टे, षड्द्रव्यव्यतिरिक्तक्षेत्रकालयोरभावात्।

भावान्तरं द्विविधं—आगमनोआगमभेदेन अन्तरप्राभृतज्ञायकः उपयुक्तः भावागमो वा आगमभावान्तरं। औदयिकादिपंचभावेषु द्वयोर्भावयोर्मध्ये स्थितो विवक्षितभावः नोआगमभावान्तरं।

अत्र केनान्तरेण प्रयोजनम् ?

नोआगमभावान्तरेण प्रयोजनमस्ति। तत्रापि अजीवभावान्तरं मुक्त्वा जीवभावान्तरं प्रकृतमस्ति, इह अजीवभावान्तरेण प्रयोजनाभावात्।

अन्तरमुच्छेदः विरहः परिणामान्तरगमनं नास्तित्वगमनं अन्यभावव्यवधानं चेति एकार्थः। एतस्य अन्तरस्य अनुगमः अन्तरानुगमः। तेन अन्तरानुगमेन द्विविधः निर्देशः, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन इति।

त्रिविधो निर्देशः कथं न भवेत् ?

न, तृतीयस्य नयस्याभावात्। सामान्यविशेषव्यतिरिक्ततद्विषयानुपलंभात्। एवं मनसि कृत्वा 'ओघेन आदेशेन' इति उक्तं सूत्रे।

एकेन निर्देशेन पर्याप्तमिति चेत् ?

भी अन्तर शास्त्र के ज्ञान से रहित है, ऐसे पुरुष को भावि नो आगम द्रव्यान्तर कहते हैं।

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें से वृषभ जिन और संभव जिन के मध्य में स्थित अजित जिन सचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर के उदाहरण हैं। घनोदधि और तनुवात के मध्य में स्थित घनवात अचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर है। ऊर्जयन्त और शत्रुञ्जय के मध्य में स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर हैं। क्षेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तर में प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि छह द्रव्यों में व्यतिरिक्त क्षेत्र और काल का अभाव है।

भावान्तर आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। अन्तर शास्त्र के ज्ञायक और उपयुक्त पुरुष को आगम भावान्तर कहते हैं, अथवा भावरूप अन्तर आगम को आगम भावान्तर कहते हैं। औदयिक आदि पाँच भावों में से किन्हीं दो भावों के मध्य में स्थित विवक्षित भाव को नोआगम भावान्तर कहते हैं।

शंका—यहाँ पर किस प्रकार के अन्तर से प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगम भावान्तर से प्रयोजन है। उसमें भी अजीव भावान्तर को छोड़कर जीव भावान्तर प्रकृत है, क्योंकि यहाँ पर अजीव भाव के अन्तर से कोई प्रयोजन नहीं है। अन्तर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभाव व्यवधान, ये सब एकार्थवाची नाम हैं। इस प्रकार के अन्तर के अनुगम को अन्तरानुगम कहते हैं उस अन्तरानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, क्योंकि वह निर्देश द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने वाला है।

शंका—तीन प्रकार का निर्देश क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीसरे प्रकार का कोई नय ही नहीं है। सामान्य और विशेष से अतिरिक्त अन्य किसी विषय की उपलब्धि नहीं है, ऐसा मन में धारणकर "ओघ से और आदेश से" ऐसा ही सूत्र में कहा है।

शंका—एक ही निर्देश करना पर्याप्त था ?

न, एकेन द्विनयावलम्बिजीवानामुपकारकरणे उपायाभावात्।

प्रोक्तं चान्यत्रापि—''विवक्षितस्य गुणस्थानस्य गुणस्थानान्तरसंक्रमे सति पुनरपि तद्गुणस्थानप्राप्तिः यावन्न भवति तावत् कालोऽन्तरमुच्यते। तदन्तरं सामान्यविशेषभेदात् द्विप्रकारं भवति[१]।''

एवं प्रथमस्थले अन्तरानुगमलक्षणकथनमुख्यत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना 'यथा उद्देशः तथा निर्देशः' इति न्यायरक्षणार्थं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्तिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते—

ओघेण मिच्छादिट्ठीणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सूत्रे 'केवचिरं कालादो' इति पृच्छावचनं अस्य सूत्रस्य प्रमाणत्वं प्रतिपादयति। मिथ्यात्वपर्यायपरिणतजीवानां त्रिष्वपि कालेषु व्युच्छेदो विरहः अभावो नास्ति इति नास्त्यन्तरं एतेषां।**

अन्तरस्य प्रतिषेधे कृते सः प्रतिषेधः तुच्छाभावरूपो न भवतीति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'निरन्तरग्रहणं' वर्तते, किंच अत्र अन्तरं भावान्तरभावरूपमेव भवति। अथवा पर्यायार्थिकनयावलम्बिजीवानुग्रहार्थं ''णत्थि अन्तरं'' इति प्रतिषेधवचनं, द्रव्यार्थिकनयावलम्बिजीवानुग्रहार्थं ''णिरंतरं'' इति विधिवचनं। एषोऽर्थः उपरि सूत्रेषु सर्वत्र वक्तव्यः।

समाधान—नहीं, क्योंकि एक निर्देश से दोनों नयों के अवलम्बन करने वाले जीवों के उपकार करने में उपाय का अभाव है। अन्यत्र—तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी कहा है—

जब विवक्षित गुणस्थान गुणान्तररूप से संक्रमित हो जाता है और पुनः उसकी प्राप्ति होती है तो मध्य के काल को अन्तर कहते हैं। वह सामान्य और विशेष की अपेक्षा दो प्रकार का है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अन्तरानुगम का लक्षण—कथन करने की मुख्यता वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब ''जैसा उद्देश होता है वैसा ही निर्देश होता है'' इस न्याय की रक्षा के लिए मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर बतलाने हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

ओघ से मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—सूत्र में ''कितना काल होता है'' यह पृच्छावचन—प्रश्न पूछने रूप वचन सूत्र की प्रामाणिकता को प्रतिपादित करता है।

मिथ्यात्व पर्याय से परिणत जीवों का तीनों ही कालों में व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए। अन्तर के प्रतिषेध करने पर वह प्रतिषेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है। किन्तु भावान्तरभावरूप होता है, इस बात के बतलाने के लिए 'निरन्तर' पद का ग्रहण किया है। प्रतिषेध से व्यतिरिक्त होने के कारण विधिरूप से मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल रहते हैं यह अर्थ कहा गया है। अथवा, पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने वाले जीवों के अनुग्रह के लिए 'अन्तर नहीं है' इस प्रकार का प्रतिषेध वचन और द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने वाले जीवों के अनुग्रह के लिए 'निरन्तर' इस प्रकार का विधिपरक वचन कहा गया है। यह अर्थ आगे के सभी सूत्रों में भी सभी जगह लगा लेना चाहिए।

---

१. तत्त्वार्थवृत्तिः, अ. १, सूत्र ८।

अधुना एकजीवापेक्षया जघन्यान्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व-संयमासंयम-संयमेषु बहुशः परिवर्तनं कृत्वा परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्वं गतः, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालं सम्यक्त्वेन स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः, लब्धमन्तर्मुहूर्तं सर्वजघन्यं मिथ्यात्वान्तरम्।**

कश्चिदाशंकते—यत्प्रथमं मिथ्यात्वं तत्पुनः सम्यक्त्वोत्तरकाले न भवति, सम्यक्त्वप्राप्तेः पूर्वकाले वर्तमानस्य मिथ्यात्वस्य उत्तरकाले प्रवृत्तिविरोधात्। न च तत्प्रथममेव मिथ्यात्वं उत्तरकाले उत्पद्यते, उत्पन्नस्य उत्पत्तिविरोधात् ततः सम्यक्त्वानंतरं अंतिममिथ्यात्वं प्रथममिव न भवति, अतः अन्तरस्याभावः इति चेत् ?

अस्य परिहारः उच्यते—सत्यमेवेदं यदि शुद्धः पर्यायनयः अवलम्ब्यते, किन्तु नैगमनयमवलम्ब्यात्र प्ररूपणा क्रियते, तस्य सामान्यविशेषोभय विषयत्वात्। ततः नैष दोषः। तद्यथा—प्रथमान्तिममिथ्यात्वमुभयमपि पर्यायाः अभिन्नाः, मिथ्यात्वकर्मोदयजातत्वेन आप्तागमपदार्थानामश्रद्धधानेन एकजीवाधारत्वेन च भेदाभावात्। न पूर्वोत्तरकालभेदेन तयोर्भेदः, तथा विवक्षाभावात्। तस्मात् पूर्वोत्तरकालेषु अच्छिन्नस्वरूपेण स्थितमिथ्यात्वस्य

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर बतलाने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—एक मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम में बहुत बार परिवर्तन करके परिणामों के निमित्त से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थान का अन्तर प्राप्त हो गया।

यहाँ पर कोई शंका करता है कि अन्तर करने के पूर्व जो पहले का मिथ्यात्व था, वही पुनः सम्यक्त्व के उत्तरकाल में नहीं होता है, क्योंकि सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्वकाल में वर्तमान मिथ्यात्व की उत्तरकाल में अर्थात् सम्यक्त्व छोड़ने के पश्चात् प्रवृत्ति होने का विरोध है तथा वही पहला मिथ्यात्व उत्तरकाल में उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उत्पन्न हुई वस्तु के पुनः उत्पन्न होने का विरोध है। इसलिए सम्यक्त्व छूटने के पश्चात् होने वाला अंतिम अर्थात् दूसरा मिथ्यात्व पहले का मिथ्यात्व नहीं हो सकता है, इससे अन्तर का अभाव ही सिद्ध होता है ?

यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हैं—उक्त कथन सत्य ही है, यदि शुद्ध पर्यायार्थिक नय का अवलंबन किया जाये। किन्तु यहाँ नैगमनय का अवलंबन लेकर अन्तरप्ररूपणा की जा रही है, क्योंकि वह नैगमनय सामान्य तथा विशेष इन दोनों को विषय करता है, इसलिए यह कोई दोष नहीं है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—अन्तरकाल के पहले का मिथ्यात्व और पीछे का मिथ्यात्व, ये दोनों पर्याय हैं, जो कि अभिन्न हैं, क्योंकि, मिथ्यात्वकर्म के उदय से उत्पन्न होने के कारण आप्त, आगम और पदार्थों के अश्रद्धान की अपेक्षा तथा एक ही जीव द्रव्य के आधार होने से उनमें कोई भेद नहीं है और न पूर्वकाल तथा उत्तरकाल के भेद की अपेक्षा भी उन दोनों पर्यायों में भेद है, क्योंकि इस कालभेद की यहाँ विवक्षा नहीं की गई है। इसलिए अन्तर के पहले और बाद में अविच्छिन्नरूप से स्थित सामान्य (द्रव्यार्थिकनय) के अवलम्बन से

सामान्यावलम्बनेन एकार्थं प्राप्तस्य सम्यक्त्वपर्यायोऽन्तरं भवति। एषोऽर्थः सर्वत्र प्रयोजयितव्यः।

एकजीवापेक्षया मिथ्यात्वस्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।।४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एतस्योदाहरणं—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा लांतवकापिष्ठकल्पवासिदेवेषु चतुर्दशसागरोपमायुःस्थितिकेषु उत्पन्नः एकं सागरोपमं गमयित्वा द्वितीयसागरोपमादिसमये सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। त्रयोदशसागरोपमानि तत्र स्थित्वा सम्यक्त्वेन सह च्युतः मनुष्यो जातः। तत्र संयमं संयमासंयमं वा अनुपाल्य मनुष्यायुःन्यून-द्वाविंशतिसागरोपमायुःस्थितिकेषु आरणाच्युतदेवेषु उत्पन्नः। ततः च्युतः मनुष्यो जातः। तत्र संयममनुपाल्य उपरिमग्रैवेयकदेवेषु मनुष्यायुष्कन्यून-एकत्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु उत्पन्नः। अंतर्मुहूर्तोन-षट्षष्टिसागरोपमचरमसमये परिणामप्रत्ययेन सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य विश्रम्य च्युतो मनुष्यो जातः। तत्र संयमं संयमासंयमं वा अनुपाल्य मनुष्यायुषा न्यून-विंशतिसागरोपमायुःस्थितिकेषु आनतप्राणत कल्पवासिदेवेषु उत्पद्य पुनः यथाक्रमेण मनुष्यायुःन्यून-द्वाविंशति-चतुर्विंशति-सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पद्य अंतर्मुहूर्तोन-द्वि-षट्षष्टिसागरोपमचरमसमये मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं अंतर्मुहूर्तोनं द्विबारं षट्षष्टिसागरोपमानि। एष उत्पत्ति क्रमः अव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थं उक्तः।**

संग्रह को प्राप्त मिथ्यात्व का सम्यक्त्व पर्यायरूप अन्तर होता है, यह सिद्ध हुआ। यही अर्थ आगे सर्वत्र योजित कर लेना चाहिए।

अब एक जीव की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान के उत्कृष्ट अंतर को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम काल है।।४।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—इसका उदाहरण देते हैं—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थिति वाले लांतव-कापिष्ठ कल्पवासी देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ एक सागरोपम काल बिताकर दूसरे सागरोपम के आदि समय में सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। तेरह सागरोपम काल वहाँ पर रहकर सम्यक्त्व के साथ ही च्युत हुआ और मनुष्य हो गया। उस मनुष्य भव में संयम को अथवा संयमासंयम को अनुपालन कर इस मनुष्यभवसंबंधी आयु से कम बाईस सागरोपम आयु की स्थिती वाले आरण-अच्युतकल्प के देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभव में संयम का अनुपालन कर उपरिम ग्रैवेयक में मनुष्य आयु से कम इकतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले अहमिन्द्र देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कम छ्यासठ सागरोपम काल के चरम समय में परिणामों के निमित्त से सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। उस सम्यग्मिथ्यात्व में अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त होकर, विश्राम लेकर, च्युत होकर, मनुष्य हो गया। उस मनुष्य भव में संयम को अथवा संयमासंयम का परिपालन कर इस मनुष्यभवसंबंधी आयु से कम बीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले आनत-प्राणत कल्पों के देवों में उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रम से मनुष्यायु से कम बाईस और चौबीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागरोपमकाल के अंतिम समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागरोपम काल प्रमाण अन्तर प्राप्त हुआ। यह पूर्व में बताया गया उत्पत्ति का क्रम अव्युत्पन्न जनों—

परमार्थतः पुनः येन केनापि प्रकारेण द्वे षट्षष्टिसागराः पूरयितव्याः।

अन्यत्रापि तथैवोक्तं—''उत्कर्षेण द्वे षट्षष्टी देशोने सागरोपमानां। तत्कथं ? वेदकसम्यक्त्वेन युक्तः एकां षट्षष्टिं तिष्ठति। वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण एतावन्मात्रकालत्वात्। पुनरवान्तरे अंतर्मुहूर्तं यावत् सम्यग्मिथ्यात्वं गतस्य पुनरौपशमिक-सम्यक्त्वग्रहणयोग्यता, पल्योपमासंख्येयभागे गते सति। एतावदन्तरे तत्र वेदकसम्यक्त्वग्रहणयोग्यता, ग्रहणे योग्यतायाः एवं संभवात्[१]।''

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिनानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्तिनोरन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं उच्यते—द्वौ जीवौ आदिं कृत्वा एकोत्तरक्रमेण पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रविकल्पेन उपशमसम्यग्दृष्टयः उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयमादिं यावत् षडावलिकावशेषे**

अल्पज्ञानी जनों को समझाने के लिए कहा है। परमार्थ से तो जिस किसी भी प्रकार से दो छ्यासठ सागरोपम काल पूरा करना चाहिए।

अन्यत्र—तत्त्वार्थवृत्ति में भी कहा है—

एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो बार छ्यासठ सागर अर्थात् एक सौ बत्तीस सागर है।

शंका—यह काल कैसे घटित होता है ?

समाधान—कोई जीव वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करने पर उत्कृष्ट छ्यासठ सागरकाल तक रह सकता है। यह क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्टकाल है। पुनः अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान में रहकर पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यद्यपि पल्य के असंख्यातवें भाग काल के बीत जाने पर औपशमिक सम्यग्दर्शन ग्रहण करने की योग्यता आती है, परन्तु वेदक सम्यग्दर्शन को अन्तर्मुहूर्त में ही ग्रहण कर सकता है अतः अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः वेदक सम्यग्दर्शन को ग्रहणकर छ्यासठ सागर तक सम्यग्दृष्टि रह जाता है अतः मिथ्यात्व गुणस्थान से छूटकर पुनः मिथ्यात्व गुणस्थान में जाने का उत्कृष्ट अन्तर १३२ सागर होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होता है।।५।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—सर्वप्रथम सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कहते हैं—

दो जीवों को आदि करके एक-एक अधिक के क्रम से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र विकल्प से

---

१. तत्त्वार्थवृत्तिः, अ. १, सूत्र ८।

सासादनं गताः। तावदपि कालं सासादनगुणस्थानेन स्थित्वा सर्वे मिथ्यात्वं गताः। त्रिष्वपि लोकेषु सासादनानामभावो जातः। पुनः द्वितीयसमये सप्ताष्टजनाः आवलिकायाः असंख्यातभागमात्राः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रा वा उपशमसम्यग्दृष्टयः आसादनं गताः। लब्धमन्तरमेकसमयः।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरमुच्यते — सप्ताष्टजनाः बहवो वा सम्यग्मिथ्यादृष्टयः नानाजीवगतसम्यग्मिथ्यादृष्टिकालक्षयेण सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा सर्वे प्रतिपन्नाः। त्रिष्वपि लोकेषु सम्यग्मिथ्यादृष्टयः एकसमयमभावीभूताः। अनन्तरसमये मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयो वा सप्ताष्टजनाः बहवो वा सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नाः। लब्धमन्तरमेकसमयः।

अधुना नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **प्रथमं सासादनानामन्तरं कथ्यते — सप्ताष्टजनाः बहवो वा उपशमसम्यग्दृष्टयः आसादनं गताः। तैः सासादनैः आयव्ययवशेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालं सासादनगुणस्थानप्रवाहः अविच्छिन्नः कृतः। पुनः अनन्तरसमये सर्वे मिथ्यात्वं गताः। पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालं सासादनगुणस्थानमन्तरितं। ततः उत्कृष्टान्तरस्य अनन्तरसमये सप्ताष्टजनाः बहवो वा उपशमसम्यग्दृष्टयः सासादनं गताः। लब्धमन्तरं पल्योपमस्य असंख्यातभागः।**

उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय को आदि करके अधिक से अधिक छह आवली काल के अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए। जितना काल अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्व को छोड़ा था, उतने ही कालप्रमाण सासादन गुणस्थान में रहकर वे सब जीव मिथ्यात्व को प्राप्त हुए और तीनों ही कालों में सासादनसम्यग्दृष्टियों का एक समय के लिए अभाव हो गया। पुनः द्वितीय समय में अन्य सात-आठ जीव, अथवा आवली के असंख्यातवें भागमात्र जीव अथवा पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार सासादन गुणस्थान का एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का जघन्य अन्तर कहते हैं — सात-आठ जन अथवा बहुत से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्व संबंधी काल के क्षय से सम्यक्त्व को अथवा मिथ्यात्व को सभी के सभी प्राप्त हुए और तीनों ही लोकों में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक समय के लिए अभावरूप हो गये। पुनः अनन्तर समय में ही मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि सात-आठ जीव अथवा बहुत से जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुए इस प्रकार से सम्यग्मिथ्यात्व का एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया।

अब नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त दोनों गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — सर्वप्रथम सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कहते हैं — सात-आठ जन अथवा बहुत से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए। उन सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा आय और व्यय के क्रमवश पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल तक सासादन गुणस्थान का प्रवाह अविच्छिन्न चला। पुनः उसका काल समाप्त होने पर दूसरे समय में ही वे सभी जीव मिथ्यात्व को प्राप्त हो गये और पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल तक के लिए सासादन गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हो गया। पुनः इस पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल के

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं उच्यते—नानाजीवगतसम्यग्मिथ्यात्वकाले उत्कृष्टान्तरयोग्ये अतिक्रान्ते सर्वे सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपन्नाः। अन्तरितं सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानं। पुनः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रोत्कृष्टान्तरकालस्य अनंतरसमये अष्टाविंशतिसत्कर्मिमिथ्यादृष्टयः वेदकसम्यग्दृष्टयः उपशमसम्यग्दृष्टयो वा सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नाः। लब्धमन्तरं पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

अनयोर्गुणस्थानवर्तिनोः एकजीवापेक्षया जघन्यकालप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सासादनसम्यग्दृष्टेर्जघन्यान्तरं उच्यते—एकः सासादनसम्यग्दृष्टिः उपशमसम्यक्त्वात् प्रत्यागतः कियन्तमपि कालं आसादनगुणस्थानेन स्थित्वा मिथ्यात्वं गतोऽन्तरितः। पल्योपमस्य असंख्यात-भागमात्रकालेन भूयः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गतः। लब्धमन्तरं पल्योपमस्य असंख्यातभागः।**

अंतर्मुहूर्तकालेन आसादनं किन्न नीतः ?

न, उपशमसम्यक्त्वेन विना सासादनगुणस्थानग्रहणाभावात्।

अनन्तर समय में ही सात-आठ जन अथवा बहुत से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार से पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण सासादन का उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तरकाल कहते हैं—उत्कृष्ट अन्तर के योग्य, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वकाल के व्यतिक्रान्त होने पर सभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व को अथवा मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्ट अन्तरकाल के अनन्तर समय में ही मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदकसम्यग्यदृष्टि अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान का पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों में एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल प्रतिपादित करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम के असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—सर्वप्रथम सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव का जघन्य अन्तर कहते हैं—उपशमसम्यक्त्व से पीछे लौटा हुआ कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने ही काल तक सासादनगुणस्थान में रहा और फिर मिथ्यात्व को प्राप्त हो अन्तर को प्राप्त हो गया। पुनः पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल से उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होकर, उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली काल अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

शंका—पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण काल के स्थान में अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सासादनगुणस्थान को क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व के बिना सासादनगुणस्थान के ग्रहण करने का अभाव है।

उपशमसम्यक्त्वमपि अंतर्मुहूर्तेन किन्न प्रतिपद्यते ?

न, उपशमसम्यग्दृष्टिः मिथ्यात्वं गत्वा सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योः उद्वेलयमानः तयोरन्तः-कोटिकोटिमात्रस्थितिं घातयित्वा सागरोपमात् सागरोपमपृथक्त्वाद् वा यावदधः न करोति तावत् उपशमसम्यक्त्वग्रहणसंभवाभावात्।

सासादनप्रत्यागतमिथ्यादृष्टिं संयमं ग्राहयित्वा दर्शनत्रिकमुपशाम्य पुनः चारित्रमोहमुपशाम्य अधोऽवतीर्य आसादनं गतस्य अंतर्मुहूर्तान्तरं किन्न प्ररूप्यते ?

न, उपशमश्रेण्यः अवतीर्य सासादनगुणस्थाने गमनाभावात्।

तदपि कुतो ज्ञायते ?

एतस्मात् चैव भूतबलिवचनात्[१]।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरमुच्यते—एकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः परिणामनिमित्तेन मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं वा प्रतिपन्नोऽन्तरितः। अंतर्मुहूर्तेन भूयः सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरमंतर्मुहूर्तम्।

संप्रति एकजीवापेक्षया उत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।८।।

शंका—यह जीव उपशमसम्यक्त्व को भी अन्तर्मुहूर्तकाल के पश्चात् ही क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की उद्वेलना करता हुआ उनकी अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति को घात करके जब तक सागरोपम से अथवा सागरोपम पृथक्त्व से नीचे नहीं करता है, तब तक उपशमसम्यक्त्व का ग्रहण करना संभव नहीं है।

शंका—सासादन गुणस्थान से पीछे लौटे हुए मिथ्यादृष्टि जीव को संयम ग्रहण कराकर और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशमन कराकर पुनः चारित्रमोह का उपशम कराकर और नीचे उतारकर, सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर क्यों नहीं बताया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमश्रेणी से उतरने वाले जीवों के सासादन गुणस्थान में गमन करने का अभाव पाया जाता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—भूतबली आचार्य के इसी वचन से जाना जाता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं—

एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को अथवा सम्यक्त्व को प्राप्त हो अन्तर को प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तकाल के पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अब एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।८।।

---

१. "भूदबलीवयणादो" (षट्खंडागम धवलाटीका पु. ५, पृ. ११)।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमतः सासादनस्योदाहरणं कथ्यते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिजीवेन त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नप्रथमसमये अनन्तः संसारः छिन्नः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। पुनः अंतर्मुहूर्तं सम्यक्त्वेन स्थित्वा आसादनं गतः (१)। मिथ्यात्वं प्रतिपद्य अन्तरितः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं मिथ्यात्वेन परिभ्रम्य अंतर्मुहूर्तावशेषे संसारे उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः एकसमयावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गतः। लब्धमन्तरं। भूयः मिथ्यादृष्टिः जातः (२)। वेदकसम्क्त्वं प्रतिपद्य (३) अनन्तानुबंधिप्रकृतीः विसंयोज्य (४) दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा (५) अप्रमत्तो जातः (६) ततः प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (७) क्षपकश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धिं संप्राप्य (८) अपूर्वक्षपकः (९) अनिवृत्तिक्षपकः (१०) सूक्ष्मक्षपकः (११) क्षीणकषायः (१२) सयोगिकेवली (१३) अयोगिकेवली (१४) भूत्वा सिद्धो जातः। एवं समयाधिकचतुर्दशान्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तं सासादनसम्यग्दृष्टेरूत्कृष्टान्तरं भवति।**

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरमुच्यते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिजीवेन त्रीण्यपि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं गृण्हता गृहीतसम्यक्त्वप्रथमसमये अनन्तसंसारं छित्वा अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। उपशमसम्यक्त्वेन अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (१) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (२)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिभ्रम्य अंतर्मुहूर्तावशेषे संसारे उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। तत्रैव अनन्तानुबन्धिप्रकृतीः विसंयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरं (३)। ततः वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य (४) दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा (५) अप्रमत्तो

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—यहाँ सर्वप्रथम सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव का उदाहरण देते हैं—

एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव ने अधःप्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय में अनन्त संसार को छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र कर लिया। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्व के साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। (१) मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक मिथ्यात्व के साथ परिभ्रमण कर संसार के अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया। पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ। (२) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त होकर (३) अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन कर (४) दर्शनमोहनीय का क्षयकर (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६) पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानों में सहस्रों परावर्तनों को करके (७) क्षपक श्रेणी के प्रायोग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (११) क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ (१२) सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्ध हो गया। इस प्रकार से एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण करते हुए सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। उपशमसम्यक्त्व के साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर वह (१) सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। (२) पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हो अन्तर को प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिभ्रमण कर संसार के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। वहीं पर अनंतानुबंधी प्रकृतियों का विसंयोजन करके सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। यह अन्तर प्राप्त हुआ। इस

जातः (६)। पुनः प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (७) क्षपकश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धय (८) अपूर्वक्षपकः (९) अनिवृत्तिक्षपकः (१०) सूक्ष्मक्षपकः (११) क्षीणकषायः (१२) सयोगिकेवली (१३) अयोगिकेवली (१४) भूत्वा सिद्धिं गतः। एतैः चतुर्दशान्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तं सम्यग्मिथ्यात्वस्योत्कृष्टमन्तरं भवति।

एवं तृतीयस्थले सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवानां जघन्योत्कृष्टान्तरकथनमुख्यत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि। संप्रति असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि-अप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१०।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिअप्रमत्तसंयतान्ताः निरन्तराः सन्ति एषां नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया गुणस्थानपरिपाट्या अर्थः उच्यते—एकः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयमासंयमं प्रतिपन्नः।

प्रकार से अन्तर उपलब्ध हो गया (३)। तत्पश्चात् वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीय का क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परावर्तनों को करके (७) क्षपकश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (८) अपूर्वकरणक्षपक (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११) क्षीण कषाय (१२) सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकर के सिद्धपद को प्राप्त हुआ। इन चौदह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सम्यग्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती मुनियों तक नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को आदि लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।९।।

उक्त गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१०।।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव निरन्तर ही रहते हैं, इनका कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा गुणस्थान की परिपाटी के अनुसार अर्थ कहते हैं—

अंतर्मुहूर्तमन्तरं कृत्वा भूयः असंयतसम्यग्दृष्टिः जातः। लब्धमन्तरमंतर्मुहूर्तं। संयतासंयतस्य उच्यते—एकः संयतासंयतः असंयतसम्यग्दृष्टिं मिथ्यादृष्टिं संयमं वा प्रतिपन्नः। अंतर्मुहूर्तं अन्तरं कृत्वा भूयः संयमासंयमं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरमंतर्मुहूर्तं जघन्यं संयतासंयतस्य।

प्रमत्तसंयतस्य उच्यते—एकः प्रमत्तः अप्रमत्तः भूत्वा सर्वलघु, पुनरपि प्रमत्तो जातः। लब्धमन्तर्मुहूर्तं जघन्यान्तरं प्रमत्तस्य। अप्रमत्तस्य उच्यते—एक अप्रमत्तः उपशमश्रेणिमारुह्य प्रतिनिवृत्तः अप्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं जघन्यमप्रमत्तस्य।

कश्चिदाह—अधस्तनगुणस्थानेषु किन्न अन्तरापितः?

आचार्यः प्राह—न उपशमश्रेणिसर्वगुणस्थानकालेभ्यः प्रमत्ताद्यधस्तनगुणस्थानकालस्य संख्यातगुणत्वात्।

एतेषां गुणस्थानपरिपाट्या उत्कृष्टान्तरप्ररूपणा क्रियते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिजीवेन त्रीणि करणानि कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं गृण्हता अनंतसंसारं छित्वा गृहीतसम्यक्त्वप्रथमसमये अर्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। उपशमसम्यक्त्वेन अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (१) षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गत्वा अंतरितः। मिथ्यात्वेन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं भ्रमित्वा अपश्चिमे भवे संयमं संयमासंयमं वा गत्वा कृतकरणीयः भूत्वा

एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर अन्तर को प्राप्त हो, पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अब संयतासंयत का अन्तर कहते हैं—एक संयतासंयत जीव, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को, अथवा संयम को प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर को प्राप्त हो पुनः संयमासंयम को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से संयतासंयत का अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

अब प्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—एक प्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघुकाल के पश्चात् फिर भी प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार प्रमत्तसंयत का अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—एक अप्रमत्तसंयत जीव उपशमश्रेणी पर चढ़कर पुनः लौटा और अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर अप्रमत्तसंयत का उपलब्ध हुआ।

यहाँ कोई शंका करता है कि नीचे के प्रमत्तादि गुणस्थानों में भेजकर अप्रमत्तसंयत का जघन्य अन्तर क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

तब आचार्यदेव समाधान देते हैं—नहीं, क्योंकि उपश्रेणी के सभी गुणस्थानों के कालों से प्रमत्तादि नीचे के एक गुणस्थान का काल भी संख्यातगुणा होता है।

अब गुणस्थानपरिपाटी से उत्कृष्ट अन्तर की प्ररूपणा करते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों करण करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करते हुए अनन्त संसार छेदकर सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में संसार को अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र कर लिया। पुनः उपशमसम्यक्त्व के साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर (१) उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अंतिम भव में संयम को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी होकर अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण संसार के अवशेष रह जाने पर परिणामों के निमित्त से असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त

अंतर्मुहूर्तावशेषे संसारे परिणामप्रत्ययेन असंयतसम्यग्दृष्टिः जातः। लब्धमन्तरं (२) पुनः अप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपद्य (३) प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (४) क्षपकश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धय (५) अपूर्वः (६) अनिवृत्तिः (७) सूक्ष्मः (८) क्षीणः (९) सयोगी (१०) अयोगी (११) भूत्वा परिनिर्वृत्तः। एवं एकादशान्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तमसंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

संयतासंयतस्य उच्यते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिना त्रीणि करणानि कृत्वा गृहीतसम्यक्त्वप्रथमसमये सम्यक्त्वगुणस्थानेन अनंतसंसारः छिन्नः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। सम्यक्त्वेन सह गृहीतसंयमासंयमेन अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गतः (१) अन्तरितः मिथ्यात्वेन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिभ्रम्य अपश्चिमे भवे सासंयमं सम्यक्त्वं संयमं वा प्रतिपद्य कृतकरणीयः भूत्वा परिणामप्रत्ययेन संयमासंयमं प्रतिपन्नः (२)। लब्धमन्तरं। अप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपद्य (३) प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तसहस्रं कृत्वा (४) क्षपकश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धय (५) अपूर्वः (६) अनिवृत्तिः (७) सूक्ष्मः (८) क्षीणः (९) सयोगी (१०) अयोगी (११) भूत्वा परिनिर्वृत्तः। एवमेकादशान्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तनमुत्कृष्टमन्तरं संयतासंयतस्य भवति।

प्रमत्तस्य उच्यते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिना त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं संयमं वा युगपत् प्रतिपद्यमानेन अनंतः संसारः कृन्तितः, अर्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः कृतः। अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (१) प्रमत्तो जातः

हुआ (२)। पुनः अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परावर्तनों को करके (४) क्षपक श्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरणसंयत (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (८) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाण को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब संयतासंयत जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में सम्यक्त्वगुण के द्वारा अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण किया। पुनः सम्यक्त्व के साथ ही ग्रहण किये गये संयमासंयम के साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो (१) अन्तर को प्राप्त हो गया और मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अंतिम भव में असंयम से सहित सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी हो परिणामों के निमित्त से संयमासंयम को प्राप्त हुआ (२) इस प्रकार से इस गुणस्थान का अन्तर प्राप्त हो गया। पुनः अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (४) क्षपकश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) क्षीणकषाय (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र किया। पुनः उस अवस्था में अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकार से यह अर्धपुद्गलपरिवर्तन की आदि दृष्टिगोचर हुई।

(२)। एतत्प्रकारेण आदिः दृष्टः। षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गत्वा अंतरं कृत्वा मिथ्यात्वेन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिवर्त्य अपश्चिमे भवे सासंयमसम्यक्त्वं संयमासंयमं वा प्रतिपद्य कृतकरणीयः भूत्वा अप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपद्य प्रमत्तो जातः (३)। लब्धमन्तरं। ततः क्षपकश्रेणिप्रायोग्योऽप्रमत्तोजातः (४)। पुनः अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) क्षीणकषायः (८) सयोगी (९) अयोगी (१०) भूत्वा निर्वाणं गतः। एवं दशभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तं प्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

अप्रमत्तस्य उच्यते — एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिना त्रीण्यपि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं अप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नेन छित्वा अनंतः संसारः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रः प्रथमसमये कृतः। तत्र अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (१) प्रमत्तो जातः अन्तरितः मिथ्यात्वेन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिवर्त्य अपश्चिमे भवे सम्यक्त्वं संयमासंयमं वा प्रतिपद्य दर्शनमोहनीयत्रिकानन्तानुबंधिचतुष्कमेतत् सप्तप्रकृतीः क्षपयित्वा अप्रमत्तो जातः (२)। लब्धमन्तरं। प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (२) अप्रमत्तो जातः (४) अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) क्षीणकषायः (८) सयोगी (९) अयोगी (१०) भूत्वा निर्वाणं गतः लब्धमुत्कृष्टान्तरं दशभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तं।

तात्पर्यमेतत् — असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया अन्तरं नास्ति। एकं जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। एतज्ज्ञात्वा सम्यग्दर्शनेन सह भवद्भिः संयतासंयतैः संयतैः वा जघन्यमन्तरं कृत्वा शीघ्रमेव धर्मपुरुषार्थबलेन मोक्षपुरुषार्थः साधयितव्यः।

पुनः उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण कर अंतिम भव में असंयमसहित सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी हो अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया (३)। इस प्रकार से इस गुणस्थान का अन्तर प्राप्त हो गया। पश्चात् क्षपकश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४) पुनः अपूर्वकरणसंयत (५) अनिवृत्तिकरण संयत (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (७) क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से दश अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब अप्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं — एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व को और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को एक साथ प्राप्त होकर सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। उस अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ और अन्तर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिवर्तन कर अंतिम भव में सम्यक्त्व अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर दर्शनमोह की तीन और अनन्तानुबंधी की चार इन सात प्रकृतियों का क्षपणकर अप्रमत्तसंयत हो गया (२) इस प्रकार अप्रमत्तसंयत का अन्तरकाल उपलब्ध हुआ। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में सहस्रों परावर्तनों को करके (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) क्षीणकषाय (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

तात्पर्य यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीवों में नाना जीवों की अपेक्षा कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव के प्रति जघन्यरूप से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल है। उत्कृष्टरूप से कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरावर्तन प्रमाण अन्तरकाल है। ऐसी व्यवस्था जानकर

एवं चतुर्थस्थले असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि। संप्रति नानाजीवापेक्षया चतुरूपशामकानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१२।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**प्रथमतः तावत् अपूर्वकरणोपशामकस्य अन्तरमुच्यते—सप्ताष्टजनाः बहवो वा अपूर्वकरणोपशामककाले क्षीणे अनिवृत्तिउपशामकाः वा अप्रमत्ता वा कालं कृत्वा देवा जाताः। एकसमयमन्तरितमपूर्वगुणस्थानं। ततः द्वितीयसमये अप्रमत्ता वा अवतरन्तः अनिवृत्तिकरणाः वा अपूर्वकरणोपशामकाः जाताः। लब्धमेकसमयमन्तरं। एवं चैव अनिवृत्तिउपशामकानां सूक्ष्मोपशामकानां उपशान्तकषायाणां च जघन्यान्तरमेकसमयो वक्तव्यः।**

उत्कर्षेण कथ्यते—सप्ताष्टजनाः बहवो वा अपूर्वोपशामकाः अप्रमत्ता वा कालं कृत्वा देवा जाताः। अन्तरितमपूर्वकरणगुणस्थानं यावत् उत्कृष्टेन वर्षपृथक्त्वं। ततः अतिक्रान्ते वर्षपृथक्त्वे सप्ताष्टजनाः बहवो वा अप्रमत्ताः अपूर्वोपशामकाः जाताः। लब्धमुत्कृष्टान्तरं वर्षपृथक्त्वं। एवं चैव त्रयाणामुपशामकानां

आप सभी को सम्यग्दर्शन के साथ संयतासंयत अथवा संयतों के जघन्य अन्तर करके शीघ्र ही धर्मपुरुषार्थ के बल से मोक्षपुरुषार्थ की सिद्धि करनी चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब नाना जीव की अपेक्षा चार उपशामक—उपशम श्रेणी वाले चार गुणस्थानवर्ती महामुनियों का अन्तर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उपशमश्रेणी के चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१२।।

उक्त चारों उपशामकों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—यहाँ पर उनमें से सर्वप्रथम अपूर्वकरण उपशामक का अन्तर कहते हैं—

सात-आठ जन, अथवा बहुत से जीव अपूर्वकरण गुणस्थान के उपशामक काल क्षीण हो जाने पर अनिवृत्तिकरण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत होकर तथा मरण करके देव हुए। इस प्रकार एक समय के लिए अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् द्वितीय समय में अप्रमत्तसंयत अथवा उतरते हुए अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हो गए। इस प्रकार एक समय प्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया। इसी प्रकार से अनिवृत्तिकरण उपशामक, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और उपशान्तकषाय उपशामकों का एक समय प्रमाण जघन्य अन्तर कहना चाहिए।

अब उत्कृष्टरूप से कथन करते हैं—सात-आठ जन, अथवा बहुत से अपूर्वकरण उपशामक जीव अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और वे मरण करके देव हुए। इस प्रकार यह अपूर्वकरण उपशामक गुणस्थान उत्कृष्टरूप से वर्षपृथक्त्व के लिए अन्तर को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्व काल के व्यतीत होने पर

वर्षपृथक्त्वान्तरं वक्तव्यं, विशेषाभावात्।

एकजीवापेक्षया जघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकः अपूर्वकरणः अनिवृत्युपशामको वा सूक्ष्मोपशामकः उपशान्तकषायो भूत्वा पुनरपि सूक्ष्मोपशामकोऽनिवृत्ति-उपशामको भूत्वा अपूर्वोपशामको जातः। लब्धमन्तरं। एतत्पंचकालानामपि एकत्रीकृतेऽपि अंतर्मुहूर्तमेव भवतीति जघन्यान्तरमन्तर्मुहूर्तं भवति।**

एवं चैव शेषत्रयाणामुपशामकानां एकजीवजघन्यान्तरं वक्तव्यं। विशेषेण अनिवृत्युपशामकस्य सूक्ष्मसांपरायिकसंबंधिद्वयं उपशान्तकषायसंबंधि एकं च एतत्त्रयमन्तर्मुहूर्तं जघन्यान्तरं भवति। सूक्ष्मोपशामकस्य उपशान्तकषायकालमेकमेवान्तर्मुहूर्तं भवति जघन्यान्तरं। उपशान्तकषायस्य पुनः अधः उपशान्तकषायमवतीर्य सूक्ष्मसांपरायः अनिवृत्तिकरणः अपूर्वकरणः अप्रमत्तो भूत्वा प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं

सात, आठ अथवा बहुत से अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण उपशामक हुए। इस प्रकार वर्षपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशामकों का अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहना चाहिए। क्योंकि, अपूर्वकरण उपशामक के अन्तर से तीनों उपशामकों के अन्तर में कोई विशेषता नहीं पाई जाती है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट का अन्तर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१४।।

उक्त चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन काल है।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाला कोई एक अपूर्वकरण उपशामक मुनि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक अथवा दशवें सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानवर्ती उपशामक या ग्यारहवें उपशान्त-कषायगुणस्थानवर्ती उपशामक होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक होकर अपूर्वकरण उपशामक हो गया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ। अनिवृत्तिकरण से लगाकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक होने के पूर्व तक के पाँचों ही गुणस्थानों के कालों को एकत्र करने पर भी वह काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है।

इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकों का एक जीव संबंधी जघन्य अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामक के सूक्ष्मसाम्परायिक संबंधी दो अन्तर्मुहूर्तकाल और उपशान्तकषाय संबंधी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ये तीनों मिलाकर जघन्य अन्तर होता है। सूक्ष्म साम्परायिक उपशामक के उपशान्तकषाय संबंधी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ही जघन्य अन्तर होता है। उपशान्तकषाय उपशामक का पुनः उपशान्तकषाय से नीचे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अप्रमत्तसंयत होकर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसंबंधी सहस्रों परावर्तनों को करके पुनः अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक

कृत्वा अप्रमत्तोऽपूर्वः अनिवृत्तिः सूक्ष्मः भूत्वा पुनः उपशान्तकषायगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य नवकालसमूहमात्रमन्तर्मुहूर्तमन्तरं भवति।

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टान्तरं कथ्यते—

अपूर्वस्य तावदुच्यते—एकेन अनादिमिथ्यादृष्टिना त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं संयमं च अक्रमेण प्रतिपन्नप्रथमसमये अनंतसंसारं छित्वा अर्द्धपुद्गलपरिवर्तमात्रं कृतेन अप्रमत्तस्यान्तर्मुहूर्तमात्रकालोऽनुपालितः (१)। ततः प्रमत्तो जातः (२)। वेदक सम्यक्त्वं उपशाम्य (३) प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (४) उपशमश्रेणियोग्योऽप्रमत्तो जातः (५)। अपूर्वः (६) अनिवृत्तिः (७) सूक्ष्मः (८) उपशान्तकषायः (९) पुनः सूक्ष्मः (१०) अनिवृत्तिः (११) अपूर्वकरणो जातः (१२) अधः पतित्वा अन्तरितः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिवर्त्य अपश्चिमे भवे दर्शनत्रिकं क्षपयित्वा अपूर्वोपशामको जातः (१३)। लब्धमन्तरं।

ततः अनिवृत्तिः (१४) सूक्ष्मः (१५) उपशान्तकषायः (१६) जातः। पुनः प्रतिनिवृत्तः सूक्ष्मः (१७) अनिवृत्तिः (१८) अपूर्वः (१९) अप्रमत्तः (२०) प्रमत्तः (२१) पुनः अप्रमत्तः (२२) अपूर्वक्षपकः (२३) अनिवृत्तिः (२४) सूक्ष्मः (२५) क्षीणकषायः (२६) सयोगी (२७) अयोगी (२८) भूत्वा निर्वृत्तः। एवमष्टाविंशति-अन्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तमपूर्वकरणस्य उत्कृष्टान्तरं भवति। एवं त्रयाणामुपशामकानां। नवरि परिपाट्या षट्विंशति-चतुर्विंशति-द्वाविंशति अन्तर्मुहूर्तैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तं त्रयाणामुत्कृष्टान्तरं भवति।

होकर पुनः उपशान्तकषाय गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के नौ अद्धा-काल का सम्मिलित प्रमाण अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर होता है। इनमें से एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—उसमें भी सर्वप्रथम अपूर्वकरण का अन्तर कहते हैं—एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त होने के प्रथम समय में ही अनन्त संसार को छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अप्रमत्तसंयत के काल का अनुपालन किया (१)। पीछे प्रमत्तसंयत हुआ (२) पुनः वेदक सम्यक्त्व का उपशम करके (३) सहस्रों प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनों को करके (४) उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हो गया (५) पुनः अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) उपशान्तकषाय (९) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०) अनिवृत्तिकरण (११) और पुनः अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हो गया (१२)। पश्चात् नीचे गिरकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गल परिवर्तन कालप्रमाण परिवर्तन करके अंतिम भव में दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियों का क्षपण करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३) इस प्रकार अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

पुनः अनिवृत्तिकरण (१४) सूक्ष्मसाम्परायिक (१५) और उपशान्तकषाय उपशामक हो गया (१६)। पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्परायिक (१७) अनिवृत्तिकरण (१८) अपूर्वकरण (१९) अप्रमत्तसंयत (२०) प्रमत्तसंयत (२१) पुनः अप्रमत्तसंयत (२२) अपूर्वकरण क्षपक (२३) अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४) सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (२५) क्षीणकषाय क्षपक (२६) सयोगिकेवली (२७) और अयोगिकेवली (२८) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अट्ठाईस अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अपूर्वकरण का उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार से तीनों उपशामकों का अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि परिपाटी के क्रम से अनिवृत्तिकरण उपशामक के छब्बीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक के चौबीस और उपशान्तकषाय के बाईस अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तीनों उपशामकों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

तात्पर्यमेतत्—चतुर्णां उपशामकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकसमयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं। त्रिभ्य उपरि नवभ्योऽधः पृथक्त्वसंज्ञा आगमस्य। एकं जीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तो देशोनः। इति ज्ञात्वा यथा स्यात्तथा निरन्तरं सम्यक्त्वबलेन कर्माणि क्षपयद्भिः चारित्रमवलम्ब्य सिद्धिकान्ता परिणेतव्या।

एवं पंचमस्थले उपशमश्रेण्यारोहकानां अन्तरप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

चतुःक्षपक-अयोगिनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६।।

उक्कस्सेण छम्मासं।।१७।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सप्ताष्टजनाः अष्टोत्तरशतं वा अपूर्वकरणक्षपकाः एकस्मिन् चैव समये सर्वे अनिवृत्तिक्षपका जाताः। एकसमयमन्तरितमपूर्वगुणस्थानं। द्वितीयसमये सप्ताष्टजना अष्टोत्तरशतं वा अप्रमत्ताः अपूर्वकरणक्षपकाः जाताः। लब्धमन्तरमेकसमयः। एवं शेषगुणस्थानानामपि अन्तरमेकसमयो वक्तव्यः।**

तात्पर्य यह है कि उपशमश्रेणी पर आरोहण करने वाले चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक मुनियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट से वर्षपृथक्त्व समय का अन्तरकाल है। तीन अंक की संख्या से ऊपर और नौ अंक की संख्या से नीचे की संख्या को आगमानुसार पृथक्त्व संज्ञा है। एक जीव के प्रति वह अन्तरकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त होता है और उत्कृष्टरूप से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है,ऐसा जानकर जैसे बने वैसे निरन्तर सम्यग्दर्शन के बल से कर्मों का क्षय करते हुए चारित्र का अवलम्बन लेकर सिद्धिकान्ता का वरण करना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में उपश्रमश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनियों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले चार क्षपक गुणस्थानवर्ती महामुनियों एवं अयोगिकेवलियों का नाना जीवों की अपेक्षा और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

चारों क्षपक और अयोगिकेवली का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होता है।।१६।।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है।।१७।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त चारों क्षपकों का और अयोगिकेवली का अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है।।१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—सात-आठ जन, अथवा एक सौ आठ, अपूर्वकरण क्षपक एक ही समय में सबके सब अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गए। इस प्रकार एक समय के लिए अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हो गया। द्वितीय समय में सात-आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकार से अपूर्वकरण क्षपक का एक समयप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

उत्कृष्टेण उच्यते — सप्ताष्टजनाः अष्टोत्तरशतं वा अपूर्वकरणक्षपकाः अनिवृत्तिक्षपका जाताः। अन्तरितमपूर्वक्षपकगुणस्थानं उत्कृष्टेन यावत् षण्मासाः इति। ततः सप्ताष्टजनाः अष्टोत्तरशतं वा अप्रमत्ताः अपूर्वक्षपकाः जाताः। लब्धं षण्मासोत्कृष्टान्तरं। एवं शेषगुणस्थानानामपि षण्मासोत्कृष्टान्तरं वक्तव्यम्।

एकजीवापेक्षया अन्तरं नास्ति। क्षपकाणां पतनाभावात्, ते निरन्तरं सन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं षष्ठस्थले क्षपकायोगिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सयोगिनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१९।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सयोगिकेवलिनां भगवतां विरहितकालाभावात् त्रिष्वपि कालेषु तेषां अन्तरं नास्ति। सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिषु मध्ये शाश्वतकर्मभूमिषु ते विराजन्त एव। एकजीवापेक्षयापि नास्त्यन्तरं केवलिनः इति तेभ्यः सर्वेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु अनन्तवारमिति।**

एवं सप्तमस्थले सयोगिनामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इसी प्रकार से शेष गुणस्थानों का भी अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहना चाहिए।

अब उत्कृष्ट से कथन करते हैं —

सात-आठ जन अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक जीव अनिवृत्तिकरण क्षपक हुए। अतः अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थान उत्कर्ष से छह मास के लिए अन्तर को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् सात-आठ जन अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकार से छह मास उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया। इसी प्रकार से शेष गुणस्थानों का भी छह मास का उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिए।

एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, क्योंकि क्षपक चारों गुणस्थानवर्ती मुनियों का नीचे गुणस्थानों में पतन होने का अभाव है। वे निरन्तर होते हैं — उनका काल अन्तर रहित होता है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार छठे स्थल में क्षपक और अयोगिकेवलियों के अन्तर का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सयोगिकेवली भगवन्तों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सयोगिकेवलियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है।।१९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — सयोगिकेवली भगवन्तों से विरहित काल का अभाव है। तीनों ही कालों में उनका अन्तर नहीं पाया जाता है। एक सौ सत्तर कर्मभूमियों के मध्य शाश्वतकर्मभूमियों में वे अर्हन्त केवली भगवान सदैव विराजमान रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा भी केवलियों का कभी अभाव नहीं होता है, उन सभी केवली भगवन्तों को हमारा अनन्त बार नमोऽस्तु होवे।

इस प्रकार सातवें स्थल में सयोगिकेवलियों का अन्तर बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डेऽस्मिन् दुःषमकाले द्वाविंशतिवर्षन्यून-पंचशताधिकाष्टदशसहस्रवर्षपर्यंतं यस्य उत्तमक्षमादिदशधर्ममयशासनं निरन्तरं अविच्छिन्नं वर्त्स्यते तस्य भगवतो महतिमहावीरस्वामिनः चरणकमलयुगलमस्माभिर्निरन्तरं हृदये स्थाप्यते।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीत-षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे अन्तरानुगमनाम्नि षष्ठ-प्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण रचितायां विंशतितमशताब्दौ प्रथमाचार्यस्य चारित्रचक्रवर्तिश्रीशान्तिसागरस्य पट्टाधीशः श्रीवीरसागरः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणि-टीकायां अन्तरानुगमे गुणस्थानान्तरप्ररूपकः प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में इस दुःषमाकाल में बाईस वर्ष न्यून अठारह हजार पाँच सौ वर्ष अर्थात् अठारह हजार चार सौ अठत्तर (१८४७८) वर्ष पर्यन्त जिनका उत्तमक्षमा आदि दर्शधर्ममयी शासन निरन्तर अविच्छिन्नरूप से चलता रहेगा, उन भगवान महावीर स्वामी के चरणयुगल हम निरन्तर अपने हृदय में स्थापित करते हैं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में अन्तरानुगम नाम के छठे प्रकरण में श्रीवीरसेन आचार्य द्वारा रचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में अन्तरानुगम प्रकरण में गुणस्थानों का अन्तर प्ररूपित करने वाला प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।

महामंत्र की महिमा

उठते, बैठते, चलते, फिरते समय, घर से निकलते समय, मार्ग में चलते समय, घर में कुछ काम करते समय पद-पद पर जो णमोकार मंत्र को जपते रहते हैं उनके कौन से मनोरथ सफल नहीं हो जाते हैं? अर्थात् संपूर्ण वांछित सिद्ध हो जाते हैं।

छींक आने पर, जंभाई लेने पर, खांसी आदि आने पर या अकस्मात् कहीं वेदना के उठ जाने पर या चिंता हो जाने पर, सोते समय और सोकर उठते ही और आश्चर्य आदि प्रसंगों में श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण करना चाहिए।

अथ द्वितीयो महाधिकारः

अथ मार्गणासु अन्तरानुगमः

क्षान्त्यादिदशधर्मस्य, प्राप्तये कर्महानये।
सिद्धिकान्तापतीन् वन्दे, स्वात्मसिद्ध्यै निरन्तरम् ।।१।।

विदेहक्षेत्रेषु षष्ट्युत्तरशत-शाश्वतकर्मभूमिषु येषां देवाधिदेवानां अमोघशासनं निरन्तरं चचाल चलति चलिष्यति तेभ्यस्तीर्थंकरदेवेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु निरन्तरम्।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अत्र प्रथमतस्तावत् अशीतिसूत्रैः चतुर्भिरन्तराधिकारैः द्वितीये महाधिकारे गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र नरकगतिनाम प्रथमान्तराधिकारे स्थलचतुष्टयेन चतुर्दशसूत्राणि सन्ति। तस्मिन्नपि प्रथमस्थले मिथ्यात्वअसंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां अन्तरप्ररूपणत्वेन ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टिनारकाणां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले प्रथमादिपृथिवीषु मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''पढमादि जाव'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले एषामेव नारकाणां सासादनमिश्रगुणस्थानवर्तिनां अन्तरनिरूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

द्वितीय महाधिकार

अब मार्गणाओं में अन्तरानुगम प्रकरण प्रारंभ होता है।

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — क्षमा आदि दश धर्मों की प्राप्ति के लिए, कर्मों को नष्ट करने के लिए और अपनी आत्मा की सिद्धि के लिए मैं सिद्धिप्रिया का वरण करने वाले भगवन्तों को सदैव नमस्कार करता हूँ।।१।।

विदेहक्षेत्र की एक सौ साठ शाश्वत कर्मभूमियों में जिन देवाधिदेव भगवन्तों का अमोघ शासन निरन्तर अतीतकाल में चल रहा था, वर्तमान में चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा, उन समस्त तीर्थंकर देव को हमारा सदैव नमस्कार होवे।

अथ गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

यहाँ सर्वप्रथम अस्सी (८०) सूत्रों के द्वारा चार अन्तराधिकार वाले द्वितीय महाधिकार में गतिमार्गणा नामका प्रथम अधिकार कहा जा रहा है। उनमें नरकगति नामके प्रथम अन्तराधिकार में चार स्थलों के द्वारा चौदह (१४) सूत्र कहेंगे। उसमें भी प्रथम स्थल में मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती एवं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकियों का अन्तर बतलाने हेतु ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके अनन्तर तृतीय स्थल में प्रथम आदि पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का अन्तर कथन करने हेतु 'पढमादि जाव'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में इन्हीं नारकियों में सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती नारकियों का अन्तर निरूपण करने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका प्रस्तुत की गई है।

अधुना सामान्येन नरकगतौ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२२।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः विरहितनरकपृथिवीनां सर्वकालमनुपलम्भात्।**

एकजीवापेक्षया मिथ्यादृष्टेर्जघन्यान्तरमुच्यते—एकः मिथ्यादृष्टिः दृष्टमार्गः परिणामप्रत्ययेन सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं वा प्रतिपद्य सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः मिथ्यादृष्टिर्जातः। लब्धमन्तर्मुहूर्तमन्तरं। सम्यग्दृष्टिं अपि मिथ्यात्वं नीत्वा सर्वजघन्येन अन्तर्मुहूर्तेन प्रापय्य असंयतसम्यग्दृष्टेर्जघन्यान्तरं वक्तव्यं।

एकजीवापेक्षया उत्कृष्टान्तरमुच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी अधस्तनसप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं

अब सामान्यरूप से नरकगति में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्रों का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

आदेस की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में, नारकियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थान का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२२।।

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेंतीस सागरोपम है।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से रहित रत्नप्रभादि पृथिवियाँ किसी भी काल में नहीं पायी जाती हैं।

इनमें से पहले एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर कहते हैं—देख लिया है मार्ग को जिसने ऐसा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामों के निमित्त से सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा सम्यक्त्व को प्राप्त होकर, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः मिथ्यादृष्टि हो गया। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल लब्ध हुआ। इसी प्रकार किसी एक असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी को भी मिथ्यात्व गुणस्थान में ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त कराकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का जघन्य अन्तर कहना चाहिए। अब एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकी का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मोह कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला नीचे सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३),

प्रतिपद्य अन्तरितः स्तोकावशेषे आयुषि मिथ्यात्वं गतः (४)। लब्धमन्तरम्। स एव तिर्यगायुः बद्ध्वा (५) विश्रम्य (६) निर्गतः। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि मिथ्यात्वस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

असंयतसम्यग्दृष्टेरूच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी मिथ्यादृष्टिः अधः सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। अवसाने तिर्यगायुः बद्ध्वा अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य विशुद्धो भूत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (५) लब्धमन्तरं। भूयः मिथ्यात्वं गत्वा निर्गतः (६)। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणम-संयतसम्यग्दृष्टेरूत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं प्रथमस्थले मिथ्यात्व-असंयतसम्यग्दृष्टिनारकाणां अन्तरप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि। संप्रति सासादन-मिश्रनारकाणां नानाजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२४।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नरकगतौ स्थितसासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च सर्वे गुणस्थानान्तरं**

वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त कर आयु के थोड़े अवशेष रहने पर अन्तर को प्राप्त हो मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः तिर्यंच आयु को बांधकर (५), विश्राम लेकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपम काल मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी का अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस कर्मप्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक तिर्यंच, अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव नीचे सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) पुनः संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ। आयु के अंत में तिर्यंचायु बांधकर पुनः अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके विशुद्ध होकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार इस गुणस्थान का अन्तर लब्ध हुआ। पुनः मिथ्यात्व में जाकर नरक से निकला (६)। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मिथ्यात्व और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकियों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियों में नानाजीवों की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्ररूपित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर होता है।।२४।।

उक्त दोनों गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—नरकगति में स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी

गताः। द्वे अपि गुणस्थाने एकसमयं अन्तरिते। पुनः द्वितीयसमये केऽपि उपशमसम्यग्दृष्टयः आसादनं गताः, मिथ्यादृष्टयः असंयतसम्यग्दृष्टयश्च सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नाः। लब्धमन्तरं द्वयोर्गुणस्थानयोरेकसमयः।

उत्कृष्टान्तरं उच्यते—नरकगतौ स्थितसासादन-सम्यग्दृष्टयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च सर्वे अन्यगुणस्थानान्तरं गताः। द्वे अपि गुणस्थाने अंतरिते। उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रः द्वयोर्गुणस्थानयोरन्तरकालो भवति। पुनः तावन्मात्रकालेऽतिक्रान्ते स्वस्वात्मनः कारणीभूतगुणस्थानेभ्यः द्वयोर्गुणस्थानयोः संभवे जाते लब्धमुत्कृष्टान्तरं पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

संप्रति एकजीवापेक्षया जघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।२६।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सासादनस्य पल्योपमस्य असंख्यातभागः, सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तर्मुहूर्तं जघन्यान्तरं भवति। अनयोरुदाहरणं—एकः नारकः अनादिमिथ्यादृष्टिः उपशमसम्यक्त्वप्रायोग्यसादिमिथ्यादृष्टिः वा त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। उपशमसम्यक्त्वेन कियन्तं कालं स्थित्वा आसादनं गत्वा मिथ्यात्वं गतोऽन्तरितः। पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालेन उद्वेलनखण्डैः सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वस्थिती**

जीव अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान एक समय के लिए अन्तर को प्राप्त हो गये। पुनः द्वितीय समय में कितने ही उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों ही गुणस्थानों का अन्तर एक समयप्रमाण प्राप्त हो गया।

अब उत्कृष्ट अन्तर बतलाते हैं—नरकगति में स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये सभी जीव अन्य गुणस्थानों को प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हो गये। इन दोनों गुणस्थानों का अन्तरकाल उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र होता है। पुनः उतना काल व्यतीत होने पर अपने-अपने कारणभूत गुणस्थानों से उक्त दोनों गुणस्थानों के संभव हो जाने पर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हो गया।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों गुणस्थानों का जघन्य अन्तर एक जीव की अपेक्षा पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।२६।।

उक्त दोनों गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेंतीस सागरोपम है।।२७।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—सासादनसम्यग्दृष्टि का जघन्य अन्तरकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।

इन दोनों के उदाहरण बताते हैं—एक अनादिमिथ्यादृष्टि नारकी जीव अथवा उपशमसम्यक्त्व के प्रायोग्य सादि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव, तीन करणों को करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्व के साथ कितने ही काल तक रहकर पुनः सासादनगुणस्थान में जाकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर को प्राप्त होकर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल से उद्वेलना कांडकों से सम्यक्त्व और

सागरोपमपृथक्त्वात् अधः कृत्वा पुनः त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे आसादनं गतः। लब्धमन्तरं पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

एकः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं वा गत्वा अन्तर्मुहूर्तमन्तरयित्वा पुनः सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तर्मुहूर्तमन्तरं सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नारकस्य। उत्कृष्टान्तरं कथ्यते—

एकः सादिरनादिर्वा मिथ्यादृष्टिः सप्तमपृथिवीनारकेषु उत्पन्नः षड्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) आसादनं गत्वा मिथ्यात्वं गतोऽन्तरितः। अवसाने तिर्यगायुः बद्ध्वा विशुद्धो भूत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशेषे आसादनं गतः। लब्धमन्तरं। ततः मिथ्यात्वं गत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा (५) निर्गतः। एवं पंचभिः अंतर्मुहूर्तैः समयाधिकैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि सासादनोत्कृष्टान्तरं भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टान्तरं उच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी सप्तमपृथिवीनारकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४)। पुनः सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा गत्वा देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणायुःस्थितिं अन्तरयित्वा मिथ्यात्वेनायुः बद्ध्वा विश्रम्य सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (५)। ततः मिथ्यात्वं गत्वा अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (६) निर्गतः। षड्भिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि सम्यग्मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियों की स्थितियों को सागरोपमपृथक्त्व से नीचे अर्थात् कम करके पुनः तीनों करण करके और उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करके उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली काल अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व को अथवा सम्यक्त्व को प्राप्त होकर और वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त का अन्तर देकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर प्राप्त हो गया। अब उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एक सादि अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) पुनः सासादनगुणस्थान में जाकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो, अन्तर को प्राप्त हुआ। आयु के अंत में तिर्यंच आयु को बांधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व में जाकर अन्तर्मुहूर्त रहकर (५) निकला। इस प्रकार समयाधिक पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपम काल सासादन गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर होता है। अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होकर छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४), पुनः सम्यक्त्व में अथवा मिथ्यात्व में जाकर देशोन—कुछ कम तेंतीस सागरोपमप्रमाण आयु स्थिति को अन्तररूप से बिताकर मिथ्यात्व के द्वारा आयु को बांधकर विश्राम लेकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (५)। पश्चात् मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त रहकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

एवं द्वितीयस्थले सामान्यनारकाणां सासादन-मिश्रगुणस्थानवर्तिनां जघन्योत्कृष्टअन्तरप्रतिपादनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति प्रथमादिसप्तमनरकभूमिषु मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिनारकयोः नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तर-निरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठी-णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२९।।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिविरहितप्रथमादिसप्तमीपर्यंतपृथिवीगतनारकाणां सर्वकालमनुपलम्भात्।**

एकजीवापेक्षया—मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा अन्यगुणस्थानं गत्वा सर्वजघन्येन अंतर्मुहूर्तेन स्थित्वा पुनस्तदेव गुणस्थानं प्रतिपद्यते ततः अंतर्मुहूर्तमात्रान्तरोपलम्भात्।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सामान्यरूप से सासादन और मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रथम नरक से लेकर सातों नरकभूमियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल प्रतिपादित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

प्रथम पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक के नारकियों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर काल कितना है ? नाना जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२८।।

उक्त दोनों गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२९।।

उक्त दोनों गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम काल है।।३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों से रहित नारकियों की प्रथमादि सातों नरकपृथिवियों में सदा उपलब्धि नहीं होती है। अर्थात् सभी नरकों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दोनों अवस्था वाले नारकी पाये जाते हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा बताते हैं—

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनों को ही अन्य गुणस्थान में ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः उसी गुणस्थान में पहुँचाने पर अन्तर्मुहूर्त मात्र काल का अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्टेन—प्रथमपृथिव्यां देशोनैकसागरः, द्वितीयायां देशोनाः त्रयः सागराः, तृतीयपृथिव्यां देशोनाः सप्तसागराः, चतुर्थपृथिव्यां देशोनाः दशसागराः, पंचमपृथिव्यां देशोनाः सप्तदशसागराः, षष्ठ्यां देशोनद्वाविंशतिसागराः, सप्तम्यां देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागराः इति वक्तव्यं। विशेषेण तु—द्वयोः गुणस्थानयोः सप्तमपृथिव्यां देशोनप्रमाणं षडन्तर्मुहूर्तमात्रं। तच्च गुणस्थानप्ररूपणायां प्ररूपितं पुनः नेह प्ररूपयिष्यते। शेषपृथिवीषु मिथ्यादृष्टीनां स्वक-स्वकायुःस्थितयः चतुर्भिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनाः।

के ते चत्वारोऽन्तर्मुहूर्ताः ?

षट्पर्याप्तिसमापने एकः, विश्रमणे द्वितीयः, विशुद्ध्यापूरणे तृतीयः अवसाने मिथ्यात्वं गतस्य चतुर्थोऽन्तर्मुहूर्तः।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां शेषपृथिवीषु स्वक-स्वकायुःस्थितयः पंचभिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनाः अन्तरं भवति। तद्यथा—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी प्रथमादि यावत् षष्ठीषु पृथिवीषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) सर्वलघु मिथ्यात्वं गत्वा अन्तरितः। स्वकस्थितिं स्थित्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (५) सासादनं गत्वा निर्गतः। एवं पंचभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनाः स्वकस्वकस्थितयः सम्यक्त्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

तात्पर्यमेतत्—कश्चित् सप्तमपृथिवीगतनारकः तत्रोत्पद्य षडन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वं गृहीत्वा सर्वलघुकालं सम्यक्त्वे स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः पुनः स्वायुःपर्यंतं तत्र मिथ्यात्वेन स्थित्वा उपशम सम्यक्त्वं संप्राप्य

उत्कृष्टरूप से कहते हैं—प्रथम पृथिवी में कुछ कम एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवी में कुछ कम तीन सागरोपम, तीसरी पृथिवी में कुछ कम सात सागरोपम, चौथी पृथिवी में कुछ कम दश सागरोपम, पाँचवी पृथिवी में कुछ कम सतरह सागरोपम, छठी पृथिवी में कुछ कम बाईस सागरोपम और सातवीं पृथिवी में कुछ कम तेंतीस सागरोपम अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि प्रथम और चतुर्थ, इन दोनों गुणस्थानों का सातवीं पृथिवी में कुछ कम का प्रमाण छह अन्तर्मुहूर्तमात्र है। वह नारकियों के गुणस्थान प्रकरण में कह आये हैं, इसलिए यहाँ नहीं कहते हैं। शेष अर्थात् प्रथम से लगाकर छठी पृथिवी तक की छह पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि नारकियों का उत्कृष्ट अन्तर चार अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी आयु स्थिति प्रमाण है।

शंका—वे चार अन्तर्मुहूर्त कौन से हैं ?

समाधान—छहों पर्याप्तियों को सम्यक् निष्पन्न करने में एक, विश्राम में दूसरा, विशुद्धि को पूर्ण करने में तीसरा और आयु के अन्त में मिथ्यात्व को प्राप्त होने का चौथा अन्तर्मुहूर्त है।

असंयत सम्यग्दृष्टियों का शेष पृथिवियों में पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी आयुस्थितिप्रमाण अन्तर होता है। वह इस प्रकार है—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथम पृथिवी से लेकर छठी पृथिवी तक कहीं भी उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१), विश्राम ले (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) पुनः सर्वलघुकाल से मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अपनी स्थितिप्रमाण मिथ्यात्व में रहकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (५)। पुनः सासादन गुणस्थान में जाकर वहाँ से निकला। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी पृथिवी की स्थिति प्रमाण वहाँ के सम्यक्त्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

तात्पर्य यह है कि कोई सातवीं नरकपृथिवी में उत्पन्न हुआ नारकी वहाँ उत्पन्न होने के छह अन्तर्मुहूर्तों के पश्चात् सम्यक्त्व को ग्रहण करके सबसे छोटे काल तक सम्यक्त्व अवस्था में रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त

सासादनो भूत्वा तन्नरकान्निर्गतः। एवं शेषपृथिवीषु चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः न्यूनं स्वक-स्वकायुःस्थितिप्रमाणं सम्यक्त्वस्यान्तरं ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले सप्तपृथिवीषु मिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्टिजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति सप्तस्वपि पृथिवीषु सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टिनानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३१।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।३२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।३३।।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णां सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। उत्कृष्टेन अनयोः अन्तरं निरूप्यते— सप्तमपृथिवीगतसासादन-सम्यग्मिथ्यदृष्ट्योः पूर्ववदन्तरं ज्ञातव्यं। प्रथमादिषट्पृथिवीनां सासादनस्य उत्कृष्टान्तरं**

हो गया पुनः अपनी सम्पूर्ण नरक आयु पर्यन्त वहाँ मिथ्यात्व अवस्था में स्थित रहकर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके सासादन गुणस्थान में आकर उस सातवें नरक से निकला। इसी प्रकार शेष नरकपृथिवियों में चार अन्तर्मुहूर्त से न्यून अपनी-अपनी आयु स्थिति प्रमाण सम्यक्त्व का अन्तर जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सातों नरक पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नारकियों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सातों पृथिवियों में सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

उक्त सातों ही पृथिवियों के सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय है।।३१।।

उक्त पृथिवियों में ही उक्त गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग है।।३२।।

उक्त गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।३३।।

सातों ही पृथिवियों में उक्त दोनों गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम एक, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम है।।३४।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—उपर्युक्त चारों सूत्रों का अर्थ सरल है। यहाँ उत्कृष्टरूप से सासादन और मिश्र इन दोनों गुणस्थानों का अन्तर कहते हैं—

भण्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा प्रथमादिषट्पृथिवीषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य आसादनं गतः (४) मिथ्यात्वं गत्वा अन्तरितः। तत्र स्वक-स्वकोत्कृष्टस्थितिप्रमाणं स्थित्वा अवसाने उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशेषे सासादनं गत्वा तस्मात् निर्गतः। एवं समयाधिकचतुर्भिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वक-स्वकोत्कृष्टस्थितिप्रमाणं सासादनस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

अधुना सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरमुच्यते—एकः अष्टाविंशतिमोहनीयसत्ताकः विवक्षितनारकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं वा गत्वा अन्तरितः स्वकस्थितिं स्थित्वा सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (५)। लब्धमन्तरं। मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं वा गत्वा निर्गतः (६)। षड्भिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वक-स्वकोत्कृष्टस्थितिप्रमाणं सम्यग्मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

संप्रति सर्वगतिभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टिनिःसरणक्रमः उच्यते—

यो जीवः सम्यग्दृष्टिः भूत्वा आयुर्बद्ध्वा सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते सः सम्यक्त्वेनैव निर्गच्छति। अथवा मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा आयुर्बद्ध्वा यो सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते स मिथ्यात्वेनैव निर्गच्छति।

कथमेतत् ज्ञायते ?

सातवीं पृथिवी के सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकियों का अन्तरकाल पूर्व के समान ही जानना चाहिए।

प्रथम आदि छह पृथिवियों के सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथमादि छह पृथिवियों में से किसी में उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१), वहाँ विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होकर सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुआ (४)। फिर मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया। वहाँ अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण रहकर आयु के अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होकर वहाँ से निकला। इस प्रकार एक समय से अधिक चार अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी पृथिवी की उत्कृष्टस्थितिप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियों का अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य विवक्षित पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४)। पुनः मिथ्यात्व में अथवा सम्यक्त्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ और जिस गुणस्थान में गया उसमें अपनी आयु स्थिति प्रमाण रहकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तरकाल प्राप्त हो गया। पुनः मिथ्यात्व को अथवा सम्यक्त्व को प्राप्त होकर निकला (६)। इन छहों अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी पृथिवी की उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर होता है। अब सर्व गतियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के निकलने का क्रम कहते हैं—जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर और आयु को बांधकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, वह सम्यक्त्व के साथ ही उस गति से निकलता है अथवा जो मिथ्यादृष्टि होकर और आयु को बांधकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्व के साथ ही निकलता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

तात्पर्यमेतत्—नरकधरासु सप्तस्वपि पृथिवीषु ये केचित् सासादनाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयश्च ते अल्पसंसाराः भव्या एव नियमेन मनुष्यगतिं लब्ध्वा धर्मपुरुषार्थबलेन मोक्षं यास्यन्ति। केचित् दीर्घसंसाराः अपि अधिकतमार्द्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाणं कालं संसारे परिवर्त्य निर्वान्ति। अतः सम्यग्दर्शनमाहात्म्यं ज्ञात्वा तदेव रत्नं रक्षणीयं प्रयत्नशतेनेति।

एवं चतुर्थस्थले नरकगतसासादनमिश्रगुणस्थानवर्तिनानैकजीवजघन्योत्कृष्टअन्तरप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति नरकगत्यन्तराधिकारः

समाधान—आचार्य परम्परागत उपदेश से ऐसा जाना जाता है।

तात्पर्य यह है कि सातों ही नरकपृथिवियों में जो कोई सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नारकी हैं वे सभी अल्प संसारी भव्य ही हैं, वे वहाँ से निकलकर नियम से मनुष्यगति प्राप्तकर धर्मपुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करेंगे। कोई दीर्घसंसारी जीव भी हैं तो भी वे अधिकतम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल संसार में परिवर्तन करके पार हो जाते हैं—निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। अतः सम्यग्दर्शन के माहात्म्य को जानकर उसी सम्यक्त्व रत्न की सैकड़ों प्रयत्नों द्वारा रक्षा करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में नरकगति को प्राप्त सासादन और मिश्रगुणस्थानवर्ती नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

यह नरकगति अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णलो लोएसव्वसाहूणं।।

अर्हंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

इस मंत्र में अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार किया है।

अथ तिर्यग्गत्यन्तराधिकारः

अथ स्थलसप्तकेन द्वाविंशतिसूत्रैः तिर्यग्गतिनामान्तराधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यतिर्यग्गतौ तिरश्चां गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इति सूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियादित्रिविधतिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां अन्तरनिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले त्रिविधतिरश्चां सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः अन्तरप्ररूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले त्रिविधतिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टीनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनन्तरं पंचमस्थले त्रिविधतिर्यक्संयतासंयतानां अंतरनिरूपणत्वेन ''संजदासंजदाण'' इत्यादिसूत्रत्रयं । तत्पश्चात् षष्ठस्थले पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां अन्तरप्रतिपादनमुख्यत्वेन ''पंचिंदियतिरिक्ख'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं सप्तमस्थले गति-गुणस्थानापेक्षया तिरश्चामन्तरप्रतिपादनत्वेन ''एदं गदिं'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३५।।

अब तिर्यंचगति अन्तराधिकार प्रारंभ होता है—

अब सात स्थलों में बाईस सूत्रों के द्वारा तिर्यंचगति नाम का अन्तराधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य तिर्यंचगति में तिर्यंच जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में पञ्चेन्द्रियादि तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का अन्तर निरूपण करने वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में तीन प्रकार के तिर्यंच जीवों का सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अन्तर कथन करने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में तीनों प्रकार के असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों का अन्तर बतलाने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनन्तर पंचमस्थल में तीनों प्रकार के संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का अन्तर निरूपण करने वाले ''संजदासंजदाण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् छठे स्थल में पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंचों का अन्तर बतलाने वाले ''पंचिंदियतिरिक्ख'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः आगे सातवें स्थल में गति और गुणस्थान की अपेक्षा तिर्यंच जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु ''एदं गदिं'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब तिर्यंचगति में नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में, तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३६।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तिर्यग्गतौ नानाजीवापेक्षया तिरश्चां नास्त्यन्तरं, ते निरन्तराः सन्ति। एकजीवापेक्षया—मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चं अन्यगुणस्थानं नीत्वा सर्वजघन्येन कालेन पुनः तस्यैव गुणस्थानस्य तस्मिन् प्रत्यानीयमाने अन्तर्मुहूर्तान्तरोपलम्भात्। उत्कृष्टेन देशोनं त्रिपल्योपमप्रमाणमन्तरं। तदेवोच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी त्रिपल्योपमायुःस्थितिकेषु कुक्कुट-मर्कटादिषु उत्पन्नः, द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः।**

अत्र द्वौ उपदेशौ स्तः—तद्यथा—तिर्यक्षु द्विमास-मुहूर्तपृथक्त्वस्योपरि सम्यक्त्वं संयमासंयमं च जीवः प्रतिपद्यते, मनुष्येषु गर्भाद्यष्टवर्षेषु अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकेषु सम्यक्त्वं संयमं संयमासंयमं च प्रतिपद्यते इति। एषा दक्षिणप्रतिपत्तिः। दक्षिणं ऋजुकं आचार्यपरंपरागतमिति एकार्थः[१]।

तिर्यक्षु त्रिपक्ष-त्रिदिवस-अन्तर्मुहूर्तस्योपरि सम्यक्त्वं संयमासंयमं च प्रतिपद्यते। मनुष्येषु अष्टवर्षाणामुपरि सम्यक्त्वं संयमं संयमासंयमं च प्रतिपद्यते इति एषा उत्तरप्रतिपत्तिः। उत्तरं अनृजुकं आचार्यपरंपरानागतमितिएकार्थः[२]।

पुनः स एव जीवः तिर्यङ् मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धो वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। अवसाने आयुर्बद्ध्वा

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३६।।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम है।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंचगति में नाना जीव की अपेक्षा तिर्यंचों में अन्तर नहीं है, वे निरन्तर ही हैं। अर्थात् वे सदाकाल पाये जाते हैं। एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं—

मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीव को अन्य गुणस्थान में ले जाकर सर्वजघन्यकाल से पुनः उसी गुणस्थान में वापस ले आने पर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट से कुछ कम तीन पल्योपमप्रमाण अन्तर है। उसका वर्णन करते हैं—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपम की आयुस्थिति वाले भोगभूमि के अंदर कुक्कुट-मर्कट आदि में उत्पन्न हुआ और दो मास गर्भ में रहकर निकला। इस विषय में दो उपदेश हैं। वे इस प्रकार हैं—तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ जीव दो मास और मुहूर्तपृथक्त्व से ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयम को प्राप्त करता है। मनुष्यों में गर्भकाल से प्रारंभकर, अन्तर्मुहूर्त से अधिक आठ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयम को प्राप्त होता है। यह दक्षिण प्रतिपत्ति है। दक्षिण, ऋजु और आचार्यपरम्परागत, ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्त के ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयम को प्राप्त होता है। मनुष्यों में उत्पन्न हुआ जीव आठ वर्षों के ऊपर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयम को प्राप्त होता है। यह उत्तर प्रतिपत्ति हैं। उत्तर, अनृजु और आचार्यपरम्परा से अनागत, ये तीनों एकार्थवाची हैं।

पुनः वही तिर्यञ्च जीव मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पश्चात् अपनी

१-२. षट्खंडागम धवला टीका पु. ५, पृ. ३२।

मिथ्यात्वं गतः। पुनः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य कालं कृत्वा सौधर्मैशानदेवेषु उत्पन्नः। आदिमुहूर्तपृथक्त्वाभ्यधिक-द्विमासैः अवसाने उपलब्धद्विअन्तर्मुहूर्ताभ्यां ऊनं त्रिपल्योपमप्रमाणं मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं प्रथमस्थले तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां अन्तरकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना तिर्यक्षु सासादनादिसंयतासंयतानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।।३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**ओघचतुर्गुणस्थाननानैकजीव-जघन्योत्कृष्टस्यान्तरकालेभ्यः तिर्यग्गतिगुणस्थान-नानैकजीव-जघन्योत्कृष्टान्तरकालानां भेदाभावात् ओघवदुच्यते।**

तद्यथा—सासादनगुणस्थानवर्तिनां नानाजीवं प्रतीत्य जघन्येन एकसमयः, उत्कृष्टेन पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

अत्र अन्तरमाहात्म्यज्ञापनार्थमल्पबहुत्वमुच्यते—सर्वस्तोकः सासादनसम्यग्दृष्टिराशिः। तस्यैव कालः नानाजीवगतः असंख्यातगुणः। तस्यैवान्तरमसंख्यातगुणं। एवमल्पबहुत्वं ओघादिसर्वमार्गणासु सासादनानां प्रयोक्तव्यम्।

एकजीवापेक्षया जघन्येन पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एतस्य कालस्य साधनोपदेशः उच्यते—त्रसेषु स्थित्वा येन सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृती उद्वेलिते स सागरोपमपृथक्त्वेन सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्व-स्थितिसत्कर्मणा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यते। एतस्मात् उपरिमासु स्थितिषु यदि सम्यक्त्वं गृण्हाति, तर्हि

आयु के अंत में आयु को बांधकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त हो, मर करके सौधर्म-ऐशान देवों में उत्पन्न हुआ। आदि के मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मासों से और आयु के अवसान में उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तों से कम तीन पल्योपमकाल मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचों में सासादन से संयतासंयत गुणस्थान तक के जीवों का अन्तर बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचों में सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ओघ के इन चार गुणस्थानों संबंधी नाना और एक जीव के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालों से तिर्यंचगति संबंधी इन्हीं चारों गुणस्थान संबंधी नाना जीव और एक जीव के जघन्य और उत्कृष्टअन्तर कालों का सारा वर्णन ओघ के समान कहते हैं, क्योंकि इनके अन्तरकालों में किसी का भेद नहीं है।

वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

यहाँ पर अन्तर के माहात्म्य को बतलाने के लिए अल्पबहुत्व कहते हैं—सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों की राशि सबसे कम है। नाना जीवगत उसी का काल असंख्यातगुणा है और उसी का अन्तर काल असंख्यातगुणा है। यह अल्पबहुत्व ओघादि सभी मार्गणाओं में सासादनसम्यग्दृष्टियों का कहना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर एक जीव की अपेक्षा जघन्य से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। इस काल के साधन का उपदेश कहते हैं—त्रस जीवों में रहकर जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियों का उद्वेलन कर लिया है, वह जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की स्थिति के सत्वरूप

निश्चयेन वेदकसम्यक्त्वमेव गृण्हाति। अथ एकेन्द्रियेषु येन सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेलिते, स पल्योपमस्य असंख्यातभागेनोनसागरोपममात्रे सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोः स्थितिसत्कर्मशेषे त्रसेषु उत्पद्य उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यते। एताभिः स्थितिभिः ऊनशेषकर्मस्थितिउद्वेलनकालः येन पल्योपमस्यासंख्यातभागः तेन सासादनैकजीवजघन्यान्तरमपि पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रं भवति।

उत्कृष्टेन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनं। अत्रास्ति विशेषः तं भणिष्यामः — एकः तिर्यङ् अनादिमिथ्यादृष्टिः त्रीणि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नप्रथमसमये संसारमनन्तं छित्वा पुद्गलपरिवर्तार्द्धं कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः आसादनं गतः मिथ्यात्वं गत्वा अन्तरितः (१), अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिभ्रम्य द्विचरमभवे पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य मनुष्येषु आयुर्बद्ध्वा त्रीणि करणानि कृत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। उपशमसम्यक्त्वकाले मनुष्यगतिप्रायोग्यावलिकासंख्यातभागावशेषे आसादनं गतः। लब्धमन्तरं।

आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रसासादनकालं स्थित्वा मृतः मनुष्यो जातः सप्तमासान् गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः सप्तवर्षाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकपंचमासान् च गमयित्वा (२) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (३) अनन्तानुबन्धिनः विसंयोज्य (४) दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा (५) अप्रमत्तः (६) प्रमत्तः (७) पुनः अप्रमत्तः (८) पुनः अपूर्वादिषड्भिः अन्तर्मुहूर्तैः (१४) निर्वाणं गतः। एवं चतुर्दशअन्तर्मुहूर्तैः आवलिकायाः असंख्यातभागेन अभ्यधिकैः अष्टवर्षैश्च ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तमन्तरं भवति।

सागरोपमपृथक्त्व के पश्चात् उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है। यदि इससे ऊपर की स्थिति रहने पर सम्यक्त्व को ग्रहण करता है, तो निश्चय से वेदकसम्यक्त्व को ही प्राप्त होता है और एकेन्द्रियों में जा करके जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना की है, वह पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपमकाल मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का स्थितिसत्व अवशेष रहने पर त्रस जीवों में उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है। इन स्थितियों से कम शेष कर्मस्थिति उद्वेलन का काल चूँकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग है, इसलिए सासादनगुणस्थान का एक जीव संबंधी जघन्य अन्तर भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र ही होता है। उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। पर यहाँ जो विशेष बात है, उसे कहते हैं — अनादिमिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणों को करके सम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय में अनन्त संसार को छेदकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और सासादनगुणस्थान में चला गया। पुनः मिथ्यात्व में जाकर और अन्तर को प्राप्त होकर (१) अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके द्विचरम भव में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होकर और मनुष्यों में आयु को बांधकर तीनों करणों को करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो गया। पुनः उपशसम्यक्त्व के काल में मनुष्यगति के योग्य आवली के असंख्यातवें भाग मात्र काल के अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उक्त अन्तर प्राप्त हो गया। आवली के असंख्यातवें भागमात्र काल सासादनगुणस्थान में रहकर मरा और मनुष्य हो गया। यहाँ पर सात मास गर्भ में रहकर निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुहूर्त से अधिक पाँच मास बिताकर (२) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (३)। पुनः अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन करके (४) दर्शनमोहनीय का क्षयकर (५) अप्रमत्त (६) प्रमत्त (७) पुनः अप्रमत्त (८) हो, पुनः अपूर्वकरणादि छह गुणस्थानों संबंधी छह अन्तर्मुहूर्तों से (१४) निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार चौदह अन्तर्मुहूर्तों से तथा आवली के असंख्यातवें भाग से अधिक आठ वर्षों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर काल होता है।

अत्रोपयुक्तोऽर्थः उच्यते—तद्यथा—सासादनं प्रतिपन्नद्वितीयसमये यदि म्रियते, तर्हि नियमेन देवगतौ उत्पद्यते। एवं यावत् आवलिकायाः असंख्यातभागो देवगतिप्रायोग्यः कालः भवति। ततः उपरि मनुष्यगतिप्रायोग्यः आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रः कालो भवति। एवं संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यगसंज्ञि-पंचेन्द्रियतिर्यक्-चतुरिन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-एकेन्द्रियप्रायोग्यो भवति। एष नियमः सर्वत्र सासादनगुणस्थान-प्रतिपद्यमानानां ज्ञातव्यः।

सम्यग्मिथ्यादृष्टे नानाजीवं प्रतीत्य जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमस्यासंख्यातभागः। अत्र द्रव्य-काल-अन्तराल्पबहुत्वस्य सासादनवत्भंगः। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं देशोनं। अत्रापि विशेषः उच्यते—एकः तिर्यङ् अनादिमिथ्यादृष्टिः त्रीणि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नप्रथमसमये अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तमात्रं संसारं कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१) सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (२) मिथ्यात्वं गत्वा अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं परिवर्त्य द्विचरमभवे पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य मनुष्यायुः बद्ध्वा अवसाने उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य समयग्मिथ्यात्वं गतः (३)। लब्धमन्तरं। ततः मिथ्यात्वं गतः (४) मनुष्येषु उत्पन्नः। उपरि सासादनवद्भंगः। सप्तदशान्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिक-अष्टवर्षैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं सम्यग्मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

असंयतसम्यग्दृष्टेः नानाजीवं प्रतीत्य नास्त्यन्तरं, एकजीवं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनं। अत्र विशेषः—एकः अनादिमिथ्यादृष्टिः त्रीणि करणानि कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१) उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाशेषे सासादनं गत्वान्तरितः। अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं परिवर्त्य

अब यहाँ पर उपर्युक्त अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—सासादनगुणस्थान को प्राप्त होने के द्वितीय समय में यदि वह जीव मरता है तो नियम से देवगति में उत्पन्न होता है। इस प्रकार आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल देवगति में उत्पन्न होने के योग्य होता है। उसके ऊपर मनुष्यगति के योग्य काल आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार से आगे-आगे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने योग्य होता है। यह नियम सर्वत्र सासादनगुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीवों का जानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है। यहाँ पर द्रव्य, काल और अन्तर की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल है। केवल यहाँ जो विशेषता है उसे कहते हैं—अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणों को करके सम्यक्त्व के प्राप्त होने के प्रथम समय में अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र संसार की स्थिति को करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (१) और सम्यग्मिथ्यात्व में चला गया (२) फिर मिथ्यात्व में जाकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण परिभ्रमण करके द्विचरम भव में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होकर मनुष्य आयु को बांधकर अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होकर सम्यग्मिथ्यात्व में चला गया (३) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व को गया (४) और मरकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् का कथन सासादनसम्यग्दृष्टि के समान ही है। यह सत्तरह अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल सम्यग्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल है। केवल जो विशेषता है वह कही जाती है—एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणों को करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (१) और

द्विचरमभवे पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पन्नः। मनुष्येषु वर्षपृथक्त्वायुः बद्ध्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। ततः आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रायाः वा एवं गत्वा समयोन-षडावलिकायाः वा उपशमसम्यक्त्वकाले शेषे आसादनं गत्वा मनुष्यगतिप्रायोग्ये मृतः मनुष्यो जातः (२) उपरि सासादनवत्। एवं पंचदशभिः अन्तर्मुहूर्तैः अभ्यधिकाष्टवर्षैः ऊनमर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं सम्यक्त्वोत्कृष्टान्तरं भवति।

संयतासंयतानां नानाजीवं प्रतीत्य नास्त्यन्तरं, एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन अर्धपुद्गलपरिवर्तं देशोनं। अत्र विशेषः उच्यते—एकः अनादिमिथ्यादृष्टिः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तस्यादिसमये उपशमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१) षडावलिकाशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गत्वा अन्तरितः मिथ्यात्वं गतः। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं परिभ्रम्य द्विचरमभवे पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य उपशमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (२)। लब्धमन्तरं। ततो मिथ्यात्वं गतः (३) आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रम्य (५) कालं गतः मनुष्येषु उत्पन्नः। तत्र गर्भे सप्तमासान् स्थित्वा निष्क्रान्तः सप्तवर्षाणि अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकपंचमासान् च गमयित्वा (६) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (७) अनन्तानुबंधिनः विसंयोज्य (८) दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा (९) अप्रमत्तः (१०) प्रमत्तः (११) पुनः अप्रमत्तः (१२) पुनः अपूर्वादिषडन्तर्मुहूर्तैः (१३ से १८) निर्वाणं गतः।

एवमष्टादशमन्तर्मुहूर्ताभ्यधिक-अष्टवर्षैः ऊनं अर्द्धपुद्गलपरिवर्तं संयतासंयतोत्कृष्टान्तरं भवति।

कश्चिदाह—तिर्यक्षु संयमासंयमग्रहणात्पूर्वमेव मनुष्यायुः किन्न बध्नाति ?

उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिभ्रमण करके द्विचरम भव में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। पुनः मनुष्यों में वर्षपृथक्त्व की आयु को बांधकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पीछे आवली के असंख्यातवें भागमात्र काल के, अथवा यहाँ से लगाकर एक समय कम छह आवली काल प्रमाण तक, उपशमसम्यक्त्व के काल में मरा और मनुष्य हुआ (२) उसके ऊपर सासादन के समान कथन जानना चाहिए। इस प्रकार पंद्रह अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्ष से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

संयतासंयतों का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल अन्तर है। यहाँ पर जो विशेषता है उसे कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन के आदि समय में उपशमसम्यक्त्व को और संयमासंयम को युगपत् प्राप्त हुआ (१) उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन को जाकर अन्तर को प्राप्त होता हुआ मिथ्यात्व में गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण करके द्विचरम भव में पंचेन्द्रियतिर्यंचों में उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्व को और संयमासंयम को युगपत् प्राप्त हुआ (२) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् मिथ्यात्व को गया (३) व आयु बांधकर (४) विश्राम लेकर (५) मरकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।

वहाँ गर्भ में सात महीने रहकर निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुहूर्त से अधिक पाँच मास बिताकर (६) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (७) पुनः अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करके (८) दर्शनमोहनीय का क्षय करके (९) अप्रमत्त (१०) प्रमत्त (११) पुनः अप्रमत्त हो (१२) पुनः अपूर्वकरण आदि छह गुणस्थानों संबंधी छह अन्तर्मुहूर्तों से (१३ से १८) निर्वाण को प्राप्त हो गया। इस प्रकार अठारह अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि तिर्यंचों में संयमासंयम ग्रहण करने से पूर्व ही उस मिथ्यादृष्टि जीव को मनुष्य आयु का बंध क्यों नहीं होता है ?

आचार्यःप्राह—न, बद्धमनुष्यायुः मिथ्यादृष्टितिरश्चः संयमासंयमग्रहणाभावात्।
तात्पर्यमत्र—संयमासंयमी तिर्यङ् नियमेन देवगतौ एवोत्पद्यते इति ज्ञातव्यम्।
एवं प्रथमस्थले सामान्येन तिरश्चां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।
अधुना त्रिविधपंचेन्द्रियतिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४०।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।।४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया त्रिविधानां तिरश्चां अन्तरं नास्ति मिथ्यात्वगुणस्थानेषु। एकजीवापेक्षया पंचेन्द्रियाणां त्रीन् मिथ्यादृष्टिजीवान् दृष्टमार्गान् सम्यक्त्वं नीत्वा सर्वजघन्यकालेन पुनः मिथ्यात्वे ग्राहिते अंतर्मुहूर्तकालोपलंभात्।**

उत्कृष्टेन—त्रयः तिर्यञ्चः मनुष्याः वा अष्टाविंशतिसत्कर्मिणः त्रिपल्योपमायुःस्थितिकेषु पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिक-कुक्कुट-मर्कटादिषु उत्पन्नाः, द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्ताः, मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धाः वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः अवसाने आयुः बद्ध्वा मिथ्यात्वं गताः। लब्धमन्तरं। भूयः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य कालं कृत्वा सौधर्मैशानदेवेषु

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि उनके मनुष्य आयु का बंध नहीं होता है, क्योंकि मनुष्यायु का बंध कर लेने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के संयमासंयम का ग्रहण नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि संयमासंयमी तिर्यञ्च नियम से देवगति में ही उत्पन्न होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब तीन प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३९।।

उक्त जीवों में एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।४०।।

उक्त तीनों ही प्रकार के मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों का अन्तर कुछ कम तीन पल्योपमप्रमाण है।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में तीनों प्रकार के तिर्यंच का अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा तीनों ही प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के तीन मिथ्यादृष्टि दृष्टमार्गी जीवों को असंयतसम्यक्त्व में ले जाकर सर्वजघन्य काल से पुनः मिथ्यात्व के ग्रहण कराने पर अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाले तीन तिर्यंच अथवा मनुष्य, तीन पल्योपम की आयु स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिक कुक्कुट, मर्कट आदि में उत्पन्न हुए व दो मास गर्भ में

उत्पन्नाः। एवं द्वि-अंतर्मुहूर्ताभ्यां मुहूर्तपृथक्त्वाभ्यधिकद्विमासाभ्यां च ऊनं त्रिपल्योपमप्रमाणं त्रयाणां मिथ्यादृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं द्वितीयस्थले तिरश्चां मिथ्यात्वगुणस्थानान्तरप्ररूपकत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सासादन-मिश्रगुणस्थानवर्तितिरश्चामन्तरप्ररूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।४२।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।४३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।४४।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**तद्यथा—पंचेन्द्रियतिर्यक्सासादनसम्यग्दृष्टिप्रवाहः कियन्तमपि कालमागतः। पुनः सर्वेषु सासादनेषु मिथ्यात्वं प्रतिपन्नेषु एकसमयं सासादनगुणस्थानविरहो भूत्वा द्वितीयसमये**

रहकर वहाँ से निकले और मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुए और आयु के अंत में आगामी आयु को बांधकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार से अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त कर और मरण करके सौधर्म-ईशान देवों में उत्पन्न हुए। इस प्रकार इन दो अन्तर्मुहूर्तों से और मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मासों से कम तीन पल्योपम तीनों जाति वाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यंचों के मिथ्यात्व गुणस्थान का अन्तर प्ररूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का अन्तर प्ररूपण करने के लिए चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होता है।।४२।।

उक्त तीनों प्रकार के तिर्यंच सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।४३।।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम के असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।४४।।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तीनों प्रकार के तिर्यंचों का अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम है।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह अन्तर इस प्रकार है—पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का प्रवाह कितने ही काल तक निरन्तर आया। पुनः सभी सासादन जीवों के मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाने पर एक समय के लिए सासादनगुणस्थान का विरह होकर द्वितीय समय में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के सासादन

उपशमसम्यग्दृष्टिजीवेषु सासादनं प्रतिपन्नेषु लब्धमेकसमयमन्तरं। एवं चैव तिर्यक्त्रिकसम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि वक्तव्यं। एतद्जघन्यमन्तरं।

उत्कृष्टेन—पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिक-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवेषु सर्वेषु अन्यगुणस्थानं गतेषु द्वयोर्गुणस्थानयोः पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकेषु उत्कर्षेण पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रान्तरं भूत्वा पुनः द्वयोर्गुणस्थानयोः संभवे जाते लब्धमन्तरं भवति।

एकजीवापेक्षया पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकसासादनानां पल्योपमस्य असंख्यातभागः, सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां अंतर्मुहूर्त्तमेकजीवजघन्यान्तरं भवति। शेषं सुगमं।

अत्र तावत् उत्कर्षेण पंचेन्द्रियतिर्यक्सासादनानां उच्यते—एकः मनुष्यः नारकः देवो वा एकसमयावशेषे सासादनकाले पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पन्नः। तत्र पंचनवतिपूर्वकोट्यभ्यधिकत्रिपल्योपमानि गमयित्वा अवसाने एकसमयावशेषे आयुषि आसादनं गतः कालं कृत्वा देवो जातः। एवं द्विसमयोनस्वकस्थितिप्रमाणं सासादनोत्कृष्टान्तरं भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामुच्यते—एकः मनुष्यः अष्टाविंशतिसत्कर्मी संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्सम्मूर्च्छिमपर्याप्तेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४) अंतरं कृत्वा पंचनवतिपूर्वकोटिकालं परिभ्रम्य त्रिपल्योपमिकेषु उत्पद्य अवसाने प्रथमसम्यक्त्वं गृहीत्वा सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (५) सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा येन गुणस्थानेन आयुष्कं बद्धं तद्गुणस्थानं प्रतिपद्य (६) देवेषु

गुणस्थान को प्राप्त होने पर एक समय प्रमाण अन्तर काल प्राप्त हो गया। इसी प्रकार तीनों जाति वाले तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का भी अन्तर कहना चाहिए। यह जघन्य अन्तर है।

उत्कृष्ट से—तीनों ही प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीवों के अन्य गुणस्थान में चले जाने पर इन दोनों गुणस्थानों का पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक में उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र अन्तर होकर पुनः दोनों गुणस्थानों के संभव हो जाने पर यह अन्तर प्राप्त हो जाता है।

एक जीव की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टियों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण एक जीव का जघन्य अन्तर होता है। शेष कथन सुगम है।

इनमें से पहले उत्कृष्टरूप से पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि का अन्तर कहते हैं। जैसे—कोई एक मनुष्य, नारकी अथवा देव सासादनगुणस्थान के काल में एक समय अवशेष रह जाने पर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। उनमें पंचानवे पूर्वकोटिकाल से अधिक तीन पल्योपम बिताकर अन्त में आयु का एक समय अवशेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वपूर्वक सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ और मरण करके देव हो गया। इस प्रकार दो समय कम अपनी स्थिति सासादन गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक मनुष्य, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४) तथा अन्तर को प्राप्त होकर पंचानवे पूर्वकोटि कालप्रमाण उन्हीं तिर्यंचों में परिभ्रमण करके तीन पल्योपम की आयु वाले तिर्यंचों में उत्पन्न होकर और अन्त में प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहण करके सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५)। उसके पश्चात् जिस गुणस्थान से आयु बांधी थी उसी सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर (६) देवों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह

उत्पन्नः। षडन्तर्मुहूर्तैः ऊना स्वकस्थितिः उत्कृष्टान्तरं भवति। एवं पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तानां। अस्ति विशेषोऽत्र-सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः त्रिपल्योपमानि च पूर्वोक्तद्विसमयषडन्तर्मुहूर्तैः च ऊनानि उत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं योनिमतीतिरश्चीषु अपि-तथापि सम्यग्मिथ्यादृष्टि-उत्कृष्टकालेऽस्ति विशेषः—एकः नारकः देवो वा मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिनी-कुक्कुटमर्कटेषु उत्पन्नः द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धः सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। पंचदशपूर्वकोटिकालं परिभ्रम्य कुरुषु भोगभूमिषु उत्पन्नः। सम्यक्त्वेन वा मिथ्यात्वेन वा स्थित्वा अवसाने सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं। येन गुणस्थानेन आयुर्बद्धं, तेनैव गुणस्थानेन मृतो देवो जातः। त्रिभिः अन्तर्मुहूर्तैः मुहूर्तपृथक्त्वाधिकद्विमासैश्च ऊनानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकत्रिपल्योपमानि उत्कृष्टान्तरं भवति।

सम्मूर्च्छिमेषु उत्पाद्य सम्यग्मिथ्यात्वं किन्न प्रत्यानीतः ?

न, तत्र स्त्रीवेदाभावात्।

सम्मूर्च्छिमेषु स्त्रीपुरुषवेदौ किन्न भवतः ?

न भवतः, स्वभावाच्चैव।

एवं तृतीयस्थले सासादनादिद्विगुणस्थानवर्तिनोः अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना त्रिविधतिरश्चां असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों का उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि सैंतालिस पूर्वकोटियाँ और पूर्वोक्त दो समय तथा छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तीन पल्योपम काल इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इसी प्रकार योनिमति तिर्यञ्चों का भी अन्तर जानना चाहिए। केवल उनके सम्यग्मिथ्यादृष्टि संबंधी उत्कृष्ट अन्तर में विशेषता है, उसे कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला एक नारकी, देव अथवा मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती कुक्कुट, मर्कट आदि में उत्पन्न हुआ, वहाँ दो मास गर्भ में रहकर निकला व मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पन्द्रह पूर्वकोटी काल प्रमाण परिभ्रमण करके देवकुरु, उत्तरकुरु इन दो भोगभूमियों में उत्पन्न हुआ। सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व के साथ रहकर अन्त में सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। पश्चात् जिस गुणस्थान से आयु को बांधा था, उसी गुणस्थान से मरकर देव हुआ। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मासों से कम पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—सम्मूर्च्छिम तिर्यंचों में उत्पन्न कराकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवों में स्त्रीवेद का अभाव है।

शंका—सम्मूर्च्छिम जीवों में स्त्रीवेद और पुरुषवेद क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—स्वभाव से ही नहीं होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादन आदि दो गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीनों प्रकार के तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।४६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४७।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**असंयतसम्यग्दृष्टिभिर्विरहितपंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकस्य सर्व्वकालमनुपलम्भात् नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया-पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकअसंयतसम्यग्दृष्टीनां दृष्टमार्गणां अन्यगुणस्थानं प्रतिपद्य अत्यल्पकालेन पुनरागतानां अन्तर्मुहूर्तान्तरोलंभात्। उत्कर्षेण कथ्यते—**

पंचेन्द्रियतिर्यंगसंयतसम्यग्दृष्टीनां तावत् उच्यते—एकः मनुष्यः अष्टाविंशतिसत्कर्मी संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्-सम्मूर्च्छिमपर्याप्तकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वा अंतरं संप्राप्य पंचनवतिपूर्वकोटिकालं गमयित्वा त्रिपल्योपमायुः-स्थितिकेषु उत्पन्नः स्तोकावशेषे जीविते उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरं (५) ततः उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाः सन्तीति आसादनं गत्वा देवो जातः। पंचभिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि पंचनवतिपूर्वकोट्यधिकानि त्रीणि पल्योपमानि पंचेन्द्रियतिर्यंगसंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों का अन्तर कितने काल तक होता है? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।४६।।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।४७।।

उक्त तीनों असंयतसम्यम्दृष्टि तिर्यंचों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपमकाल है।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से विरहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक किसी भी काल में नहीं पाये जाते हैं। इसलिए उनका अन्तर नहीं है।

एक जीव की अपेक्षा मार्ग को जिन्होंने देख रखा है ऐसे तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अन्य गुणस्थान को प्राप्त होकर अत्यल्प काल से पुनः उसी गुणस्थान में आने पर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

अब पहले पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला एक मनुष्य संज्ञीपंचेन्द्रियतिर्यंच सम्मूर्च्छन पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त होकर (४) संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व में जाकर वहाँ अन्तर को प्राप्त होकर पंचान्नवे पूर्वकोटि काल बिताकर तीन पल्योपम की आयु स्थिति वाले उत्तम भोगभूमिया तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ और जीवन के अल्प अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५) पश्चात् उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान में जाकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से पंचान्नवे पूर्वकोटियों से अधिक तीन पल्योपम प्रमाणकाल पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु एवं चैव। विशेषेण—सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः अधिकाः इति भणितव्यं। पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु अपि एवं चैव। केवलं किञ्चित् विशेषोऽस्ति—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु उत्पन्नः। द्वाभ्यां मासाभ्यां गर्भाद् निर्गत्य मुहूर्तपृथक्त्वेन वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वान्तरयित्वा पञ्चदशपूर्वकोटिप्रमाणकालं भ्रमित्वा त्रिपल्योपमायुःस्थितिकेषु उत्पन्नः। अवसाने उपशमसम्यक्त्वं गतः। लब्धमन्तरं (२) षडावलिकाशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं मृतो देवो जातः। द्विअन्तर्मुहूर्त्ताभ्यां मुहूर्तपृथक्त्वाभ्यधिकद्विमासैश्च ऊना स्वकास्थितिः असंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

तात्पर्यमेतत्—त्रिपल्योपमायुः भोगभूमिजातिरश्चामेव। तत्र गर्भे द्वौ मासौ स्थित्वा ततो निष्क्रम्य त्रिमुहूर्तादुपरि अष्टमुहूर्ताभ्यन्तरे वेदकसम्यक्त्वं भवितुमर्हति इति ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले त्रिविधतिरश्चां असंयतसम्यग्दृष्टीनामन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति तिरश्चां संयतासंयतानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।४९।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में भी इसी प्रकार होता है। विशेषता यह है कि इनके सैंतालीस पूर्वकोटि प्रमाण ही अधिक होता है, ऐसा कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय योनिमती तिर्यञ्चों में भी इसी प्रकार है। केवल जो थोड़ी विशेषता है उसे कहते हैं। वह इस प्रकार है—

मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में उत्पन्न हुआ। दो मास के गर्भ से निकलकर मुहूर्तपृथक्त्व में वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (१) वहाँ संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो पन्द्रह पूर्वकोटिकाल परिभ्रमण करके तीन पल्योपम की आयु स्थिति वाले भोगभूमियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ आयु के अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (२) पुनः उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुआ और मरकर देव हो गया। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों से अधिक दो मासों से कम अपनी स्थिति प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टि योनिमती तिर्यंचों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

तात्पर्य यह है कि तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले तिर्यंचों की ही होती है। वहाँ गर्भ में दो मास रहकर वहाँ से निकलकर तीन मुहूर्त से ऊपर आठ मुहूर्त के अन्दर-अन्दर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करने के योग्य होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में तीन प्रकार के तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत तिर्यंचों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तीनों प्रकार के संयतासंयत तिर्यंचों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।४९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५०।।
उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।।५१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**संयतासंयतविरहितपंचेन्द्रिय तिर्यक्त्रिकस्य सर्वदानुपलंभात्। एकजीवापेक्षया—पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकस्य संयतासंयतस्य दृष्टमार्गस्य अन्यगुणस्थानं गत्वा अत्यल्पकालेन पुनरागतस्य अंतर्मुहूर्तान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण—तत्र तावत् पंचेन्द्रियतिर्यक्संयतासंयतानां उच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्त्कर्मी संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्सम्मूर्च्छिमपर्याप्तकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (४) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वा अंतरं कृत्वा षण्णवतिपूर्वकोटिकालं परिभ्रम्य अपश्चिमे पूर्वकोटिकाले मिथ्यात्वेन सम्यक्त्वेन वा सौधर्मादिषु आयुर्बद्धवा अंतर्मुहूर्तावशेषे जीविते संयमासंयमं प्रतिपन्नः (५) कालं कृत्वा देवो जातः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं षण्णवति-पूर्वकोटिप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं भवति।**

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु एवमेव। विशेषेण अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटिप्रमाणमिति भणितव्यं।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु अपि एवं चैव। अस्ति कोऽपि विशेषः तम् भणिष्यामः—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु उत्पन्नः द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धो वेदकसम्यक्त्वं

उन्हीं तीनों प्रकार के तिर्यंच संयतासंयत जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त है।।५०।।

उन्हीं तीनों प्रकार के तिर्यंच संयतासंयत जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संयतासंयतों से रहित तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों का किसी भी काल में अभाव नहीं पाया जाता है। अर्थात् संयतासंयत तिर्यंच जीव कहीं न कहीं सदैव विद्यमान रहते हैं।

अब एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं—देख लिया है मार्ग को जिन्होंने ऐसे तीनों प्रकार के तिर्यंच संयतासंयत अन्य गुणस्थान में जाकर अति अल्पकाल के बाद पुनः उसी गुणस्थान में वापस आ जाते हैं। उनका वह काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

उत्कृष्टरूप से—इनमें से पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतों का अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (४) तथा संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व में जाकर और अन्तर को प्राप्त होकर छियान्नवे पूर्वकोटिप्रमाण काल परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटि में मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्व के साथ सौधर्मादि कल्पों की आयु को बांधकर व जीवन के अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (५) और मरण करके देव हुआ। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम छियान्नवे पूर्वकोटि प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतों का उत्कृष्ट अन्तर काल होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में भी इसी प्रकार अन्तर होता है। विशेषता यह है कि इनके अड़तालीस पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर काल कहना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में भी इसी प्रकार अन्तर होता है। केवल कुछ विशेषता है उसे कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में उत्पन्न

संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वा अंतरं कृत्वा षोडशपूर्वकोटिप्रमाणं परिभ्रम्य देवायुर्बद्ध्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते संयमासंयमं प्रतिपन्नः(२)। लब्धमन्तरं। मृतो देवो जातः। द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां मुहूर्तपृथक्त्वाभ्यधिकद्विमासाभ्यां च ऊनाः षोडशपूर्वकोट्यः उत्कृष्टान्तरं भवति।

तात्पर्यमेतत्—सामान्यपंचेन्द्रियतिरश्चः पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं षण्णवतिपूर्वकोटिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं। पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तस्य अष्टचत्वारिंशतत्पूर्वकोटिप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं। पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु मुहूर्तपृथक्त्वाभ्यधिकद्विमासैः द्वि-अंतर्मुहूर्तैः ऊनं षोडशपूर्वकोटिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं । अत्र सूत्रे पूर्वकोटिपृथक्त्वं वर्तते तेनैव षण्णवतिपूर्वकोटि-अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटि-षोडशपूर्वकोटिसंख्या गृहीता दृश्यते।

एवं पंचमस्थले तिरश्चां संयतासंयतानां अन्तरप्ररूपकत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।५२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५३।।

हुआ व दो मास गर्भ में रहकर निकला, मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर, वेदकसम्यक्त्व को और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (१) पुनः संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर, सोलह पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर और देवायु बांधकर जीवन के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् मरकर देव हुआ। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों और मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मास से हीन सोलह पूर्वकोटि प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

तात्पर्य यह है कि सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच का उत्कृष्ट अन्तर पाँच अन्तर्मुहूर्त कम छियान्नवे पूर्वकोटिप्रमाण है। पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच का उत्कृष्ट अन्तर अड़तालिस पूर्वकोटि प्रमाण है। पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचों में मुहूर्त पृथक्त्व से अधिक दो मास और दो अन्तर्मुहूर्त से न्यून सोलह पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। यहाँ सूत्र में जो पूर्वकोटिपृथक्त्व शब्द है उसके द्वारा छियान्नवे पूर्वकोटि, अड़तालिस पूर्वकोटि और सोलहपूर्वकोटि की संख्या ग्रहण की गई है।

इस प्रकार पंचम स्थल में संयतासंयत तिर्यंचों का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक तिर्यंचों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।५२।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।५३।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवं प्रतीत्य अपर्याप्ताः तिर्यञ्चः निरन्तराः सन्ति। एकजीवापेक्षया—पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकस्य अन्येषु अपर्याप्तकेषु क्षुद्रभवग्रहणायुःस्थितिकेषु उत्पद्य प्रतिनिवृत्य आगतस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरोपलंभात्। लब्धं जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकस्य अनर्पितजीवेषु उत्पद्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्त्तानि परिवर्त्य प्रतिनिवृत्य आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तेषु उत्पन्नस्य सूत्रोक्तान्तरोपलंभात्।**

एवं षष्ठस्थले पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति गति-गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

एदं गदिं पडुच्च अंतरं।।५५।।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं।।५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अत्रैतदन्तरं गतिं प्रतीत्य प्रोक्तमस्ति।**

अस्मिन् जीवस्थानखण्डनाम्नि ग्रन्थे मार्गणाविशेषितगुणस्थानानां जघन्योत्कृष्टान्तरं वक्तव्यमासीत्। किन्तु अतीतसूत्रे मार्गणामपेक्ष्य अन्तरमुक्तं। ततः नेदं घटते ?

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है।।५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा अपर्याप्तक तिर्यंच जीव निरन्तर हैं, अर्थात् उनका कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक का क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थिति वाले अन्य अपर्याप्तक जीवों में उत्पन्न होकर और लौटकर आये हुए जीव का क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है। यह जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्टरूप से पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक के अविवक्षित जीवों में उत्पन्न होकर आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पुनः लौटकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न हुए जीव का सूत्रोक्त अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार छठे स्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंचों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब गति और गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

यह अन्तर गति की अपेक्षा कहा गया है।।५५।।

गुणस्थान की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारों से अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ यह अन्तर गति की अपेक्षा कहा गया है।

प्रश्न—इस जीवस्थान खण्ड नाम के ग्रंथ में मार्गणा विशेषित गुणस्थानों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। किन्तु पिछले सूत्र में तो मार्गणा की अपेक्षा अन्तर कहा है। इसलिए वह यहाँ घटित नहीं होता है ?

अस्याः आशंकायाः ग्रन्थकर्ता परिहारं भणति—एवं गतिं प्रतीत्य उक्तमन्तरं शिष्यमतिविस्फुरितार्थं, ततो न दोषोऽस्ति कश्चित्।

गुणस्थानं प्रतीत्य अन्तरे भण्यमाने जघन्योत्कृष्टप्रकाराभ्यां नानैकजीवाभ्यां वा अन्तरं नास्ति, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमन्तरेण गुणस्थानान्तरग्रहणाभावात् प्रवाहव्युच्छेदाभावाच्च।

एवं सप्तमस्थले गतिगुणस्थानापेक्षया अन्तरकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति तिर्यग्गतिअन्तराधिकारः।

उत्तर—ऐसी आशंका होने पर ग्रंथकर्ता श्री वीरसेनाचार्य उसका परिहार करते हुए कहते हैं कि यहाँ पर अन्तर कथन गति की अपेक्षा शिष्यों की बुद्धि विस्फुरित करने के लिए किया है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है। गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर कहने पर जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों ही प्रकारों से अथवा नाना जीव और एक जीव इन दोनों अपेक्षा से अन्तर नहीं है, क्योंकि उनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्य गुणस्थान के ग्रहण करने का अभाव है तथा उनके प्रवाह का कभी उच्छेद भी नहीं होता है।

इस प्रकार सातवें स्थल में गति और गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

यह तिर्यग्गति अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

जिनेन्द्र भगवान के उपदेश के लाभ का फल

जो जिनेन्द्र भगवान के उपदेश को प्राप्त करके मोह, रागद्वेष को नष्ट कर देता है वह अल्पकाल में ही सर्व दुःखों से रहित मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। भाव यह है कि जो कोई भव्य जीव एकेन्द्रिय से विकलेन्द्रिय, फिर पंचेन्द्रिय, फिर मनुष्य होना इत्यादि दुर्लभपने की परम्परा को समझकर अत्यंत कठिनता से प्राप्त होने वाले जिनेन्द्र भगवान के उपदेश को प्राप्तकर व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयरूप तीक्ष्ण खड्ग के द्वारा मोह, रागद्वेष रूप शत्रुओं को मार देता है। वही वीर पुरुष संपूर्ण दुःखों का क्षय करके अनाकुलतारूप, पारमार्थिक सिद्ध सुख को प्राप्त कर लेता है अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का सार यही है कि व्यवहार संयम के द्वारा निश्चय संयम को प्राप्त करके शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव करना। यदि सम्यग्दर्शन, ज्ञान को प्राप्त करके भी जीव संयमी नहीं हुआ और रागद्वेष मोह का नाश नहीं किया तो पुनः अत्यंत दुर्लभ जिनेन्द्रदेव के उपदेश रूप चिंतामणि को प्राप्त करके भी वह इच्छित फल रूप मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सका। अतः जिनोपदेश का फल मुक्ति को प्राप्त कर लेना है और उसके लिए संयम ही प्रधान कारण है। ऐसा समझना।

—प्रवचनसार

अथ मनुष्यगत्यन्तराधिकारः

अथ षट्स्थलैः सप्तविंशतिसूत्रैः मनुष्यगतिनामान्तराधिकारः कथ्यते—तत्र प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्यादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरनिरूपणत्वेन ''मणुसगदीए'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तदनु द्वितीयस्थले असंयतसम्यग्दृष्टीनामन्तरकथनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले संयतासंयतादि-अप्रमत्तान्तानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''संजदासंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले चतुर्णामुपशामकानामन्तरकथनत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले क्षपकाणामयोगिनां सयोगिनां च अन्तरकथनप्रकारेण ''चदुण्हं खवा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं षष्ठस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां अन्तरप्ररूपणत्वेन ''मणुसअपज्जत्ताणं'' इत्यादि षट्सूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति त्रिविधमनुष्याणां मिथ्यादृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।५७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५८।।

अथ मनुष्यगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब छह स्थलों में सत्ताईस सूत्रों के द्वारा मनुष्यगति नामका अन्तराधिकार कहा जा रहा है—उनमें से प्रथम स्थल में मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानवर्ती तीन प्रकार के मनुष्यों का अन्तर निरूपण करने वाले ''मणुसगदीए'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का अन्तर कहने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में संयतासंयत गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का अन्तर कथन करने हेतु ''संजदासंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में चारों उपशामकों का अन्तर बतलाने के लिए ''चदुण्हं'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पाँचवें स्थल में क्षपक गुणस्थानवर्ती महामुनियों का, सयोगिकेवलियों का तथा अयोगिकेवलियों का अन्तर कथन करने वाले ''चदुण्हं खवा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् छठे स्थल में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का अन्तर प्ररूपण करने वाले ''मणुसअपज्जत्ताणं'' इत्यादि छह सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।५७।।

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य मिथ्यादृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।५८।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया त्रिविधा अपि मनुष्याः निरंतराः सन्ति, नास्ति तेषामन्तरं। एकजीवापेक्षया त्रिविधमनुष्यमिथ्यादृष्टेः दृष्टमार्गस्य गुणस्थानान्तरं प्रतिपद्य अत्यल्पकालेन प्रतिनिवृत्य आगतस्य सर्वजघन्यान्तर्मुहूर्तान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण-तावत् मनुष्यमिथ्यादृष्टीनां उच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी त्रिपल्योपमिकेषु मनुष्येषु उत्पन्नः। नवमासपर्यंतं गर्भे स्थितः। उत्तानशय्यायाः अंगुल्याहारेण सप्त, रिंगन् सप्त, अस्थिरगमणेन सप्त, स्थिरगमनेन सप्त, कलासु सप्त, गुणेषु सप्त, अन्यानपि सप्त दिवसान् गमयित्वा विशुद्धः वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४९)। तत्र भोगभूमिषु त्रिपल्योपमायुः गमयित्वा मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (१)। सम्यक्त्वं प्रतिपद्य (२) मृतो देवो जातः। एवं एकोनपंचाशत्दिवसाभ्यधिकनवभिः मासैः, द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां च ऊनं त्रिपल्योपमप्रमाणं मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं जातं। एवमेव मनुष्यपर्याप्त-मनुष्यिन्योरपि वक्तव्यं, भेदाभावात्।**

एवं प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां अन्तरकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना त्रिविधमनुष्याणां सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य मिथ्यादृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम है।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा तीनों प्रकार के मनुष्य निरन्तर होते हैं, उनमें कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा दृष्टमार्गी तीनों ही प्रकार के मनुष्य मिथ्यादृष्टि के किसी अन्य गुणस्थान को प्राप्त होकर अति स्वल्पकाल से लौटकर आ जाने पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से उनमें से पहले मनुष्य सामान्य मिथ्यादृष्टि का अन्तर कहते हैं। वह इस प्रकार है—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य जीव तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। नौ मास गर्भ में रहकर वहाँ से निकला। फिर उत्तानशय्या से अंगुष्ठ को चूसते हुए सात दिन तथा रेंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमन से सात दिन, स्थिर गमन से सात दिन, कलाओं में सात दिन, गुणों में सात दिन तथा और भी सात दिन इस प्रकार ४९ दिन बिताकर विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् उत्तम भोगभूमि की तीन पल्योपम आयु बिताकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अन्तर प्राप्त हो गया (१)। पीछे सम्यक्त्व को प्राप्त होकर (२) मरा और देव हो गया। इस प्रकार उनंचास दिनों से अधिक नौ मास और दो अन्तर्मुहूर्तों से कम तीन पल्योपम आयु मनुष्य सामान्य मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार से मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि इनसे उनमें कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों में सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती नानाजीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।६०।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।६१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।६२।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।६३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया त्रिविधमनुष्येषु स्थितसासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानपरिणतजीवेषु अन्यगुणस्थानं गतेषु गुणस्थानान्तरस्य जघन्येन एकसमयदर्शनात्। उत्कर्षेण—पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालावस्थानदर्शनात् द्विगुणस्थानाभ्यां विना एतेषां।**

एकजीवापेक्षया—सासादनस्य जघन्यान्तरं पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एतावत्कालेन विना प्रथम सम्यक्त्वग्रहणयोग्यस्य सागरोपमपृथक्त्वादधः सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वस्थित्योः उत्पत्तेरभावात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः अंतर्मुहूर्तं जघन्यान्तरं, अन्यगुणस्थानं गत्वा अंतर्मुहूर्तेन पुनरागमोपलंभात्।

उत्कर्षेण—सामान्यमनुष्यसासादनस्य तावदुच्यते—एकः तिर्यङ् देवो नारको वा सासादनकाले एकसमयोऽस्तीति मनुष्यो जातः। द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गत्वा अंतरं कृत्वा सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोटि-

---

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।६०।।

उक्त मनुष्यों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।।६१।।

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्यों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँभाग और अन्तर्मुहूर्त है।।६२।।

उक्त मनुष्यों का उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपमकाल है।।६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा तीनों ही प्रकार के मनुष्यों में स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से परिणत सभी जीवों के अन्य गुणस्थान में चले जाने पर इन गुणस्थानों का अन्तर जघन्य से एक समय देखा जाता है।

उत्कृष्ट से सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के बिना तीनों ही प्रकार के मनुष्यों का पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है।

एक जीव की अपेक्षा सासादन गुणस्थान का जघन्य अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि इतने काल के बिना प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण करने योग्य सागरोपमपृथक्त्व से नीचे होने वाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की स्थिति की उत्पत्ति का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि उसका अन्य गुणस्थान में जाकर अन्तर्मुहूर्त से पुनः आगमन पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—पहले मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एक तिर्यंच देव अथवा नारकी जीव सासादन गुणस्थान के काल में एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ। द्वितीय समय

अभ्यधिकत्रिपल्योपमप्रमाणं भ्रमित्वा पश्चात् उपशमसम्यक्त्वं गतः। तस्मिन् एकः समयोऽस्तीति सासादनं गत्वा मृतो देवो जातः। द्विसमयोना मनुष्योत्कृष्टस्थितिः सासादनोत्कृष्टान्तरं जातं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरुच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी अन्यगतितः आगतः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भादिअष्टवर्षेषु गतेषु विशुद्धः सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (१)। मिथ्यात्वं गतः, सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः गमयित्वा त्रिपल्योपमिकेषु मनुष्येषु उत्पन्नः आयुर्बद्ध्वा अवसाने सम्यग्मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (२) ततः मिथ्यात्वे सम्यक्त्वे वा येन आयुर्बद्धं तद्गुणस्थानं गत्वा मृतो देवो जातः (३)। एवं त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः अष्टवर्षैश्च ऊना स्वकस्थितिः सम्यग्मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं।

एवं मनुष्यपर्याप्त-मानुष्योरपि ज्ञातव्यं। विशेषेण तु-मनुष्यपर्याप्तेषु त्रयोविंशतिपूर्वकोटिप्रमाणं, मानुषीषु सप्तपूर्वकोट्यः त्रिषु पल्योपमेषु अधिका इति वक्तव्यं।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्। संप्रति त्रिविधमनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।६४।।

में मिथ्यात्व में जाकर और अन्तर को प्राप्त होकर सैंतालीस पूर्वकोटि प्रमाण से अधिक तीन पल्योपमकाल परिभ्रमण कर पुनः उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। उस उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार दो समय कम मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति सासादन गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर हो गया।

अब मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव अन्य गति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। गर्भ को आदि लेकर आठ वर्षों के व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ, सैंतालीस पूर्वकोटि प्रमाणकाल बिताकर तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और आयु को बांधकर अन्त में सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अन्तर लब्ध हुआ (२)। तत्पश्चात् मिथ्यात्व या सम्यक्त्व में से जिसके द्वारा आयु बंधी थी, उसी गुणस्थान में जाकर मरा और देव हो गया (३)। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षों से कम अपनी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याय और मनुष्यिनियों का भी अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्य पर्याप्तकों में तेईस पूर्वकोटि प्रमाण और तीन पल्योपम का अन्तर कहना चाहिए और मनुष्यिनियों में सात पूर्वकोटि से अधिक तीन पल्योपम कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का अन्तर निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीनों प्रकार के मनुष्यों में असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने के लिए तीन सूत्रों का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिक का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।६४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।६५।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया त्रिविधमनुष्येषु कश्चिदेकः मनुष्यः सम्यग्दृष्टिः अन्यगुणस्थानं गत्वा अंतरं प्राप्य पुनः प्रतिनिवृत्य अंतर्मुहूर्तेन आगच्छति। इति जघन्यान्तरं।**

उत्कर्षेण—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी अन्यगत्याः आगतः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भादिअष्टवर्षेषु गतेषु विशुद्धः वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१)। मिथ्यात्वं गत्वा अंतरं प्राप्य सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः गमयित्वा त्रिपल्योपमिकेषु उत्पन्नः। ततः बद्धायुष्कः सन् उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (२)। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे सासादनं गत्वा मृतो देवो जातः। द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां अष्टवर्षैश्च ऊना स्वकस्थितिः असंयतसम्यग्दृष्टीनां उत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं मनुष्यपर्याप्त-मानुष्योरपि। केवलं तु त्रयोविंशतिपूर्वकोट्यः सप्तपूर्वकोट्यश्च त्रिपल्योपमेषु अधिकाः इति वक्तव्यं।

एवं द्वितीयस्थले त्रिविधमनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनामन्तरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संयतासंयताद्यप्रमत्तसंयतानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

एक जीव की अपेक्षा मनुष्यत्रिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।६५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिक का उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि वर्ष पृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम है।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा इन मनुष्यों का कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा तीनों प्रकार के मनुष्यों में कोई एक सम्यग्दृष्टि मनुष्य अन्य गुणस्थान में जा करके अन्तर को प्राप्त हो पुनः लौटकर अन्तर्मुहर्त से वापस आता है। यह जघन्य अन्तर हुआ।

उत्कृष्ट से—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव अन्यगति से आया और मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भ से लेकर आठ वर्ष के बीतने पर विशुद्ध हो वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (१)ं पुनः मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो सैंतालिस पूर्वकोटि काल बिताकर तीन पल्योपम वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् आयु को बांधकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (२)। उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थिति प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों का भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि मनुष्यपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तथा मनुष्यिनियों में सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम होता है, ऐसा कहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तीनों प्रकार के मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती तक मुनियों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।६७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।६८।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधा अपि मनुष्याः संयतासंयताः प्रमत्तसंयताः अप्रमत्तसंयताश्च निरन्तराः सन्तीति नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया त्रिविधमनुष्येषु स्थितत्रिगुणस्थानजीवेषु मध्ये कस्यचिदेकजीवस्य अन्यगुणस्थानं गत्वान्तरं प्राप्य पुनरन्तर्मुहूर्तेन प्राचीनगुणस्थानागमोपलंभात्।**

उत्कर्षेण-मनुष्यसंयतासंयतस्य तावदुच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यगतेरागत्य मनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिकः जातो वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च समकं प्रतिपन्नः (१)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरं प्राप्य अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः परिभ्रम्य अवसाने देवायुर्बद्ध्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरं (२) मृतो देवो जातः। एवं अष्टवर्षैः द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्त्ताभ्यां च ऊना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः संयतासंयतस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

प्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरमुच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यगतेरागत्य मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भादि-अष्टवर्षैः वेदकसम्यक्त्वं संयमं च प्रतिपन्नः अप्रमत्तः (१) प्रमत्तो भूत्वा (२) मिथ्यात्वं गत्वान्तरं कृत्वा अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः

सूत्रार्थ—

संयतासंयतों से लेकर अप्रमत्तसंयतों तक के मनुष्यत्रिकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।६७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।६८।।

उक्त तीनों गुणस्थान वाले मनुष्यत्रिकों का उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों प्रकार के मनुष्य संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती सभी जीव निरन्तर होते हैं, क्योंकि इनका कोई अन्तरकाल नहीं है। एक जीव की अपेक्षा तीन प्रकार के मनुष्यों में स्थित तीन गुणस्थानवर्ती किसी एक जीव का अन्य गुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर पुनः वापस लौटकर अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पुराने गुणस्थान का होना पाया जाता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा से अब सर्वप्रथम संयतासंयत मनुष्य का अन्तर कहते हैं—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव अन्यगति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ पुनः गर्भ से लेकर आठ वर्ष का समय व्यतीत हुआ और वेदक सम्यक्त्व तथा संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो अड़तालीस पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण कर आयु के अन्त में देवायु बांधकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से उक्त अन्तर प्राप्त हुआ (२)। पुनः मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तों से कम अड़तालीस पूर्वकोटि काल संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव अन्यगति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भ से लेकर आठ वर्ष की उम्र में वेदक सम्यक्त्व और संयम को प्राप्त हो गया। पश्चात् वह अप्रमत्तसंयत (१), प्रमत्तसंयत होकर (२),

परिभ्रम्य अपश्चिमायां पूर्वकोट्यां बद्धायुष्को सन् अप्रमत्तो भूत्वा प्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं (३)। मृतो देवो जातः। त्रयान्तर्मुहूर्ताभ्यधिकाष्टवर्षैरूना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोप्यः प्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

अप्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरमुच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यगतेरागत्य मनुष्येषु उत्पद्य गर्भाद्यष्टवार्षिको जातः। सम्यक्त्वं अप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। प्रमत्तो भूत्वान्तरितः अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः परिभ्रम्य अपश्चिमायां पूर्वकोट्यां बद्धदेवायुष्कः सन् अप्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं (२)। ततः प्रमत्तो भूत्वा (३) मृतो देवो जातः। त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः अभ्यधिकैः अष्टवर्षैः ऊना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः उत्कृष्टान्तरं।

मनुष्यपर्याप्त-मानुष्योः एवमेव। केवलं—पर्याप्तेषु चतुर्विंशतिपूर्वकोट्यः मानुषीषु अष्टपूर्वकोट्यः इति वक्तव्यम्।

एवं तृतीयस्थले संयतासंयतादित्रयाणां अन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति चतुर्णां उपशामकानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।७०।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।७१।।

मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर, अड़तालीस पूर्वकोटि तक परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटि में बद्धायुष्क होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार से अन्तर प्राप्त हो गया (३)। उसके पश्चात् मरा और देव हो गया। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्ष से कम अड़तालीस पूर्वकोटि काल प्रमाण प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव अन्य गति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न होकर गर्भ काल से लेकर आठ वर्ष का हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अड़तालीस पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटि में बद्धदेवायु से सहित होता हुआ अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार से अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव हो गया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम अड़तालीस पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है।

मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यिनियों में इसी प्रकार का अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि इन पर्याप्त मनुष्यों में चौबीस पूर्वकोटि और मनुष्यिनियों में आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में संयतासंयत आदि तीनों गुणस्थानवर्ती मनुष्यों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब चारों उपशामक महामुनियों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।७०।।

चारों उपशामकों का उत्कर्ष से वर्षपृथक्त्व अन्तर है।।७१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।७२।।
उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चतुर्णां सूत्राणां अर्थः सुगमो वर्तते। **एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः मनुष्येषु उत्पन्नः गर्भाद्यष्टवर्षैः सम्यक्त्वं संयमं च समकं प्रतिपन्नः (१) प्रमत्ताप्रमत्त-गुणस्थानयोः सातासातबंधपरावृत्तिसहस्रं कृत्वा (२) दर्शनमोहनीयं उपशाम्य (३) उपशमश्रेणिप्रायोग्याप्रमत्तो जातः (४)। अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) उपशान्तः (८) पुनश्च[१] सूक्ष्मः (९) अनिवृत्तिः (१०) अपूर्वः (११) अप्रमत्तो भूत्वान्तरितः। अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः परिभ्रम्य अपश्चिमायां पूर्वकोट्यां बद्धदेवायुष्कः सम्यक्त्वं संयमं च प्रतिपद्य दर्शनमोहनीयमुपशाम्य उपशमश्रेणियोग्यविशुद्ध्या विशुद्ध्य अप्रमत्तो भूत्वा अपूर्वो जातः। लब्धमन्तरं। ततो निद्रा-प्रचलयोः बन्धव्युच्छेदप्रथमसमये कालं गतः देवो जातः। अष्टवर्षैः एकादशान्तर्मुहूर्तैः च अपूर्वकरणस्य सप्तमभागेन च ऊना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः उत्कृष्टान्तरं भवति। एवमेव त्रयाणामपि उपशामकानां। केवलं तु दशभिः नवभिः अष्टभिः अन्तर्मुहूर्तैः एकसमया-धिकाष्टवर्षैश्च ऊना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः उत्कृष्टान्तरं भवतीति वक्तव्यं।**

पर्याप्तमनुष्याणां मानुषीणां—भाववेदस्त्रीणां चैव एवमेव। केवलं तु पर्याप्तेषु चतुर्विंशतिपूर्वकोट्यः, मानुषीषु अष्टपूर्वकोट्यः इति वक्तव्यं। एवं चतुर्थस्थले उपशामकानामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

उक्त गुणस्थानों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।७२।।
चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चारों ही सूत्रों का अर्थ सरल है। यहाँ एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर का कथन करते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और गर्भ से लेकर आठ वर्ष की उम्र में सम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त कर लिया (१)। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में साता और असाता वेदनीय के बंध परावर्तनों को हजारों बार करके (२) दर्शनमोहनीय का उपशम करके (३) उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४) पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकषाय, पुनः नीचे उतरते हुए (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) और अप्रमत्तसंयत में आकर अन्तर को प्राप्त होकर अड़तालीस पूर्वकोटि तक परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटि में देवायु को बांधकर सम्यक्त्व और संयम को युगपत् प्राप्त होकर दर्शनमोहनीय का उपशम कर उपशमश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण संयत हुआ। इस प्रकार से अन्तर उपलब्ध हो गया। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचला के बंध-विच्छेद के प्रथम समय में काल को प्राप्त होकर देव हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से तथा अपूर्वकरण के सप्तम भाग से कम अड़तालीस पूर्वकोटिकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार से शेष तीन उपशामकों का भी अन्तर होता है।

विशेषता केवल यह है कि उनमें क्रमशः दश, नौ, और आठ अन्तर्मुहूर्तों से तथा एक समय अधिक आठ वर्षों से कम अड़तालीस पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

पर्याप्त मनुष्यों में तथा मनुष्यिनियों—भावस्त्रीवेदियों में भी ऐसा ही अन्तर है। केवल विशेषता यह है कि पर्याप्तकों में चौबीस पूर्वकोटि और मनुष्यिनियों में आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में उपशामकों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

---

१. अवतीर्यमाणः।

संप्रति चतुर्णां क्षपकानां अयोगिनां सयोगिनां च नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्र-चतुष्टयमवतार्यते—

चदुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।७४।।

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं।।७५।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।।७६।।

सजोगिकेवली ओघं।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया अपूर्वकरणादिएतेषु गुणस्थानेषु अन्यगुणस्थानं निर्वृत्तिं च गतेषु एतेषां एकसमयमात्रजघन्यान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण सामान्यमनुष्य-मनुष्यपर्याप्तयोः षण्मासमन्तरं भवति। मानुषीषु वर्षपृथक्त्वमन्तरं भवति।**

एषः क्रमः कथं ज्ञायते ?

गुरूपदेशात्।

एकजीवापेक्षया—क्षपकश्रेणीषु अयोगिष्वपि भूयः आगमनाभावात् नास्त्यन्तरं। सयोगिनामपि नानैकजीवान् प्रतीत्य नास्त्यन्तरं इति ओघवदुच्यते।

अब चारों क्षपक गुणस्थानवर्ती महामुनियों का, अयोगिकेवलियों का और सयोगिकेवलियों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

चारों क्षपक श्रेणी वाले और अयोगिकेवलियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय है।।७४।।

उक्त जीवों—क्षपक श्रेणी वाले एवं अयोगिकेवलियों का उत्कृष्ट अन्तर, छह मास और वर्ष पृथक्त्व होता है।।७५।।

चारों क्षपक श्रेणी वाले महामुनियों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।७६।।

सयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा इन अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों के चारों क्षपकों के अन्य गुणस्थानों में तथा अयोगिकेवली के निवृत्ति को चले जाने पर एक समय मात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट से सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यों का अन्तरकाल छह मास होता है। मनुष्यिनियों में वर्ष पृथक्त्व प्रमाण अन्तर होता है।

प्रश्न—यह क्रम कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—गुरु उपदेश से यह क्रम जाना जाता है।

एक जीव की अपेक्षा—क्षपकश्रेणी वाले चारों गुणस्थानवर्ती जीवों में और अयोगिकेवलियों के संसार में पुनः आगमन का अभाव होने से उनमें अन्तर नहीं पाया जाता है।

एवं पंचमस्थले क्षपकायोगिसयोगिपरमात्मनां अन्तरकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।
संप्रति मनुष्यापर्याप्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

मणुस अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।७८।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।७९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८०।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।८१।।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं।।८२।।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां जघन्येन एकसमयमन्तरं भवति, नानाजीवापेक्षया। एतस्य महद्राशेरन्तरं कथं भवति ?**

सयोगिकेवलियों का भी नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, उनका कथन गुणस्थान के समान कहा गया है।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में चारों क्षपकों का, अयोगिकेवलियों का एवं सयोगिकेवलियों का अन्तर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्य अपर्याप्तकों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।७८।।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।७९।।

एक जीव की अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।८०।।

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।८१।।

यह अन्तर गति की अपेक्षा कहा गया है।।८२।।

गुणस्थान की अपेक्षा तो दोनों प्रकार से भी अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का जघन्य अन्तर एक समय होता है।

शंका—इतनी बड़ी राशि का अन्तर किसलिए होता है ?

स्वभावादेव। न च स्वभावे युक्तिवादस्य प्रवेशोऽस्ति, भिन्नविषयत्वात्। उत्कर्षेण पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया—अनर्पितापर्याप्तकेषु उत्पद्य अत्यल्पकालेन पुनः लब्ध्यपर्याप्तकेषु आगतस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरोपलम्भात्। उत्कर्षेण—लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यस्य एकेन्द्रियं गतस्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्त्ते परिवर्त्त्य प्रतिनिवृत्त्य आगतस्य सूत्रोक्तान्तरोपलम्भात्।

एतदन्तरं गतिं प्रतीत्य कथितं। शिष्याणामन्तरसंभवप्रतिपादनार्थमेतत्सूत्रं। उभयतः जघन्योत्कृष्टाभ्यां नानैकजीवाभ्यां वा नास्त्यन्तरं इति उक्तं भवति। मार्गणां त्यक्त्वा गुणस्थानान्तरग्रहणाभावात् लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामिति।

तात्पर्यमेतत्—मनुष्यपर्यायं संप्राप्य वेदकसम्यक्त्वस्य यथान्तरं न स्यात्तथैव प्रयतितव्यं। पुनश्च क्षायिकसम्यक्त्वं लब्ध्वा जैनेश्वरीं दीक्षां आदाय क्षपकश्रेण्यारोहणार्थं पुरुषार्थो विधेयः। द्रव्यक्षेत्रकालभावसामग्रीं समग्रां कृत्वा सयोग्ययोगिजिनपरमात्मपदं परमानन्दमयं लब्ध्वा शाश्वतकालं सिद्धशिलाया उपरि निजशुद्धपरमात्मस्वरूपे स्थातव्यमिति।

एवं षष्ठस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

इति मनुष्यगत्यन्तराधिकारः।

समाधान—इस राशि का ऐसा स्वभाव ही है और स्वभाव में युक्तिवाद का प्रवेश नहीं होता है, क्योंकि उसका विषय भिन्न है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर होता है। एक जीव की अपेक्षा अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर अति अल्पकाल से पुनः लब्ध्यपर्याप्तकों में आये हुए जीवों का क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट से—एकेन्द्रियों में गये हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य का आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः लौटकर आये हुए जीव के सूत्र में कहा गया उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

यह अन्तर गति की अपेक्षा कहा गया है। शिष्यों को अन्तर की संभावना बतलाने के लिए यह सूत्र कहा गया है।

उभयतः अर्थात् जघन्य और उत्कृष्ट से अथवा नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है ऐसा कहा है। क्योंकि मार्गणा को छोड़े बिना लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के अन्य गुणस्थानों का ग्रहण नहीं हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके जैसे भी हो, वेदक सम्यक्त्व का अन्तर नहीं हो, उसी प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए। उसके पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सम्पूर्ण सामग्री की पूर्णता करके सयोगि और अयोगिजिन परमात्मपदरूप परमानन्दमयी अवस्था को प्राप्त करके शाश्वत काल तक सिद्धशिला के ऊपर जाकर निज शुद्ध परमात्मस्वरूप में स्थित होना चाहिए।

इस प्रकार छठे स्थल में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का अन्तर बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

यह मनुष्यगति अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अथ देवगत्यन्तराधिकारः

अथ स्थलपंचकेन सप्तदशसूत्रैः देवगतिनामान्तराधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले देवगतौ सामान्येन मिथ्यात्वासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्तिनोः अंतरप्रतिपादनत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले सासादन-मिश्रयोरन्तरप्ररूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले भवनत्रिकादारभ्य द्वादशस्वर्गपर्यन्तानां मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः अन्तरनिरूपणत्वेन ''भवणवासिय'' इत्यादि पुनश्च, एष्वेव सासादनमिश्रयोः अन्तरकथनत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले आनतादिनवग्रैवेयकेषु चतुर्गुणस्थानवर्तिनां देवानामन्तरकथनमुख्यत्वेन ''आणद जाव'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले अनुदिशादिसर्वार्थसिद्ध्यन्तं देवानामन्तरकथनत्वेन ''अणुदिसादि'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका।

अधुना देवगतौ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

देवगदीए देवगदीए मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।८४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।८५।।

अथ देवगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में सत्रह सूत्रों के द्वारा देवगति नाम का अन्तराधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में देवगति में सामान्य से मिथ्यात्व और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दो गुणस्थानों के देवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु "देवगदीए...." इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में सासादन और मिश्रगुणस्थानवर्ती देवों का अन्तर प्ररूपण करने वाले "सासण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में भवनत्रिक से आरंभ करके बारहवें स्वर्ग तक के मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का अन्तर निरूपण करने वाले "भवणवासिय....." इत्यादि पुनः इन्हीं में ही सासादन और मिश्र गुणस्थानवर्ती देवों का अन्तरकाल बतलाने हेतु "सासण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में आनत स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक के चारों गुणस्थानवर्ती देवों का अन्तर कथन करने वाले "आणद जाव....." इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पाँचवें स्थल में नव अनुदिश विमानों से लेकर सर्वार्थसिद्धि नामक अंतिम अनुत्तर विमान तक के अहमिन्द्र देवों का अन्तर कथन करने वाले "अणुदिसादि....." इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब देवगति में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।८४।।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।८५।।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**देवगतौ सामान्यतया नानाजीवानां मिथ्यादृष्टीनां असंयतसमयग्दृष्टीनां च नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया गुणस्थानान्तरं अपेक्ष्य जघन्येन अन्तर्मुहूर्तमन्तरं। उत्कर्षेण—देशोनं एकत्रिंशत्सागरप्रमाणं। तदेवोच्यते—एकः द्रव्यलिंगी दिगम्बरमुद्राधारी मुनिः मोहनीयकर्माष्टाविंशतिप्रकृति-सत्तायुतः उपरिमग्रैवेयकेषु क्वचिदुत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। एकत्रिंशत्सागरप्रमाणं सम्यक्त्वेनान्तरं प्राप्यावसाने मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (४)। च्युतः मनुष्यो जातः। एवं चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः न्यूनमेकत्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।**

पुनश्चासंयतसम्यग्दृष्टेरन्तरमुच्यते—एको द्रव्यलिंगी दिगम्बरः साधुः अष्टाविंशतिसत्ताकः उपरिमग्रैवेयकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गत्वान्तरं प्राप्य एकत्रिंशत्सागरं स्थित्वा आयुर्बद्ध्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरं (५)। एवं पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनमेकत्रिंशत्सागरप्रमाणं असंयतसम्यग्दृष्टेरूत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं प्रथमस्थले द्विगुणस्थानयोः देवयोरंतरप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वयोर्देवयोरन्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम कालप्रमाण है।।८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगति में सामान्यरूप से मिथ्यादृष्टि नाना जीव और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा गुणस्थान के अंतर को अपेक्षित करके जघन्य से अंतर्मुहूर्त काल का अंतर है। उत्कृष्ट से—कुछ कम इकतीस सागर प्रमाण अंतर है। उसी को बताते हैं—

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों के सत्व वाला एक द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुद्राधारी मुनि उपरिम ग्रैवेयकों में कहीं उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) पुनः वहाँ विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। इकतीस सागरोपमकाल सम्यक्त्व के साथ बिताकर आयु के अंत में मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से अंतर लब्ध हुआ (४) पश्चात् वहां से च्युत होकर मनुष्य हुआ। इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तों से कम इकतीस सागरोपमकाल मिथ्यादृष्टि देव का उत्कृष्ट अंतर होता है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देव का अंतर कहते हैं——मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों के सत्व वाला कोई एक द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुनि उपरिम ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त हो इकतीस सागरोपम रहकर और आयु को बांधकर, पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ (५)। ऐसे पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम इकतीस सागरोपम काल असंयतसम्यग्दृष्टि देव का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में दो गुणस्थानों के देवों का अंतर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती देवों का अंतर बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।८७।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।८८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।८९।।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चतुर्णां सूत्राणामर्थः सुगमः वर्तते। उत्कर्षेण तु एको द्रव्यलिंगी मुनिः उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य सासादनं गत्वा तत्रैकसमयोऽस्ति मृतो देवो जातः। एकसमयं सासादनेन दृष्टः। द्वितीयसमये मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा एकत्रिंशत्सागरं व्यतीत्य आयुर्बद्ध्वा उपशमसम्यक्त्वं संप्राप्य सासादनं गतः। लब्धमन्तरं। सासादनगुणस्थानैकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृत्वा मनुष्यो जातः। द्वाभ्यां समयाभ्यामूनमेकत्रिंशत्सागरप्रमाणं सासादनोत्कृष्टान्तरं।

तथैव एको द्रव्यलिंगी मुनिः अष्टाविंशतिसत्त्वसहितः उपरिमग्रैवेयकेषु उत्पन्नः षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गत्वा अंतरयित्वा

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय है।।८७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।८८।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अंतर्मुहूर्त है।।८९।।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवों का उत्कृष्ट अंतर कुछ कम इकतीस सागरोपम काल है।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन चारों सूत्रों का अर्थ सरल है। यहाँ उत्कृष्टरूप से कथन करते हैं—

एक द्रव्यलिंगी मुनि उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो करके और सासादनगुणस्थान में जाकर उसमें एक समय अवशेष रहने पर मरा और देव हो गया। वह देव पर्याय में एक समय सासादन गुणस्थान के साथ दृष्ट हुआ—देखा गया और दूसरे समय में मिथ्यात्वगुणस्थान में जाकर अंतर को प्राप्त हो इकतीस सागरोपमकाल बिताकर, आयु को बाँधकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो गया। पुनः सासादन गुणस्थान में चला गया। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। तब सासादन गुणस्थान के साथ एक समय रहकर द्वितीय समय में मरा और मनुष्य हो गया। इस प्रकार दो समयों से कम इकतीस सागरोपमकाल सासादन सम्यग्दृष्टि देव का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार से मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों के सत्ववाला कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१)। विश्राम लेकर (२)। विशुद्ध होकर (३)। सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होकर (४)। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त हो इकतीस

एकत्रिंशत्सागरं गमयित्वा आयुर्बद्ध्वा सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (५)। येन गुणस्थानेन आयुर्बद्धं तेनैव मृत्वा मनुष्यो जातः (६) एवं षडन्तर्मुहूर्तैः हीनमेकत्रिंशत्सागरप्रमाणं सम्यग्मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरम्।

एवं द्वितीयस्थले द्विगुणस्थानयोरन्तरकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना भवनत्रिक-सौधर्मादिसहस्त्रारकल्पपर्यंतानां देवानां जघन्योत्कृष्टान्तरप्ररूपणाय सूत्रचतुष्टय-मवतार्यते —

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।।९१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९२।।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।९३।।

सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **भवनत्रिकाणां द्वादशस्वर्गानां च वर्तमानानां मिथ्यादृष्टीनां असंयतसम्यग्दृष्टीनां**

सागरोपम काल बिताकर आगामी भव की आयु को बाँधकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (५)। उसके बाद जिस गुणस्थान से आयु को बाँधा था उसी गुणस्थान से मरा और मनुष्य हो गया (६)। इस प्रकार छह अंतर्मुहूर्तों से कम इकतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में दो गुणस्थानों का अंतर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब भवनत्रिक एवं सौधर्मस्वर्ग से लेकर सहस्त्रार कल्प तक के देवों का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर प्ररूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ऐशान से लेकर शतार सहस्त्रार तक के कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरन्तर है।।९१।।

उक्त देवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।९२।।

उक्त देवों का उत्कृष्ट अंतर क्रमशः सागरोपम, पल्योपम और कुछ अधिक दो, सात, दश, चौदह, सोलह और अट्ठारह सागरोपमप्रमाण है।।९३।।

उक्त स्वर्गों के सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का अंतर अपने-अपने गुणस्थानों के समान है।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भवनत्रिक और बारहवें सहस्त्रार स्वर्गों तक के रहने वाले तथा वर्तमान मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के अन्य गुणस्थान में जाकर अंतर को प्राप्त होकर, पुनः लघुकाल से

वा अन्यगुणस्थानं गत्वा अंतरं प्राप्य लघुकालेनागतानां जघन्यान्तरमन्तर्मुहूर्तमुच्यते एकजीवापेक्षया।

उत्कर्षेण—एकः तिर्यङ्मनुष्यो वा अर्पितदेवेषु स्व-स्वोत्कृष्टायुः स्थितिकेषु उत्पन्नः। पर्याप्तः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। अन्तरितः आत्मनः उत्कृष्टस्थितिमनुपाल्य अवसाने मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (४)। एवं चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वक-स्वकोत्कृष्टायुःस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं मिथ्यादृष्टेर्गुणस्थानस्य भवति।

एवमसंयतसम्यग्दृष्टेरपि ज्ञातव्यं। केवलं अत्र पंचभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वोत्कृष्टस्थितिप्रमाणमन्तरं भवति।

तथैव सासादनदेवानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च ओघवदन्तरं ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले भवनादिदेवानां अन्तरकथनप्रकारेण सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना आनतादिनवग्रैवेयकविमानवासिनां चतुर्गुणस्थानवर्तिनां जघन्योत्कृष्टान्तरनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

आणत जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।९५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९६।।

आये हुए देवों के अंतर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य अंतरकाल पाया जाता है। यह अंतर एक जीव की अपेक्षा है।

अब उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य अपने-अपने स्वर्ग की उत्कृष्ट आयु वाले विवक्षित देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१)। विश्राम लेकर (२)। विशुद्ध होकर (३)। वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हो अंतर को प्राप्त हुआ। पश्चात् अपनी उत्कृष्ट आयुस्थिति को बिताकर अंत में मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से अंतर प्राप्त हुआ (४)। इन चार अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी आयुस्थिति प्रमाण उन-उन स्वर्गों के मिथ्यादृष्टि देवों का उत्कृष्ट अंतर माना जाता है।

इसी प्रकार से असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का भी अंतर जानना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि उनके पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अंतर होता है।

इसी प्रकार से सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर गुणस्थानों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में भवनवासी आदि देवों का अंतर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब आनत स्वर्ग से लेकर नव ग्रैवेयक विमानवासी देवों में चारों गुणस्थानवर्ती देवों का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

आनतकल्प से लेकर नवग्रैवेयकविमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरन्तर है।।९५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अन्तर्मुहूर्त है।।९६।।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं ऊणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।९७।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवं प्रतीत्य अन्तराभावात्। एकजीवापेक्षया आनतादिचतुःस्वर्गेषु नवग्रैवेयकेषु अन्यगुणस्थानं आगतेनैव अन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं मन्यते। उत्कर्षेण—द्रव्यलिंगी मुनिः अर्पितदेवेषु उत्पन्नः। तत्र पूर्ववच्चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्व-स्वोत्कृष्टदेवस्थितिप्रमाणमन्तरमुत्कृष्टं मिथ्यादृष्टेः तस्य देवस्य ज्ञातव्यं।**

एवमसंयतसम्यग्दृष्टेरपि द्रव्यलिंगिसाध्वपेक्षया तत्र पंचभिरन्तर्मुहूर्तैः हीनं स्व-स्वोत्कृष्टस्थिति-प्रमाणमुत्कृष्टान्तरं पूर्ववत् कथयितव्यं।

सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योरपि सामान्यदेववद् ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले नवस्थानगानां देवानामन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति अनुदिशादि-अहमिन्द्राणां अन्तरकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

उक्त तेरह भवनों में रहने वाले देवों का उत्कृष्ट अंतर क्रमशः कुछ कम बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम कालप्रमाण होता है।।९७।।

उक्त आनतादि तेरह भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का अंतर अपने-अपने गुणस्थान के समान है।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा करके उपर्युक्त सभी देवों में अंतर का अभाव है। एक जीव की अपेक्षा आनतादि चार स्वर्गों में, नवग्रैवेयकों में देवों का अन्य गुणस्थान में जाकर वापस आने वाले जीवों का अंतर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है।

अब उत्कृष्ट अंतर बताते हैं—

कोई एक द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुनि विवक्षित देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पूर्ववत् चार अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवों का उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए।

इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि का भी द्रव्यलिंगी दिगम्बर साधु की अपेक्षा वहाँ पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण उत्कृष्ट अंतर पूर्ववत् कहना चाहिए।

सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती देवों का अंतर सामान्य देवों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में नव स्थानों को प्राप्त देवों का अंतर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनुदिश आदि विमानों के अहमिन्द्रों का अंतर कथन करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं—

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च (णत्थि) अंतरं, णिरंतरं।।९९।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अर्चि-अर्चिमालि-वैर-वैरोचन-सोम-सोमप्रभ-अंक-स्फटिक-आदित्याख्यनवानुदिशविमानेषु विजयवैजयन्तजयंतापराजितसर्वार्थसिद्धिविमानेषु च सर्वेऽपि देवा-अहमिन्द्राः सम्यग्दृष्टय एव, तेषां गुणस्थानपरिवर्तनाभावात् नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया वा नास्त्यन्तरं निरंतरं ते तत्र स्वात्मोत्थसुखामृतपानतृप्ताः तत्त्वचिंतनतत्पराः सुखिनो भवन्ति। ततश्च्युत्वा एकभवेन द्वित्रिभवग्रहणेन वा मनुष्याः भूत्वा कर्माणि दग्ध्वा सिद्धिपदं लप्स्यन्ते।**

एवं अवबुध्य सम्यग्दर्शनं स्थिरीकृत्य सम्यग्ज्ञानं आराधयद्भिः भवद्भिः सम्यक्चारित्रं अवलम्ब्य सर्वार्थसिद्धये प्रयत्नो विधेयः।

एवं पंचमस्थले नवानुदिशपंचानुत्तरविमानवासि-अहमिन्द्राणां अंतरकथनमुख्यत्वेन सूत्रे द्वे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां मार्गणासु गतिमार्गणानामप्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

अनुदिश को आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।९९।।

उक्त देवों में एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरन्तर है।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अर्चि-अर्चिमालिनी-वैर-वैरोचन-सोम-सोमप्रभ-अंक-स्फटिक-आदित्य नाम वाले नौ अनुदिश विमानों में तथा विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले सभी अहमिन्द्र देव नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इसलिए गुणस्थान परिवर्तन का अभाव होने से नाना जीव अथवा एक जीव की अपेक्षा इनमें कोई अंतर नहीं पाया जाता है, वे सभी निरंतर रहकर वहाँ निज आत्मा से उत्पन्न सुखरूपी अमृत का पान करते हुए तृप्त रहते हैं तथा तत्त्वचिंतन में तत्पर रहकर परमसुखी रहते हैं। वहाँ से च्युत होकर वे सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा एक भव लेकर अथवा दो, तीन भव ग्रहण करके मनुष्य होकर कर्मों को नष्ट करके सिद्धपद को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार जानकर हम सभी को अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करके सम्यग्ज्ञान की आराधना करना चाहिए तथा सम्यक् चारित्र का अवलम्बन लेकर सर्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तर विमानवासी अहमिन्द्रों का अंतर कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मार्गणाओं में गतिमार्गणा नामका प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इंद्रियमार्गणाधिकारः

अथ अष्टभिः स्थलैः एकोनत्रिंशत्सूत्रैः अन्तरानुगमे इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः। तत्र प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां अन्तरकथनत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियाणां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''बादरे'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां नानैकजीवयोः अंतरप्ररूपणत्वेन ''सुहुमे'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले विकलत्रयाणां जघन्योत्कृष्टान्तरकथनमुख्यत्वेन ''बीइंदिय'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले पंचेन्द्रियाणां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां नानैकजीवयोरन्तरकथनमुख्यत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिसूत्रपंचकं। पुनः षष्ठस्थले असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरकथनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनरपि सप्तमस्थले उपशामक-क्षपक-अयोगि-सयोगिनां अन्तरनिरूपणत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादि पंचसूत्राणि। ततः परं अष्टमस्थले पंचेन्द्रियापर्याप्तानां अन्तरकथनत्वेन ''पंचिंदियं'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति पातनिका।

संप्रति इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रियाणां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१०१।।

अथ इंद्रिय मार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब आठ स्थलों में उनतीस सूत्रों के द्वारा अंतरानुगम में इंद्रियमार्गणा नामका द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों का अंतरकथन करने वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु ''बादरे'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में नाना जीव और एक जीव का अंतर प्ररूपण करने हेतु ''सुहुमे'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में विकलत्रय जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर कथन करने हेतु ''बीइंदिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। अनंतर पंचम स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में नाना जीव और एक जीव का अंतर कथन करने की मुख्यता वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों का अंतर कथन करने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद सातवें स्थल में उपशामक, क्षपक, अयोगिकेवली और सयोगिकेवलियों का अंतर निरूपण करने वाले ''चदुण्हं'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनश्च आठवें स्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का अंतर बतलाने वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब इंद्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय जीवों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अंतर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इंद्रियमार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।१०१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्धा भवग्गहणं।।१०२।।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकजीवापेक्षया-कश्चिदेकेन्द्रियजीवः त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तेषु उत्पद्य सर्वलघुकालेन पुनः एकेन्द्रियमागतः तस्य क्षुद्रभवग्रहण मात्रान्तरोपलब्धः। एतज्जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—एकेन्द्रियः जीवः त्रसकायिकेषु उत्पद्य अंतरितः पूर्वकोटिपृथक्त्वेनाभ्यधिकद्विसागरोपमसहस्त्रमात्रां त्रसस्थितिं परिभ्रम्य एकेन्द्रियं गतः। लब्धमेकेन्द्रियाणामुत्कृष्टान्तरं त्रसस्थितिमात्रम्।**

एवं प्रथमस्थले एकेन्द्रियान्तरकथनपरेण त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना बादरैकेन्द्रियाणामन्तरप्ररूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

बादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१०४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१०५।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।१०६।।

एवं बादरेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं।।१०७।।

एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रियों का जघन्य अंतर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१०२।।

एकेन्द्रियों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम है।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं—कोई एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिक अपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर सर्वलघु काल में पुनः एकेन्द्रिय पर्याय को प्राप्त हो गया, उस जीव के क्षुद्रभवग्रहण मात्र का अंतर पाया जाता है। यह जघन्य अंतर है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा—कोई एक एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिकों में उत्पन्न होकर अंतर को प्राप्त हुआ और पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण त्रसकाय की स्थिति प्रमाण परिभ्रमण कर पुनः एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार एकेन्द्रियों का उत्कृष्ट अंतर त्रसस्थिति प्रमाण प्राप्त हुआ।

इस प्रकार प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का अंतर प्ररूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

बादर एकेन्द्रियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है। ।।१०४।।

उक्त जीवों का अंतरकाल एक जीव की अपेक्षा क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१०५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर असंख्यातलोकप्रमाण है।।१०६।।

इसी प्रकार से बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों का अंतर जानना चाहिए।।१०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कश्चिद् बादरैकेन्द्रियजीवः अन्यलब्ध्यपर्याप्तकेषु उत्पद्य सर्वस्तोकेन कालेन पुनः बादरैकेन्द्रियं आगतः। लब्धक्षुद्रभवग्रहणमात्रमन्तरं। एकजीवापेक्षया। उत्कर्षेण—एको बादरैकेन्द्रियः सूक्ष्मैकेन्द्रियादिषु उत्पद्य असंख्यातलोकमात्रकालं अंतरं व्यतीत्य पुनः बादरैकेन्द्रियेषु उत्पन्नः। लब्धमसंख्यातलोकमात्रं बादरैकेन्द्रियाणामन्तरं।**

एवमेव बादरैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तयोरन्तरं वक्तव्यं।

एवं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियाणामन्तरकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामन्तरकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१०८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१०९।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोःसूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेणान्तरं कथ्यते—सूक्ष्मैकेन्द्रियः पर्याप्तः अपर्याप्तो वा त्रिविधेषु सूक्ष्मेषु कश्चिदेको जीवः बादरैकेन्द्रियेषु उत्पन्नः। त्रसकायिकेषु बादरैकेन्द्रियेषु च**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई एक बादर एकेन्द्रिय जीव अन्य अपर्याप्तक जीवों में उत्पन्न होकर सबसे कम काल से पुनः बादर एकेन्द्रियपर्याय को प्राप्त हुआ। यह एक जीव की अपेक्षा क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण अंतर पाया जाता है। उत्कृष्ट से—एक बादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकों में उत्पन्न हो वहाँ पर असंख्यातलोकप्रमाण काल तक अंतर को प्राप्त होकर पुनः बादर एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार असंख्यातलोकप्रमाण बादर एकेन्द्रियों का अंतर प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अंतर जानना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय जीवों का अंतर बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं, निरंतर है। उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१०९।।

उक्त सूक्ष्मत्रिकों का उत्कृष्ट अंतर अंगुल के असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल प्रमाण है।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्टरूप से अन्तर का कथन करते हैं—

कोई एक सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक अथवा लब्ध्यपर्याप्तक जीव बादर एकेंद्रियों में उत्पन्न हुआ। वह त्रसकायिकों में और बादर एकेंद्रियों में अंगुल के असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और

असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाणमंगुलस्य असंख्यातभागं परिभ्रम्य पुनः त्रिष्वपि सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु आगत्योत्पन्नः। लब्धमन्तरं बादरैकेन्द्रियत्रसकायिकानामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणं सूक्ष्मैकेन्द्रियस्योत्कृष्टमिति।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामन्तरकथनत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि।

संप्रति विकलत्रयाणां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदिय तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१११।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।११२।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। उत्कर्षेण—द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाः सामान्याः त्रिविधाः, इमे च पर्याप्ताः अपर्याप्ता अपि सर्वे नवधा भणिताः। एषु मध्ये कश्चिदपि जीवः एकेन्द्रियेषु अनेकेन्द्रियेषु-पंचेन्द्रियेषु च उत्पद्य आवलिकायाः असंख्यातभागपुद्गलपरिवर्त्तानि परिवर्त्य पुनः नवसु विकलेन्द्रियेषु मध्ये उत्पन्नः। लब्धमन्तरं असंख्यातपुद्गलपरिवर्त्तमात्रं।**

अवसर्पिणी कालप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः तीनों प्रकार के सूक्ष्म एकेंद्रियों में से किसी में भी आकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बादर एकेंद्रियों और त्रसकायिकों की उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण सूक्ष्मत्रिक का उत्कृष्ट अंतर उपलब्ध हुआ।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेंद्रिय जीवों का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब विकलत्रय जीवों का अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और उन्हीं के पर्याप्तक तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है।।१११।।

उक्त द्वीद्रिंयादि जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।११२।।

उन्हीं विकलेंद्रियों का उत्कृष्ट अन्तर अनंतकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिर्वतन है।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्टरूप से—दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय के भेद से सामान्यरूप से विकलेंद्रियों के तीन भेद हैं। ये सभी पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों रूप होते हैं अतः नौ भेद हो जाते हैं। इन नवों प्रकार के जीवों के मध्य में कोई भी जीव एकेन्द्रियों में या अनेकेन्द्रिय अर्थात् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होकर आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके पुनः नवों प्रकार के विकलेन्द्रियों में से किसी एक में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अंतर प्राप्त हुआ।

एवं चतुर्थस्थले विकलत्रयाणामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।
संप्रति पंचेन्द्रियाणां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।११४।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।११५।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।११६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।११७।।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचेन्द्रियाणां सामान्यानां पर्याप्तानां च नानाजीवापेक्षया मिथ्यात्वगुणस्थानस्य अन्तरं नास्ति। एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तोनद्विवारं षट्षष्टिसागरप्रमाणं अन्तरं अस्ति। सासादनमिश्रगुणस्थानयोः गुणस्थानान्तरापेक्षया जघन्येन एकसमयमन्तरं। उत्कर्षेण पल्योपमस्या-**

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में विकलत्रय जीवों का अंतर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।
अब पंचेन्द्रियों में नाना जीव और एक जीव का अंतर प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—
सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर गुणस्थान के समान होता है।।११४।।

उक्त दोनों प्रकार के पंचेन्द्रिय सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर होता है।।११५।।

उपर्युक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।।११६।।

उन जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवां भाग और अंतर्मुहूर्त है।।११७।।

उन दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेंद्रियों का उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक एक हजार सागरोपम काल है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों का उत्कृष्ट अंतर सागरोपमशतपृथक्त्व है।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य पंचेन्द्रिय एवं पर्याप्तक जीवों में नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान का कोई अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अंतर्मुहूर्त काल है। उत्कृष्ट से अंतर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागर प्रमाण काल का अंतर पाया जाता है। सासादन और मिश्रगुणस्थान में गुणस्थानों के अंतर

संख्यातभागः। एकजीवापेक्षया जघन्येन सासादनस्य पल्योपमासंख्यातभागः सम्यग्मिथ्यात्वस्य अंतर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण तावदुच्यते—

एकः कश्चिद्जीवः अनंतकालमसंख्यातलोकमात्रं वा एकेन्द्रियेषु स्थितः असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु आगत्य उत्पन्नः। पंचभिः पर्याप्तिभिः मनोन्तरेण पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासि-वानव्यन्तरयोः आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रान्तः (५) क्रमेण कालं कृत्वा भवनवासि-वानव्यन्तरयोरूत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (९) सासादनं गतः। आदिर्दृष्टः।

पुनःमिथ्यात्वं गत्वा अंतरं प्राप्य स्वकस्थितिं परिवर्त्यावसाने सासादनं गतः। लब्धमन्तरं। ततः स्थावरप्रायोग्यमावलिकायाः असंख्यातभागमात्रं स्थित्वा कालं कृत्वा स्थावरकायेषु उत्पन्नः, आवलिकायाः असंख्यातभागेन नवान्तर्मुहूर्तैः ऊना स्वकस्थितिः अन्तरम्।

एवमेव सम्यग्मिथ्यात्वस्य ज्ञातव्यं, विशेषेण तु द्वादशान्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वकस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं वक्तव्यं।

'यथा उद्देशस्तथा निर्देशः' इति न्यायात् पंचेन्द्रियस्थितिः पूर्वकोटिपृथक्त्वेनाभ्यधिकसागरोपमसहस्रमात्रा, पर्याप्तानां सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रा इति वक्तव्यं।

एवं पंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रियपर्याप्तानां त्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

की अपेक्षा जघन्य से एक समय का अंतर है और उत्कृष्टरूप से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से सासादन गुणस्थान का अंतरकाल पल्योपम का असंख्यातवां भाग है और सम्यग्मिथ्यात्व का जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है।

अब उत्कृष्ट से इनका कथन करते हैं—

अनंतकाल या असंख्यातलोकप्रमाणकाल तक एकेन्द्रियों में रहा हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियों में आकर उत्पन्न हुआ। मन के बिना पांचों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (१)। विश्राम लेकर (२)। विशुद्ध होकर (३)। भवनवासी या वानव्यंतरों में आयु को बांधकर (४)। विश्राम लेकर (५)। क्रम से मरण करके भवनवासी या वानव्यंतरदेवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्ति होकर (६)। विश्राम लेकर (७)। विशुद्ध होकर (८)। उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (९)। पुनः सासादनगुणस्थान में चला गया। इस प्रकार इस गुणस्थान के अंतर का प्रारंभ देखा गया। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त होकर अपनी स्थितिप्रमाण परिवर्तित होकर आयु के अंत में सासादन गुणस्थान में चला गया। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् स्थावरकाय के योग्य आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उनमें रहकर मरण करके स्थावरकायिकों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आवली के असंख्यातवें भाग और नौ अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थिति ही इनका उत्कृष्ट अंतर माना जाता है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान का अंतरकाल जानना चाहिए, विशेषता यह है कि बारह अंतर्मुहूर्तों से कम स्वस्थितिप्रमाण उनका उत्कृष्ट अंतर होता है।

"जैसा उद्देश होता है, उसी के अनुसार निर्देश होता है", इस न्याय से पंचेन्द्रिय सामान्य की स्थिति पूर्वकोटीपृथक्त्व से अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होती है और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों की स्थिति शतपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होती है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय सामान्य एवं पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अंतर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति पंचेन्द्रियाणां असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि-अप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।११९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२०।।

उक्कस्सेण सागरोपमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेण कथ्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः असंज्ञिपंचेन्द्रियसम्मूर्च्छिम-पर्याप्तेषु उत्पन्नः। पंचभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासि-वानव्यन्तरदेवेषु आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रम्य (५) मृतो देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (९)। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे आसादनं गतोऽन्तरितः मिथ्यात्वं गत्वा स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अन्ते उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१०) पुनः सासादनं गतः आवलिकायाः असंख्यातभागं कालं स्थित्वा स्थावरकायेषु उत्पन्नः। दशभिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊना स्वकस्थितिः लब्धमुत्कृष्टान्तरं। केचित् शुकाः जलस्थिताः सर्पाश्च असंज्ञिनः**

अब पंचेन्द्रिय जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक के नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवें का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।११९।।

उपर्युक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।१२०।।

उन जीवों का उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटीपृथक्त्व से अधिक सहस्त्र सागरोपम तथा शतपृथक्त्व सागरोपम है।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इनमें से पूर्व के दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। आगे उत्कृष्टरूप से कथन करते हैं—एकेन्द्रिय पर्याय की भवस्थिति को प्राप्त कोई एक जीव, असंज्ञी पंचेंद्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) भवनवासी या वानव्यंतर देवों में आयु को बांधकर (४) विश्राम लेकर (५) मरा और देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (६) विश्राम लेकर (७) विशुद्ध होकर (८) उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (९)। उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान में चला गया और अंतर को प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व में जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अंत में उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (१०)। पुनः सासादन गुणस्थान में चला गया और वहाँ पर आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहकर स्थावरकायिकों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन दश अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर होता है। कोई तोता और जल में

श्रूयन्ते तेषामत्र ग्रहणं भवेत।

अत्र संज्ञिपंचेन्द्रियसम्मूर्च्छिमेषु उत्पन्नो भूत्वा सम्यक्त्वं संप्राप्य मिथ्यात्वस्यान्तरं प्राप्तमिति किन्न कथितं ?

न, तत्र संज्ञिपंचेन्द्रियसम्मूर्च्छिमेषु प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणाभावात्।

वेदकसम्यक्त्वं किन्न ग्राहितं ?

एकेन्द्रियेषु दीर्घकालमवस्थितस्य उद्वेलितसम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वस्य तदुत्पादने संभवाभावात्।

संयतासंयतस्य कथ्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तेषु उत्पन्नः त्रिपक्ष-त्रिदिवस-अंतर्मुहूर्तैः (१) प्रथमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (२) षडावलिकावशेषे प्रथमसम्यक्त्वकाले आसादनं गत्वान्तरितः। मिथ्यात्वं गत्वा स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अपश्चिमे पंचेन्द्रियभवे सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे संयमासंयमं प्रतिपन्नः (३) अप्रमत्तो (४)। प्रमत्तः (५) अप्रमत्तः (६)। उपरि षट्मुहूर्ताः। त्रिपक्षैः त्रिदिवसैः द्वादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊना स्वकस्थितिः लब्धं संयतासंयतानामुत्कृष्टान्तरं।

एकेन्द्रियेषु किन्नोत्पादितः?

लब्धमन्तरं कृत्वा उपरि सिद्धयत्कालपर्यंतकालात् मिथ्यात्वं गत्वा एकेन्द्रियेषु आयुर्बद्ध्वा तत्रोत्पद्यमानकालः संख्यातगुणः इति एकेन्द्रियेषु नोत्पादितः। उपरिमानामपि एतदेव कारणं वक्तव्यं।

रहने वाले सर्प असंज्ञी सुने जाते हैं उनका ही यहां ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यहाँ संज्ञी सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होकर और सम्यक्त्व को ग्रहण करके मिथ्यात्व के अंतर को प्राप्त क्यों नहीं हुआ ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ संज्ञी सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रियों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने का अभाव है।

शंका—वहाँ वेदकसम्यक्त्व को क्यों नहीं ग्रहण कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एकेन्द्रियों में दीर्घ काल तक रहने वाले और जिसने सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना की है, ऐसे जीव के वेदक सम्यक्त्व का उत्पन्न कराना संभव नहीं है।

अब संयतासंयत का अंतर कहते हैं—एकेन्द्रिय की स्थिति को प्राप्त करके कोई एक जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। तीन पक्ष, तीन दिवस और अंतर्मुहूर्त में (१) वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्व को तथा संयमासंयम को युगपत् प्राप्त हुआ (२)। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल के अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त कर अंतर को प्राप्त हुआ। मिथ्यात्व में जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अंतिम पंचेन्द्रिय भव में सम्यक्त्व को ग्रहण कर दर्शनमोहनीय का क्षय कर और संसार के अंतर्मुहूर्त प्रमाण अवशेष रहने पर संयमासंयम को प्राप्त हो गया (३)। उसके पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) हुआ। इनमें अपूर्वकरणादिसम्बंधी ऊपर के छह र्मुहूर्तों को मिलाकर तीन पक्ष, तीन दिवस और बारह अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण संयतासंयतों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

शंका—इन जीवों को एकेन्द्रियों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—संयतासंयत का अंतर प्राप्त होने के पश्चात् ऊपर सिद्ध होने तक के काल से मिथ्यात्व गुणस्थान में जाकर एकेन्द्रियों में आयु को बांधकर उनमें उत्पन्न होने का काल संख्यातगुणा है, इसलिए एकेंद्रियों

प्रमत्तस्योच्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षैः उपशमसम्यक्त्व-प्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१) प्रमत्तो जातः (२) अधः पतित्वाऽन्तरितः। स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अपश्चिमे भवे मनुष्यो जातः। दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वान्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे अप्रमत्तो भूत्वा प्रमत्तो जातः (३)। लब्धमन्तरं। भूयः अप्रमत्तः (४) उपरितनस्य—अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) क्षीणकषायः (८) सयोगी (९) अयोगी (१०) एभिः दशभिः अंतर्मुहूर्तैः अष्टवर्षैश्च ऊना स्वकस्थितिः प्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरम्।

एवमेव अप्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरं वक्तव्यं।

एवं षष्ठस्थले असंयताद्यप्रमत्तगुणस्थानवर्तिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति उपशामक—क्षपक-अयोगि-सयोगिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडि ओघं।।१२२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२३।।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं।।१२४।।

में नहीं उत्पन्न कराया। इसी प्रकार प्रमत्तादि उपरितन गुणस्थानवर्ती जीवों के भी यही कारण जानना चाहिए।

अब प्रमत्तसंयत का अंतर कहते हैं—एकेन्द्रियस्थिति को प्राप्त कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और गर्भ से लेकर आठ वर्षों में उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः नीचे गिरकर अंतर को प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अंतिम भव में मनुष्य हुआ। दर्शनमोहनीयकर्म का क्षयकर अंतर्मुहूर्तकाल संसार के अवशिष्ट रहने पर अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः उपरितन गुणस्थान के—अपूर्वकरण (५), अनिवृत्तिकरण (६), सूक्ष्मसांपराय (७), क्षीणकषाय (८), सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) इन दश अंतर्मुहूर्त और आठ वर्षों से कम अपनी स्थितिप्रमाण प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए।

इस तरह से छठे स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तक के जीवों का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशामक-क्षपक-अयोगिकेवली एवं सयोगिकेवलियों का अंतर प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

चारों उपशामकों का अंतर नाना जीवों की अपेक्षा गुणस्थान के समान होता है।।१२२।।

चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।१२३।।

चारों उपशामकों का उत्कृष्ट अंतर पूर्व कोटिपृथक्त्व से अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्व है।।१२४।।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।।१२५।।
सजोगिकेवली ओघं।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णां उपशामकानां जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं। एकजीवापेक्षया त्रयाणामुपशामकानां आरोहणावरोहणयोः जघन्यान्तरमन्तर्मुहूर्तं। उपशान्तकषायस्योधोऽवतीर्य पुनः सर्वजघन्येन कालेन उपशान्तकषायत्वं प्रतिपन्नस्य जघन्यान्तरं भवति।**

उत्कर्षेण—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षैः विशुद्धः उपशमसम्यक्त्वमप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः अंतर्मुहूर्तेन (१) वेदकसम्यक्त्वं गतः। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन (२) अनन्तानुबंधिनं विसंयोज्य (३) विश्रम्य (४) दर्शनमोहनीयं उपशाम्य (५) प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तसहस्रं कृत्वा (६) उपशमश्रेणियोग्याप्रमत्तो जातः (७) अपूर्वः (८) अनिवृत्तिः (९) सूक्ष्मः (१०) उपशान्तः (११) पुनःसूक्ष्मः (१२) अनिवृत्तिः (१३) अपूर्वः (१४)। अधोऽवतीर्य पंचेन्द्रियस्थितिं परिभ्रम्य पश्चिमे भवे मनुष्येषु उत्पन्नः।

दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे विशुद्धोऽप्रमत्तो जातः। पुनः प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्रं कृत्वा उपशमश्रेणियोग्याप्रमत्तो भूत्वा अपूर्वोपशामको जातः। लब्धमन्तरं (१५)। ततः अनिवृत्तिः (१६) सूक्ष्मः (१७) उपशान्तकषायः (१८) सूक्ष्मः (१९) अनिवृत्तिः (२०) अपूर्वः (२१) अप्रमत्तः (२२)

चारों क्षपक और अयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान होता है।।१२५।।
सयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चारों गुणस्थानवर्ती उपशामकों—उपशमश्रेणी आरोहण करने वाले महामुनियों का जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर वर्ष पृथक्त्व (३ वर्ष से नौ वर्ष के मध्य का काल) है। एक जीव की अपेक्षा तीन गुणस्थानवर्ती (आठवें, नवमें, दशवें) उपशामकों के आरोहण और अवरोहण का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त काल है। उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती का नीचे उतर कर पुनः सर्व जघन्य काल से उपशांतकषाय गुणस्थान को प्राप्त करने वाले मुनिराज के जघन्य अंतर होता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा—एकेन्द्रिय स्थिति में स्थित कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। गर्भ से लेकर आठ वर्षों में विशुद्ध होकर उपशम सम्यक्त्व को और अप्रमत्तगुणस्थान को युगपत् प्राप्त होता हुआ अंतर्मुहूर्त में (१) वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पश्चात् अंतर्मुहूर्त में (२) अनंतानुबंधी कषायचतुष्क का विसंयोजन करके (३) विश्राम लेकर (४) दर्शनमोहनीय का उपशम कर (५) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परावर्तन करके (६) उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (७)। पश्चात् अपूर्वकरणसंयत (८) अनिवृत्तिकरणसंयत (९) सूक्ष्मसाम्पराय संयत (१०) उपशान्तकषाय (११) पुनः उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय संयत हुआ (१२) अनिवृत्तिकरणसंयत (१३) अपूर्वकरणसंयत (१४) हो नीचे उतरकर पंचेन्द्रिय की स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अंतिम भव में मनुष्यों में उत्पन्न हुआ पश्चात् दर्शनमोहनीय का क्षयकर संसार के अंतर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ पुनः प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान में हजारों परिवर्तन करके उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्त होकर अपूर्वकरण उपशामक हो गया। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ (१५) पश्चात् अनिवृत्तिकरण संयत (१६) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१७) उपशान्तकषाय (१८) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१९) अनिवृत्तिकरण संयत (२०) अपूर्वकरण संयत (२१) अप्रमत्त संयत (२२) प्रमत्तसंयत (२३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (२४)। इसके

प्रमत्तः (२३) अप्रमत्तः (२४)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। एवं अष्टभिः वर्षैः त्रिंशदन्तर्मुहूर्तैः ऊनायुःस्थितिः अपूर्वस्योत्कृष्टान्तरं। एवं त्रयाणामुपशामकानामपि वक्तव्यं। केवलं-अष्टाविंशति-षड्विंशति-चतुर्विंशति-अंतर्मुहूर्तैः अष्टवर्षैश्च हीनाः स्वक-स्वकस्थितयः उत्कृष्टान्तरं भवति।

नानाजीवापेक्षया चतुर्णां क्षपकाणां अयोगिनां च जघन्येन एकसमयं अन्तरं। उत्कर्षेण षण्मासाः। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं, निरन्तरं अस्ति इति ज्ञातव्यं। सयोगिकेवलिनामपि अन्तरं नास्ति इति।

एवं सप्तमस्थले क्षपकादीनामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रपञ्चकं गतम्।

लब्ध्यपर्याप्तपंचेन्द्रियाणां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पंचिंदियअपज्जत्ताणं वेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो।।१२७।।

एवमिंदियं पडुच्च अंतरं।।१२८।।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लब्ध्यपर्याप्तपंचेन्द्रियस्य एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणमात्रमन्तरं। उत्कर्षेण अनंतकालं, असंख्यातपुद्गलपरिवर्त्तं इति। शेषं पूर्ववत् कथयितव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—पंचेंद्रियाणि संप्राप्य येन केनापि उपायेन मोक्षमार्गः साधयितव्यः, अन्यथा यदि कदाचिदेकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गमनं तर्हि मनोऽभावे कर्णाभावे च न केचिदपि गुरुवः संबोधयितुं क्षमाः

ऊपर क्षपक श्रेणी संबंधी छह अंतर्मुहूर्त होते हैं। इस प्रकार तीस अंतर्मुहूर्त और आठ वर्षों से कम पंचेन्द्रियस्थितिप्रमाण अपूर्वकरण का उत्कृष्ट अंतर होता है। इसी प्रकार से शेष तीनों उपशामकों का भी अंतर कहना चाहिए। केवल विशेष बात यह है कि उनके क्रमशः अट्ठाईस, छब्बीस और चौबीस अंतर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्ष कम अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण उत्कृष्ट अंतर होता है।

नाना जीव की अपेक्षा चारों क्षपक गुणस्थानवर्ती और अयोगिकेवली भगवन्तों का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह माह का काल है। एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है ऐसा जानना चाहिए। सयोगिकेवलियों का भी अन्तर नहीं है ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार सातवें स्थल में क्षपक आदिकों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों का अन्तर द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के समान है।।१२७।।

यह इन्द्रिय की अपेक्षा अन्तर कहा गया है।।१२८।।

गुणस्थान की अपेक्षा दोनों ही प्रकार से अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय जीव का जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणमात्र है। उत्कृष्ट की अपेक्षा अनंतकाल वाला असंख्यातपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तर है। शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि पाँचों इन्द्रियों की पूर्णता करके अब हम सभी को जिस किसी प्रकार से भी मोक्षमार्ग की सिद्धि करनी चाहिए, अन्यथा यदि कदाचित् एकेन्द्रिय अथवा विकलेन्द्रिय जीवों में जाना हो गया तो मन

भवन्ति। संप्रति गुरूपदेशं जिनवाणीस्वाध्यायं च लब्ध्वा प्रमादं अपसार्य रत्नत्रयं संरक्षणीयं प्रयत्नेति। एवं अष्टमस्थले पंचेन्द्रियापर्याप्तानां अन्तरकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

के अभाव में और कर्णेन्द्रिय के अभाव में कोई गुरु भी सम्बोधन प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। अतः अब गुरु का उपदेश प्राप्त करके और जिनवाणी का स्वाध्याय करके प्रमाद छोड़कर प्रयत्नपूर्वक रत्नत्रय का संरक्षण करना चाहिए।

इस तरह से आठवें स्थल में पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नामका द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन का महत्व

जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के दर्शन की भावना करते ही दो उपवास का फल मिल जाता है। चलने की अभिलाषा करते ही तीन उपवास का फल, चलने का आरंभ करते ही चार उपवास का फल, चलते-चलते पाँच उपवास का फल, कुछ दूर चले आने पर बारह उपवास का फल, बीच मार्ग में पहुँच जाने पर पन्द्रह उपवास का फल, सुमेरु की चोटी का दर्शन करते ही एक मास के उपवास का फल, मंदिर में प्रवेश करने पर छह मास के उपवास का फल, मंदिर के द्वार में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का फल, तीन प्रदक्षिणा देने पर सौ वर्ष के उपवास का फल, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन करने से हजार वर्ष के उपवास का फल मिलता है। पुनः जिनप्रतिमा के सन्मुख खड़े होकर भावपूर्वक स्तुति करने से अनंत उपवास का फल प्राप्त होता है। यथार्थ में जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से बढ़कर और कोई उत्तम पुण्य नहीं है।

–पद्मपुराण, पर्व 32, पृ. 99

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ सप्तभिः स्थलैः त्रयोविंशतिसूत्रैः कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः कथ्यते — तत्र तावत् प्रथमस्थले पृथिवीकायिकादिचतुष्कानां ''कायाणुवादेण'' इत्यादि अन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले वनस्पतिकायिकनिगोदानां अन्तरकथनप्रकारेण ''वणप्फदि'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनः तृतीयस्थले बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराणां अन्तरकथनत्वेन ''बादरवणप्फदि'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं चतुर्थस्थले त्रसाणां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''तसकाइय'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमस्थले असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् षष्ठस्थले उपशामक-क्षपक-अयोगि-सयोगिनां अन्तरप्ररूपणत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिसूत्रपंचकं। ततः परं सप्तमस्थले लब्ध्यपर्याप्तत्रसाणां अन्तरनिरूपणत्वेन ''तसकाइय'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति पृथिवीकायादिचतुष्कजीवानां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइयबादर-सुहुमपज्जत्तमपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१३०।।

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब सात स्थलों में तेईस सूत्रों के द्वारा कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवों का अन्तर कथन करने हेतु ''कायाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर बतलाने वाले ''वणप्फदि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर वाले एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर कथन करने हेतु ''बादर वणप्फदि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् चतुर्थ स्थल में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक जीवों का अन्तर बतलाने वाले ''तसकाइय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का अन्तर निरूपण करने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् छठे स्थल में उपशामक, क्षपक-अयोगिकेवली और सयोगिकेवलियों का अन्तर प्ररूपण करने वाले ''चदुण्हं' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः सातवें स्थल में लब्ध्यपर्याप्तक त्रस जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''तसकाइय'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब पृथिवीकायिकादि चार स्थावरकायिक जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणा के अनुवाद से पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, इनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१३०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१३१।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१३२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोः अर्थः सुगमः। कश्चित् जीवः अर्पितपृथिव्यादिकायात् वनस्पतिकायिकेषु उत्पद्य अन्तरितः वनस्पतिकायस्थितिं आवलिकायाः असंख्यातभागपुद्गलपरिवर्त्तमात्रं परिभ्रम्य अनर्पितशेषकायस्थितिं च, ततोऽर्पितकायमागतः यो भवति, तस्य सूत्रोक्तोत्कृष्टान्तरमुपलभ्यते।**

एवं प्रथमस्थले पृथिव्यादिचतुष्कान्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानामन्तरकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१३३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१३४।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।१३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अर्पित-वनस्पतिकायात् पृथिवीजलतेजोवायुकायिकेषु क्वचिद् उत्पद्य असंख्यातलोकमात्रकालं तत्रैव परिभ्रम्य पुनोऽर्पितकायमागतस्य असंख्यातलोकप्रमाणमन्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण**

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१३१।।

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है।।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। विवक्षित पृथिवी आदि काय से वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न होकर अन्तर को प्राप्त हुआ कोई जीव आवली के असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तन वनस्पतिकाय की स्थिति तक परिभ्रमण कर और अविवक्षित शेष कायिक जीवों की भी स्थिति तक परिभ्रमण करके तत्पश्चात् विवक्षित काय में जो जीव आता है उसके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर जीवों का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक, निगोद जीव उनके बादर व सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१३३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१३४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।।१३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विवक्षित वनस्पतिकाय से पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों में उत्पन्न होकर असंख्यात लोकमात्र काल तक उन्हीं में परिभ्रमण कर पुनः विवक्षित वनस्पतिकाय में आये

एतदन्तरं। अत्र सूत्रे ''वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव'' पदेन वनस्पतिकायिकसाधारणशरीराः जीवा ज्ञातव्या, किंच अग्रे सूत्रे ''बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर'' पदेन बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराः ग्रह्यन्ते इति।

सत्प्ररूपणायामपि प्रोक्तं श्रीपुष्पदन्ताचार्येण—

''वणप्फदिकाइया दुविहा—पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा—बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि[१]।।४१।।

कश्चिदाह—अग्रे द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबंधे कायमार्गणायां अल्पबहुत्वानुगमे बादरनिगोदप्रतिष्ठिता-प्रतिष्ठिताजीवाः वनस्पतिकायेषु न गृहीताः सन्ति अत्र तु गृहीताः सन्ति कथमेतत् ?

तस्यैव समाधानं ददाति—तदेव प्रकरणं द्रष्टव्यमस्ति-तद्यथा—

''वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।७४।।

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो।

अण्णेसु सुत्तेसु सव्वाइरियसंमदेसु एत्थेव अप्पाबहुगसमत्ती होदि, पुणो उवरिमअप्पाबहुगपयारस्स प्रारंभो। एत्थ पुण सुत्ते अप्पाबहुगसमत्ती ण होदि।

णिगोदजीवा विसेसाहिया।।७५।।

अत्र शंकाकारो भणति—निष्फलं इदं सूत्रं, वनस्पतिकायिकेभ्यः पृथक्भूतनिगोदानामनुपलंभात्। न

हुए कोई जीव के असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर पाया जाता है। यह उत्कृष्ट अन्तर हुआ। यहाँ सूत्र में ''वनस्पतिकायिक निगोद जीव'' इस पद से वनस्पतिकायिक साधारणशरीर जीव समझना चाहिए, क्योंकि आगे सूत्र में ''बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर'' पद से बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर वाले जीवों का ग्रहण होगा। श्री पुष्पदन्ताचार्य ने सत्प्ररूपणा में भी कहा है—

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारण शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—बादर और सूक्ष्म। बादर दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त।।४१।।

यहाँ कोई शंका करता है—

आगे द्वितीय खण्ड के क्षुद्रकबंध में कायमार्गणा में अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण के अन्तर्गत बादर निगोदिया सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीव वनस्पतिकायिक जीवों में ग्रहण नहीं किये गये हैं और यहाँ उनको वनस्पतिकायिक में ग्रहण किया है सो ऐसा क्यों किया गया है ?

आचार्यदेव इसी शंका का समाधान देते हैं—यही प्रकरण दृष्टव्य है, उसी को कहते हैं—

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों से वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक है।।७४।।

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक जीवों के बराबर है।

सर्व आचार्यों से सम्मत अन्य सूत्रों में यहाँ ही अल्पबहुत्व की समाप्ति होती है, पुनः आगे के अल्पबहुत्वप्रकार का प्रारंभ होता है। परन्तु इस सूत्र में अल्पबहुत्व की समाप्ति यहाँ पर नहीं होती।

वनस्पतिकायिकों से निगोद जीव विशेष अधिक हैं।।७५।।

यहाँ शंकाकार कहता है कि यह सूत्र निष्फल है, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीवों से पृथग्भूत निगोद

---

१. षट्खंडागम (धवला टीका समन्वित) पु. १, पृ. २७०।

च वनस्पतिकायिकेभ्यः पृथग्भूता पृथिवीकायिकादिषु निगोदा सन्ति इति आचार्याणामुपदेशो येन। अस्य वचनस्य सूत्रत्वं प्रसज्यते इति ?

अत्र परिहारः उच्यते — भवतु नाम तवोक्तस्यार्थस्य सत्यत्वं, बहुषु सूत्रेषु वनस्पतीनामुपरि निगोदपदस्य अनुपलंभात् निगोदानामुपरि वनस्पतिकायिकानां प्रथमस्योपलंभात् बहुभिः आचार्यैः संमतत्वात् च। किं तु इदं सूत्रमेव न भवतीति नावधारणं कर्तुं युक्तं।

''सो एवं भणदि जो चोद्दसपुव्वधरो केवलणाणी वा। ण वट्टमाणकाले ते अत्थि, ण च तेसिं पासे सोदूणागदा वि संपइ उवलब्भंति। तदो थप्पं काऊण वे वि सुत्ताणि सुत्तासायणभीरुहि आइरिएहि वक्खाणेयव्वाणि त्ति[१]।''

कश्चिदाशंकते — निगोदानामुपरि वनस्पतिकायिका विशेषाधिकाः भवन्ति बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येक-शरीरमात्रेण, वनस्पतिकायिकानामुपरि पुनः केन विशेषाधिका भवन्तीति ?

आचार्येण उच्यते — तद्यथा — वनस्पतिकायिकाः इति उक्ते बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितजीवा न गृहीतव्या। किंच, आधेयात् आधारस्य भेददर्शनात्।

वनस्पतिनामकर्मोदयत्वेन सर्वेषामेकत्वमस्तीति चेत् ?

भवतु नाम, तेन एकत्वं, किन्तु तदत्र अविवक्षितं, आधारानाधारत्वयोरेव विवक्षितमस्ति। तेन वनस्पतिकायिकेषु बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिता न गृहीताः। वनस्पतिकायिकानामुपरि 'णिगोदा विसेसाहिया।' इति भणिते बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरैः बादरनिगोदप्रतिष्ठितैश्च विशेषाधिकाः।

जीव पाये नहीं जाते तथा 'वनस्पतिकायिक जीवों से पृथग्भूत पृथिवीकायिकादिकों में निगोद जीव हैं' ऐसा आचार्यों का उपदेश भी नहीं है, जिससे इस वचन के सूत्रत्व का प्रसंग हो सके ?

यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हैं — तुम्हारे द्वारा कहे गये अर्थ में भले ही सत्यता हो, क्योंकि बहुत से सूत्रों में वनस्पतिकायिक जीवों के आगे 'निगोद' पद नहीं पाया जाता और निगोद जीवों के आगे वनस्पतिकायिकों का पाठ पाया जाता है, और यह कथन बहुत से आचार्यों से सम्मत है किन्तु 'यह सूत्र ही नहीं है' ऐसा निश्चय करना उचित नहीं है।

इस प्रकार तो वही कह सकता है जो चौदह पूर्वों का धारक हो अथवा केवलज्ञानी हो। परन्तु वर्तमान काल में न तो वे दोनों हैं और न उनके पास में सुनकर आये हुए अन्य महापुरुष भी इस समय उपलब्ध होते हैं। अतएव सूत्र की आशादना से भयभीत रहने वाले आचार्यों के इस विवाद को स्थगित मानकर दोनों ही सूत्रों का व्याख्यान करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि निगोद जीवों के ऊपर वनस्पतिकायिक जीव बदर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर मात्र से विशेष अधिकाधिक होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक जीवों के आगेनिगोदजीव किससे विशेषाधिक होते हैं ?

ऐसा कहने पर आचार्य कहते हैं तथा 'वनस्पतिकायिक जीव' ऐसा कहने पर बादर निगोदों से प्रतिष्ठित- अप्रतिष्ठित जीवों का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि आधेय से आधार का भेद देखा जाता है।

वनस्पति नामकर्म के उदयपने की अपेक्षा सबमें एकता है ऐसा कहने पर उस अपेक्षा से भले ही एकता रहे परन्तु वह यहाँ विवक्षित नहीं है। यहाँ आधार और अनाधार की ही विवक्षा है। इस कारण जो वनस्पतिकायिक जीव हैं उनमें बादर, निगोद, प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित जीवों का ग्रहण नहीं किया गया है। अतः वनस्पतिकायिक जीवों के ऊपर निगोद जीव विशेष अधिक हैं। ऐसा कहने पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों से तथा बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवों से विशेष अधिक हैं। ऐसा समझना चाहिए।

---

१. षट्खंडागम पु. ७, पृ. ५३९ से ५४१।

बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितानां कथं निगोदव्यपदेशः ?

न, आधारे आधेयोपचारात् तेषां निगोदत्वसिद्धत्वात्।

वनस्पतिनामकर्मोदयसहितानां सर्वेषां 'वनस्पतिसंज्ञा' सूत्रे दृश्यते। पुनः बादरनिगोदप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितानामत्र सूत्रे 'वनस्पतिसंज्ञा' किन्न निर्दिष्टा ?

''गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ[१]।''

अत्र प्रश्नोत्तराभ्यां अतीव स्पष्टीकृतं वर्तते, अतो नात्र विस्तीर्यते इति। एवं द्वितीयस्थले बादरवनस्पतिकायिकनिगोदानां अंतरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराणां अन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१३६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१३७।।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।।१३८।।

शंका—बादर निगोद प्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित जीवों के निगोद संज्ञा कैसे घटित होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आधार में आधेय का उपचार करने से उनके निगोदपना सिद्ध होता है।

शंका—वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त जीवों के 'वनस्पति' संज्ञा सूत्र में देखी जाती है। बादर निगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं निर्दिष्ट की ?

समाधान—इस शंका का उत्तर गौतम गणधर से पूछना चाहिए। गौतम गणधर देव बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों को 'वनस्पति' यहाँ संज्ञा इष्ट नहीं मानते, इस तरह यहाँ हमने उनका अभिप्राय कहा है।

यहाँ प्रश्न और उत्तर के द्वारा बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया है, इसलिए यहाँ और अधिक विस्तार नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादरवनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१३६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।।१३७।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।१३८।।

---

१. षट्खंडागम पु. ७, पृ. ५३९ से ५४१।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। उत्कर्षेण—विवक्षितकायात् निगोदजीवेषु उत्पन्नः सार्धद्वय पुद्गलपरिवर्त्तानि शेषकायपरिभ्रमणेन सातिरेकानि परिभ्रम्य विवक्षितकायमागतः, तस्य एतदुत्कृष्टान्तरं भवति।**

एवं तृतीयस्थले वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरजीवानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना त्रसकायिकानां त्रिगुणस्थानवर्तिनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

तसकाइय—तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।१३९।।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।१४०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, अंतोमुहुत्तं।।१४१।।

उक्कस्सेण सागरोवम सहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।१४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। तृतीय सूत्र के अनुसार उत्कृष्ट कथन करते हैं—विवक्षित काय से निगोद जीवों में उत्पन्न हुए तथा उसमें अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन और शेषकायिक जीवों में परिभ्रमण करने से उनकी स्थितिप्रमाण कुछ अधिक काल परिभ्रमण कर विवक्षित काय में आये हुए जीव के अढ़ाईपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमाण अन्तर पाया जाता है। यह उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक तीन गुणस्थानवर्ती नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।१३९।।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा गुणस्थानों के समान अन्तर है।।१४०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पल्योपम के असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।।१४१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटी-पृथक्त्व से अधिक दो सहस्त्र सागरोपम और कुछ कम दो सहस्त्र सागरोपम है।।१४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रसाणां एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण च षट्षष्टिसागरा देशोनाः। सासादनानां जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमस्य असंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु उत्पन्नः। पंचभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासि-वानव्यंतरदेवेषु आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रान्तः (५) मृतो भवनवासि-वान-व्यन्तरदेवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (९) सासादनं गतः। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। त्रसस्थितिं परिवर्त्त्य अवसाने सासादनं गतः। लब्धमन्तरं। ततः तत्र स्थावरयोग्यमावलिकायाः असंख्यातभागं स्थित्वा कालं गतः स्थावरकायिकेषु उत्पन्नः। आवलिकायाः असंख्यातभागेन नवभिः अंतर्मुहूर्तैश्च ऊनं त्रसकायिक-त्रसकायिकपर्याप्तस्थितिप्रमाणमंतरं भवति।**

एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टेरपि ज्ञातव्यं। केवलं अत्र द्वादशान्तर्मुहूर्तैर्न्यूनं त्रस-त्रसपर्याप्तस्थितिप्रमाणमन्तरं भवति इति कथयितव्यं।

एवं चतुर्थस्थले त्रसकायिकानां त्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रस जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अंतर कुछ कम छ्यासठ सागर प्रमाण है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है।

एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एकेन्द्रिय की स्थिति में स्थित कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवों में आयु को बांधकर (४) वहाँ विश्राम लेकर (५) मरा और भवनवासी या वानव्यन्तर देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (६) विश्राम लेकर (७) विशुद्ध होकर (८) उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होकर (९) सासादन गुणस्थान में चला गया। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया और त्रस जीवों की स्थिति प्रमाण परिवर्तन करके अन्त में सासादनगुणस्थान में चला गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उस सासादनगुणस्थान में स्थावरकाय के योग्य आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहकर मरा और स्थावरकायिकों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आवली के असंख्यातवें भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तों से कम त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों की स्थिति प्रमाण अन्तर होता है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के बारे में भी जानना चाहिए। यहाँ केवल बारह अन्तर्मुहूर्तों से कम त्रस और त्रस पर्याप्तकों की स्थितिप्रमाण ही दोनों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर होता है। ऐसा कथन करना चहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में तीन गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती आदि तक के जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत तक त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१४३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४४।।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बेसागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेण-असंयतसम्यग्दृष्टेः उच्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः इत्यादिना पूर्ववत् दशभिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनं त्रस-त्रसपर्याप्तस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।

संयतासंयतस्य उच्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिंस्थितः संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तेषु उत्पन्नः।

असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तेषु किन्नोत्पादितः?

न, तत्र संयमासंयमग्रहणाभावात्। त्रिपक्ष-त्रिदिवसैः अन्तर्मुहूर्तेन च प्रथमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। प्रथमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाशेषे सासादनं गतः। अन्तरितः मिथ्यात्वं गत्वा स्वकस्थितिं परिभ्रम्य पश्चिमे त्रसभवे सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे संयमासंयमं प्रतिपन्नः (३)। लब्धमन्तरं। अप्रमत्तः (४) प्रमत्तः (५) पुनः अप्रमत्तः (६) उपरि क्षपकश्रेण्यां षड्मुहूर्ताः। एवं द्वादशान्तर्मुहूर्ताधिक-अष्टचत्वारिंशद्दिवसैः ऊनं त्रसत्रसपर्याप्तस्थितिप्रमाणं संयतासंयतोत्कृष्टान्तरं भवति।

प्रमत्तस्योच्यते—एकः एकेन्द्रियस्थितिं स्थितः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षेण उपशमसम्यक्त्वं

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१४४।।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रसपर्याप्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो सहस्र सागरोपम और कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्टरूप से असंयतसम्यग्दृष्टि का अन्तर कथन करते हैं—एक कोई जीव एकेन्द्रिय स्थिति को प्राप्त होता हुआ पूर्ववत् दश अन्तर्मुहूर्तों से न्यून—कम त्रस और त्रसपर्याप्तस्थितिप्रमाण के उत्कृष्ट अन्तर को प्राप्त होता है।

अब संयतासंयत जीवों का अन्तर कहते हैं—एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति में स्थित कोई एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीव को असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसमें संयमासंयम को ग्रहण करने का अभाव है। पुनः उत्पन्न होने के पश्चात् तीन पक्ष तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्त से प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली काल शेष रहने पर सासादनगुणस्थान में चला गया और अन्तर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व में जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अंतिम त्रस पर्याय में सम्यक्त्व को ग्रहणकरके और दर्शनमोहनीय का क्षय करके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसार के अवशिष्ट रहने पर संयमासंयम को प्राप्त हो गया (३)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत हुआ (५) पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। इनमें क्षपक श्रेणीसंबंधी ऊपर के छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार बारह अन्तर्मुहूर्तों से अधिक अड़तालीस दिनों से कम त्रस और त्रसपर्याप्तकों की उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण ही उन संयतासंयत जीवों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१) प्रमत्तः (२) अधः पतित्वा अन्तरितः। स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अपश्चिमे भवे सम्यग्दृष्टिः मनुष्यो जातः। दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा अप्रमत्तो भूत्वा प्रमत्तो जातः (३) लब्धमंतरं। भूयः अप्रमत्तः (४)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। एवं अष्टवर्षैः दशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊनं त्रसत्रसपर्याप्त-स्थितिप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं।

अप्रमत्तस्यापि एवमेव ज्ञातव्यं।

एवं पंचमस्थले असंयताद्यप्रमत्तानां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना उपशामक-क्षपक-अयोगि-सयोगिनां अन्तरनिरूपणाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।१४६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४७।।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।१४८।।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।।१४९।।

सजोगिकेवली ओघं।।१५०।।

अब प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एकेन्द्रिय स्थिति को प्राप्त कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और गर्भ को आदि लेकर आठ वर्ष के पश्चात् उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ। अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण परिभ्रमण करके अंतिम भव में वह सम्यग्दृष्टि मनुष्य हो गया। पुनः दर्शनमोहनीय का क्षय करके अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपर के छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षों से कम त्रस और त्रसपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण ही उन प्रमत्तसंयत जीवों का उत्कृष्ट अन्तर है।

अप्रमत्तसंयत मुनियों का अंतर भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में असंयत से अप्रमत्त तक जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशामक-क्षपक-अयोगिकेवली और सयोगिकेवली जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा इनका अंतर गुणस्थान के समान अन्तर है।।१४६।।

चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१४७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो सहस्र सागरोपम तथा कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है।।१४८।।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।१४९।।

सयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।१५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इमे चत्वारः उपशमश्रेण्यारोहकाः, क्षपकाः, अयोगिकेवलिनः, सयोगिकेवलिनश्च इमे मनुष्याः पंचेन्द्रियाः सन्तीति तेषां प्ररूपणा पूर्वं कथिता अतोऽत्र न वितन्यते।**

मनुष्यभवं संप्राप्य संयमो गृहीतव्यः। तत्र भावना भावयितव्या कदा अस्माभिः केवलज्ञानमुत्पाद्यते। यद्यपि एतत्केवलज्ञानं प्रत्येकं आत्मसु शक्तिरूपेण विद्यते तथापि व्यक्तिरूपेण भाव्यमिति ज्ञात्वा सततं पुरुषार्थः कर्तव्यः।

एवं षष्ठस्थले उपशामकादीनामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्राणि पंच गतानि।

संप्रति लब्ध्यपर्याप्तत्रसानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।।१५१।।

एदं कायं पडुच्च अंतरं। गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया त्रसापर्याप्तानां नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणप्रमाणं। उत्कर्षेण अनंतकालं असंख्यातपुद्गलपरिवर्त्तं। एतज्ज्ञात्वा लब्ध्यपर्याप्तकभवे कदाचिदपि जन्म न भवेदिति भावनया त्रसपर्यायः सकलीकर्तव्यः।**

एवं सप्तमस्थले त्रसापर्याप्तकानामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्त-चिन्तामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशम श्रेणी चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक महामुनि, क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनि, अयोगिकेवली और सयोगिकेवली भगवान ये सभी मनुष्य पञ्चेन्द्रिय हैं, उनकी प्ररूपणा पूर्व में कही जा चुकी है, अतः यहाँ उसका विस्तार नहीं किया जा रहा है।

मनुष्यभव को प्राप्त करके हमें संयम ग्रहण करना चाहिए। वहाँ यह भावना भानी चाहिए कि हमें केवलज्ञान की प्राप्ति कब होगी। यद्यपि यह केवलज्ञान प्रत्येक आत्मा में शक्तिरूप में विद्यमान है, फिर भी व्यक्तरूप से प्राप्त हो ऐसा जानकर सदैव पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

इस प्रकार छठे स्थल में उपशामक आदि का अन्तर प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब लब्ध्यपर्याप्त त्रस जीवों का अन्तर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकों का अन्तर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के अन्तर के समान है।।१५१।।

यह अन्तर काय की अपेक्षा कहा है। गुणस्थान की अपेक्षा दोनों ही प्रकार से अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा त्रस अपर्याप्त जीवों का अन्तर नहीं है। एक जीव की अेक्षा जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर है। उत्कृष्ट से असंख्यातपुद्गल परिवर्तन वाला अंतकालप्रमाण अन्तर है। ऐसा जानकर लब्ध्यपर्याप्तक के भव में कभी भी जन्म न होने पावे इस भावना से अपनी त्रसर्थाय को सफल करना चाहिए।

इस प्रकार सातवें स्थल में त्रस अपर्याप्तक जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिःस्थलैः पंचविंशतिसूत्रैः योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रतिपाद्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-औदारिककाययोगिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः परं द्वितीयस्थले औदारिकमिश्रकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''ओरालियमिस्स-'' इत्यादिसूत्रनवकं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले वैक्रियिककाय-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनोः गुणस्थानस्थानापेक्षया अन्तरनिरूपणत्वेन ''वेउव्विय'' इत्यादिसूत्रपंचकं। पुनश्च चतुर्थस्थले आहारकआहारकमिश्रयोगिनोः अन्तरकथनत्वेन ''आहारकाय'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरकथनप्रकारेण ''कम्मइय'' इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

संप्रति मनोयोगि-वचनयोगि-औदारिककाययोगिनां गुणस्थानापेक्षयान्तरनिरूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालिय-कायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्त-संजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१५३।।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में पच्चीस सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रतिपादित किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवों का अन्तर बतलाने हेतु ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि सात सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में गुणस्थान की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कथन करने हेतु ''ओरालियमिस्स'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर बतलाने हेतु ''वेउव्विय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः चतुर्थ स्थल में आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कथन करने हेतु ''आहारकाय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में कार्मणकाययोगियों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर बतलाने हेतु ''कम्मइय'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम मनोयोगी-वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलियों का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवों की और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१५३।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एकसमयं।।१५४।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१५५।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१५६।।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।१५७।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१५८।।

चदुण्हं खवाणमोघं।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अर्पितयोगसहितविवक्षितगुणस्थानानां सर्वकालं संभवात्।**

एकजीवमाश्रित्य कथं अन्तराभावः?

न तावद् योगान्तरगमनेनान्तरं संभवति, मार्गणायाः विनाशापत्तेः। न चान्यगुणस्थानगमनेनान्तरं संभवति, गुणस्थानान्तरं गतस्य जीवस्य योगान्तरगमनेन विना पुनः आगमनाभावात्। तस्मात् एकजीवस्यापि नास्त्यन्तरं। शेषं सुगमं।

चतुर्णां उपशामकानां जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वमन्तरं।

उक्त योग वाले सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१५४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।१५५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१५६।।

उक्त योग वाले चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा गुणस्थान के समान अन्तर है।।१५७।।

एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१५८।।

उक्त योग वाले चारों क्षपकों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में कहे गये विवक्षित योगों से सहित विवक्षित गुणस्थान सर्वकाल में संभव हैं।

शंका—एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव कैसे कहा ?

समाधान—सूत्रोक्त गुणस्थानों में न तो अन्य योग में गमन का अन्तर संभव है, क्योंकि ऐसा मानने पर विवक्षित मार्गणा के विनाश की आपत्ति आती है और न अन्य गुणस्थान में जाने से भी अन्तर संभव है, क्योंकि दूसरे गुणस्थान को गये हुए जीव के अन्य योग को प्राप्त हुए बिना पुनः आगमन का अभाव है। इसलिए सूत्र में बताये गये जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। शेष कथन सुगम है।

चारों उपशामकों का जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है।

एकजीवापेक्षया एषां नास्त्यन्तरं, किंच एकयोगपरिणमनकालात् गुणस्थानकालः संख्यातगुणः वर्तते। चतुःक्षपकानामपि जघन्येन एकसमयं उत्कर्षेण षण्मासं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

एवं प्रथमस्थले पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-काययोगि-औदारिककाययोगिनां अन्तरकथनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

संप्रति औदारिकमिश्रकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

ओरालिय मिस्स कायजोगीसु मिच्छादिट्ठीण मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१६०।।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।१६१।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१६२।।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६३।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।१६४।।

एक जीव की अपेक्षा उनका कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि एक योग के परिणमन काल से गुणस्थान का काल संख्यातगुणा होता है।

चारों क्षपक श्रेणी वाले मुनियों का भी जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। एक जीव की अपेक्षा उनका कोई अन्तर नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवों का अन्तर बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिकमिश्रकाययोगियों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर प्रतिपादन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१६०।।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर गुणस्थान के समान है।।१६१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१६२।।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१६३।।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है।।१६४।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१६५।।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१६६।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।१६७।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**औदारिकमिश्रयोगिनां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः नानैकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। देवनारकमनुष्याणां असंयतसम्यग्दृष्टीनां मनुष्येषु उत्पत्तेर्विना मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु उत्पत्तेर्विना एकसमयं अन्तरं, असंयतसम्यग्दृष्टिविरहितौदारिकमिश्रकाययोगस्य संभवात्। उत्कर्षेण तिर्यग्मनुष्ययोः वर्षपृथक्त्वकालमात्रमसंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्पादाभावात्। एकजीवापेक्षया तस्मिन् तस्य गुणस्थानयोगान्तर-संक्रांतेरभावात्। सयोगिकेवलिनां कपाटपर्यायविरहितानामेकसमयोपलंभात् जघन्येनैकसमयं। उत्कर्षेण कपाटपर्यायेण विना केवलिनां वर्षपृथक्त्वावस्थानसंभवात्।**

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है।।१६५।।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१६६।।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।१६७।।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है।

क्योंकि देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों का मनुष्यों में उत्पत्ति के बिना तथा मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों का तिर्यंचों में उत्पत्ति के बिना असंयतसम्यग्दृष्टियों से रहित औदारिकमिश्रकाययोग का एक समय प्रमाण काल अन्तर संभव है।

क्योंकि उत्कृष्ट से तिर्यंच और मनुष्यों में वर्ष पृथक्त्वप्रमाण काल तक असंयतसम्यग्दृष्टियों का उत्पाद नहीं होता है।

क्योंकि एक जीव की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव में उक्त गुणस्थान और औदारिकमिश्रकाययोग के परिवर्तन का अभाव है।

कपाटसमुद्घात से रहित सयोगिकेवली जिनों का जघन्य से एक समय अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट से कपाटसमुद्घात के बिना केवली जिनों का वर्ष पृथक्त्व तक रहना संभव है।

एक जीव की अपेक्षा अन्य योग को नहीं प्राप्त होकर औदारिकमिश्रकाययोग में ही स्थित केवली जिनों

एकजीवापेक्षया योगान्तरं अगत्वा औदारिकमिश्रकाययोगे चैव स्थितस्य अन्तरासंभवात् निरंतरं नास्त्यन्तरं वा इति।

एवं औदारिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयत-सयोगिकेवलिनामन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्राणि नव गतानि।

अधुना वैक्रियिककाययोगि-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनोरन्तरकथनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो।।१६९।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७०।।

उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं।।१७१।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१७२।।

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वैक्रियिककाययोगिनां नानैकजीवं अपेक्ष्य अन्तराभावेन साधर्म्यात् मनोयोगिवत्**

के अन्तर का होना असंभव है। वह निरन्तर है अथवा वहाँ कोई अन्तर नहीं है, ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयत एवं सयोगिकेवलियों का अन्तर बतलाने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोगी एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कथन करने के लिए पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों में आदि के चारों गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर मनोयोगियों के समान है।।१६९।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नानाजीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१७०।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है।।१७१।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१७२।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियों के समान है।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वैक्रियिककाययोगी जीवों में नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव होने से दोनों में समानता है, इनका अन्तर मनोयोगियों के समान है।

अन्तरं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टयः सर्वे वैक्रियिककाययोगं गताः। एकसमयं वैक्रियिकमिश्रकाययोगो मिथ्यादृष्टिभिः विरहितो दृष्टः। द्वितीयसमये सप्ताष्टजनाः वैक्रियिकमिश्रकाययोगे दृष्टाः। लब्धमेकसमयमन्तरं।

उत्कर्षेण वैक्रियिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टयः सर्वेऽपि वैक्रियिककाययोगं गताः, तत्र द्वादशमुहूर्तमात्रमंतरं कृत्वा पुनः सप्ताष्ट जनाः वैक्रियिकमिश्रकाययोगं प्रतिपन्नाः। लब्धं द्वादशमुहूर्तान्तरं।

एकजीवापेक्षया योग-गुणस्थानान्तरगमनाभावात् नास्त्यन्तरं।

सासादनानां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं। उत्कर्षेण पल्योपमस्य असंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेणमासपृथक्त्वान्तरं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोरन्तरकथनमुख्यत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

आहार-आहारमिश्रयोगिनोः नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयं अवतार्यते —

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१७४।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।१७५।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१७६।।

सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोग को प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय वैक्रियिकमिश्रकाययोग, मिथ्यादृष्टि जीवों से रहित दिखाई दिया। द्वितीय समय में सात-आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोग में दृष्टिगोचर हुए-दिखाई दिए। इस प्रकार एक समय का अन्तर उपलब्ध हुआ।

उत्कृष्ट से वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सभी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोग को प्राप्त हो गये, वहाँ पर बारह मुहूर्त प्रमाण अन्तर करके पुनः सात-आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोग को प्राप्त हुए। यह बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तर होता है।

एक जीव की अपेक्षा अन्य योग और अन्य गुणस्थान में गमन का अभाव है, इसलिए अन्तर नहीं है।

सासादनसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है, इनमें एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मासपृथक्त्व अन्तर है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव है।

इस प्रकार तृतीयस्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र जीवों का अन्तर बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारक और आहारकमिश्रकाययोगी नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१७४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।१७५।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयतों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रयाणामपि सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। एकजीवापेक्षयापि तस्मिन् योगे योग-गुणस्थानान्तरग्रहणाभावात् नास्त्यन्तरं। आहारशरीरप्रकृतिबंधः सप्तमगुणस्थाने एव भवति किंतु अस्योदयस्तु षष्ठगुणस्थानेऽस्ति एतज्ज्ञातव्यं।**

एवं चतुर्थस्थले आहार-आहारमिश्रयोरन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

कार्मणकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्टीनां नानैकजीवं प्रतीत्य अन्तराभावः। सासादनानां नानाजीवापेक्षयाजघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण पल्योपमासंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया अन्तराभावः। असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानाजीवगतजघन्योत्कृष्टाभ्यां एकसमय-मासपृथक्त्वेऽन्तरे एकजीवगतान्तराभावः। सयोगिनां नानापेक्षया एकसमयं जघन्येन, वर्षपृथक्त्वं उत्कर्षेण। एकजीवापेक्षया अन्तराभावोऽस्ति इति।**

एवं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां अन्तरकथनप्रकारेण सूत्रमेकं गतं।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचम ग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। एक जीव की अपेक्षा उस योग में अन्य योग या अन्य गुणस्थान के ग्रहण करने का अभाव होने से दोनों प्रकार के योगियों में कोई अन्तर नहीं है। आहारकशरीर प्रकृति का बंध सप्तम गुणस्थान में ही होता है, किन्तु इसका उदय छठे गुणस्थान में होता है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोगियों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलियों का अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियों के समान है।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टियों में नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवगत जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है तथा एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्व में एक जीवगत अन्तर का अभाव है। सयोगिकेवलियोंका नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर पाया जाता है तथा एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव है।

इस प्रकार पंचम स्थल में कार्मणकाययोगियों का अन्तर कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त चिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ अष्टभिरन्तरस्थलैः पंचचत्वारिंशत्सूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले स्त्रीवेदेषु मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि षट्सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयस्थले द्वयोः उपशामकयोः क्षपकयोश्चान्तरकथनत्वेन ''दोण्हं'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं चतुर्थस्थले पुरुषवेदे मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अतरप्ररूपणत्वेन ''पुरिस'' इत्यादिपंचसूत्राणि। तत्पश्चात् पंचमस्थले असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरकथनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु षष्ठस्थले द्वयोरूपशामकयोः क्षपकयोश्च अन्तरनिरूपणत्वेन ''दोण्हं'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं सप्तमस्थले नपुंसकवेदे मिथ्यादृष्ट्यादिअनिवृत्तिपर्यन्तानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''णउंसय'' इत्यादिसप्तसूत्राणि। तत्पश्चात् अष्टमस्थले अपगतवेदानां अन्तरकथनत्वेन ''अवगदवेदएसु'' इत्यादिनवसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति वेदमार्गणायां स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टीनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

वेदाणुवादेण इत्थिवेदए मिच्छादिट्ठीणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१७८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१७९।।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब आठ अन्तर्स्थलों में पैंतालिस सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पाँचवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में स्त्रीवेदी मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में असंयत से लेकर अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती तक के जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में दो उपशामक और दो क्षपकों का अन्तर बतलाने वाले ''दोण्हं'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थस्थल में पुरुषवेद में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का अन्तर प्ररूपण करने वाले ''पुरिस'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थल में असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में दो उपशामकों और दो क्षपकों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''दोण्हं'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके आगे सातवें स्थल में नपुंसकवेद में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानपर्यन्त के जीवों का अन्तर कथन करने हेतु ''णउंसय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तत्पश्चात् आठवें स्थल में अपगतवेदियों का अन्तर करने वाले ''अवगदवेदएसु'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब वेदमार्गणा में स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१७८।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१७९।।

उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमं सूत्रं सुगमं वर्तते। एकजीवापेक्षया कश्चिद् स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिः दृष्टमार्गः अन्यगुणस्थानं गत्वा प्रतिनिवृत्त्य लघुकालं मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तर्मुहूर्तान्तरम्। उत्कर्षेण एकः पुरुषवेदः नपुंसकवेदो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी पंचपञ्चाशत्पल्योपमायुःस्थितिदेवीषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः अन्तरितः अवसाने आयुर्बद्ध्वा मिथ्यात्वं गतः। लब्धमन्तरं (४)। सम्यक्त्वेन बद्धायुष्कत्वात् सम्यक्त्वेनैव निर्गतः (५) मनुष्यो जातः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं भवति।**

षट्पृथिवीनारकेषु सौधर्मादिदेवीषु च सम्यग्दृष्टिः बद्धायुष्कः पूर्वं मिथ्यात्वेन निःसारितः। अत्र पुनः पंचपञ्चाशत्पल्योपमायुःस्थितिदेवीषु तथा न निःसारितः। अत्र कारणं ज्ञात्वा वक्तव्यं।

संप्रति सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।१८१।।

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्योपम है।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— तीनों सूत्रों में से प्रथम सूत्र का अर्थ सुगम है। एक जीव की अपेक्षा कोई दृष्टमार्गी स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव अन्य गुणस्थान में जाकर और वहाँ से लौटकर शीघ्र ही मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। यह अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक पुरुषवेदी अथवा नपुंसकवेदी जीव, पचपन पल्योपम की आयुस्थिति वाली देवियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ और आयु के अंत में आगामी भव की आयु को बांधकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया (४)। सम्यक्त्व के साथ आयु के बांधने से सम्यक्त्व के साथ ही निकला (५) और मनुष्य हुआ। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम पचपन पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

छह पृथिवियों के नारकियों में तथा सौधर्मादि स्वर्ग की देवियों में बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व कथित मिथ्यात्व के द्वारा निकाला गया। किन्तु यहाँ पुनः पचपन पल्योपम की आयु स्थिति वाली देवियों में उस प्रकार से नहीं निकाला गया। यहाँ पर इसका कारण जानकर कहना चाहिए।

अब सासादन एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा गुणस्थान के समान अन्तर है।।१८१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तं।।१८२।।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेण—एकः अन्यवेदस्थिति स्थितः सासादनकाले एकसमयावशेषे स्त्रीवेदेषु उत्पन्नः एकसमयं सासादनेन स्थितः। द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः स्त्रीवेदस्थितिं परिभ्रम्य अवसाने स्त्रीवेदस्थितौ एकसमयावशेषायां सासादनं गतः। लब्धमन्तरं। मृतो वेदान्तरं गतः। द्विसमयाभ्यामूनं पल्योपमशतपृथक्त्वान्तरं लब्धम्।**

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्त्रीवेदस्थितिप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं भवति एवं प्रथमस्थले स्त्रीवेदित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१८४।।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।१८२।।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्टरूप से—अन्य वेद की स्थिति को प्राप्त कोई एक जीव सासादनगुणस्थान के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर स्त्रीवेदियों में उत्पन्न हुआ और एक समय सासादनगुणस्थान के साथ दिखाई दिया। द्वितीय समय में मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ। स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्त में स्त्रीवेद की स्थिति में एक समय अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थान में चला गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः वहाँ और अन्य वेद को प्राप्त हो गया। इस प्रकार दो समयों से कम पल्योपमशतपृथक्त्व काल स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर छह मुहूर्तों से कम स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण होता है। इस प्रकार प्रथम स्थल में स्त्रीवेदी तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१८४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१८५।।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। स्त्रीवेदेषु एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण कथ्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी देवीषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गतोऽन्तरितः स्त्रीवेदस्थितिं परिभ्रम्य अन्ते उपशमसम्यक्त्व प्रतिपन्नः (५) लब्धमन्तरं। षडावलिकाशेषे प्रथमसम्यक्त्वकाले सासादनं गत्वा मृतो वेदान्तरं गतः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पल्योपमशतपृथक्त्वमंतरं भवति।**

देशोनवचनं सूत्रे किन्न कृते ?

न कृतं, किंच पृथक्त्वनिर्देशेनैव तस्यावगमात्।

संयतासंयतस्यान्तरं उच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यवेदः स्त्रीवेदेषु उत्पन्नः, द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः दिवसपृथक्त्वेन विशुद्धो वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। इत्यादिना पूर्ववत् द्वाभ्यां मुहुर्ताभ्यां दिवसपृथक्त्वाधिकद्विमासाभ्यां च ऊना स्त्रीवेदस्थितिः उत्कृष्टान्तरं भवति।

प्रमत्तस्योच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी अन्यवेदः स्त्रीवेदमनुष्येषु—द्रव्यवेदपुरुषेषु भावस्त्रीवेदेषु

उक्त गुणस्थान वाले स्त्रीवेदियों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१८५।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। तृतीय सूत्रानुसार स्त्रीवेदियों में एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट कथन किया जा रहा है—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस कर्मप्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव देवियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर, स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (५)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में छह आवलि प्रमाणकाल अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थान में जाकर मरा और अन्य वेद में चला गया। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम पल्योपमशतपृथक्त्व प्रमाण अन्तर होता है।

शंका—सूत्र में "देशोन—कुछ कम" ऐसा वचन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया है, क्योंकि 'पृथक्त्व' इस पद के निर्देश से ही उस देशोनता का ज्ञान हो जाता है।

स्त्रीवेदी संयतासंयत जीव का अन्तर कहते हैं—मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्यवेदी जीव, स्त्रीवेदियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ दो मास गर्भ में रहकर निकला और दिवसपृथक्त्व से विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया। इत्यादि प्रकार से दो मुहूर्त और दिवसपृथक्त्व से अधिक दो मास से कम स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है।

प्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्य

उत्पन्नः गर्भाद्यष्टवार्षिकः वेदकसम्यक्त्वं अप्रमत्तगुणं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। पुनः प्रमत्तो जातः (२) मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः स्त्रीवेदस्थितिं परिभ्रम्य प्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं (३)। मृतो देवो जातः। एवं अष्टवर्षैः त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊना स्त्रीवेदस्थितिः लब्धमुत्कृष्टान्तरं।

एवमप्रमत्तस्यापि उत्कृष्टान्तरं भणितव्यं विशेषाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—पंचमगुणस्थानपर्यंतं द्रव्यस्त्रीवेदिन्यः भवन्ति किंतु उपरि गुणस्थानेषु द्रव्यपुरुषाः एव कदाचित् भाव स्त्रीवेदिनो भवन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले स्त्रीवेदिअसंयताद्यप्रमत्तगुणस्थानवर्तिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

द्वयोरुपशामकयोः द्वयोः क्षपकयोश्च अन्तरनिरूपणाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं।।१८७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१८८।।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।।१८९।।

वेदी जीव, स्त्रीवेदी मनुष्यों में अर्थात् जो द्रव्य से पुरुषवेद और भाव से स्त्रीवेदी हैं उनमें उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ को आदि लेकर आठ वर्ष का होकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थान को एक साथ प्राप्त कर लिया (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (३)। पश्चात् वहाँ मरा और देव हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार से स्त्रीवेदी अप्रमत्तसंयत का भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

तात्पर्य यह है कि पंचम गुणस्थान तक तो द्रव्यस्त्रीवेदी जीव होते हैं, किन्तु उससे ऊपर के छठे आदि गुणस्थानों में द्रव्य से मात्र पुरुषवेद होता है तथा कदाचित् भावस्त्रीवेदी भी होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब दो उपशामक और दो क्षपकगुणस्थानवर्ती महामुनियों का अन्तर निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर गुणस्थान के समान है।।१८७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१८८।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है।।१८९।।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१९०।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।१९१।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोरुपशामकयोः जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वान्तरं विज्ञेयं। एकजीवापेक्षया अंतर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः स्त्रीवेदमनुष्येषु भाववेदेषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिकः सम्यक्त्वं संयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। अनंतानुबंधिनः विसंयोज्य (२) दर्शनमोहनीयं उपशाम्य (३) अप्रमत्तः (४) प्रमत्तः (५) पुनश्च अप्रमत्तः (६) अपूर्वः (७) अनिवृत्तिः (८) सूक्ष्मः (९) उपशान्तः (१०) भूयः प्रतिनिवृत्तः सूक्ष्मः (११) अनिवृत्तिः (१२) अपूर्वः (१३) अधः पतित्वान्तरितः स्त्रीवेदस्थितिं भ्रमित्वावसाने संयमं प्रतिपद्य कृतकरणीयः भूत्वाऽपूर्वोपशामको जातः। लब्धमंतरं। ततः निद्राप्रचलयोः बंधव्युच्छित्तौ मृतो देवो जातः। अष्टवर्षैः त्रयोदशान्तर्मुहूर्तैश्च अपूर्वकरणकाले सप्तमभागेन च ऊना स्वकस्थितिः अन्तरं।**

अनिवृत्तिकरणस्यापि एवमेव। केवलं तत्र द्वादशान्तर्मुहूर्तैः एकसमयेन चोनं कर्तव्यं।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों क्षपकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१९०।।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।१९१।।

एक जीव की अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों उपशामकों का जघन्य अन्तर एक समय है एवं उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है। ऐसा जानना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल जघन्य अन्तर है। उत्कृष्ट की अपेक्षा कथन करते हैं—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्यवेदी जीव, भावस्त्रीवेदी मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और आठ वर्ष का होकर वहाँ सम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त किया (१)। पश्चात् अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीय का उपशमकर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) पुनः अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) और उपशान्तकषाय (१०) होकर पुनः प्रतिनिवृत्त हो वापस लौटकर सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरण संयत हो (१३) नीचे गिरकर अन्तर को प्राप्त हुआ और स्त्रीवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में संयम को प्राप्त होकर कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। उसके बाद निद्रा और प्रचला के बंधविच्छेद हो जाने पर मरा और देव हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहूर्तों से तथा अपूर्वकरण काल के सातवें भाग से न्यून अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है। अनिवृत्तिकरण उपशामक का भी इसी प्रकार से अन्तर होता है। वहाँ विशेष बात केवल यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहूर्तों के स्थान पर बारह अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम कहना चाहिए।

क्षपकयोरपि नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं, अप्रशस्तस्त्रीवेदानां वर्षपृथक्त्वेन विना अन्यस्यान्तरस्यानुपलंभात्। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

एवं तृतीयस्थले उपशामकक्षपकानां भावस्त्रीवेदिनां अन्तरकथनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

संप्रति पुरुषवेदानां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।।१९३।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।१९४।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१९५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।१९६।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।१९७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**पुरुषवेदेषु एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं उत्कर्षेण देशाने द्वे षट्षष्टी सागरोपमे अन्तरं ज्ञातव्यं मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य।**

दोनों क्षपकों का भी नाना जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है। उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अप्रशस्त स्त्रीवेदियों का वर्षपृथक्त्व के बिना अन्य अन्तर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में भावस्त्रीवेदी उपशामक और क्षपक महामुनियों का अन्तर कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेदियों में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदियों में मिथ्यादृष्टियों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।१९३।।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।१९४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।१९५।।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।१९६।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है।।१९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पुरुषवेदियों में एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टरूप से कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम का अन्तर मिथ्यादृष्टि जीव का जानना चाहिए।

सासादनस्य उत्कर्षेण—एकः अन्यवेदः उपशमसम्यग्दृष्टिः सासादनं गत्वा सासादनकाले एकसमयावशेषे पुरुषवेदो जातः। सासादनगुणस्थानेन एकसमयं लब्धं, द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः पुरुषवेदस्थितिं भ्रमित्वावसाने उपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा सासादनं प्रतिपन्नः। द्वितीयसमये मृतो देवीषु उत्पन्नः। एवं द्विसमयोनसागरोपमशतपृथक्त्वमुत्कृष्टान्तरं भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः अन्तरमुत्कृष्टेन—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी अन्यवेदः देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः स्वकस्थितिं परिभ्रम्यान्ते सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (५) लब्धमन्तरं। अन्यगुणस्थानं गत्वा (६) अन्यवेदे उत्पन्नः। षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनं सागरोपमशतपृथक्त्वमुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं चतुर्थस्थले पुरुषवेदे मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानानामन्तरकथनत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

असंयताद्यप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ? णिरंतरं।।१९८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९९।।

सासादनगुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—अन्यवेद वाला कोई एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थान में जाकर, सासादनगुणस्थान के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेदी हो गया और सासादनगुणस्थान के साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समय में मिथ्यात्व गुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया। वहाँ पुरुषवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके आयु के अन्त में उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण कर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् द्वितीय समय में मरा और देवियों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उक्त जीवों का दो समय कम सागरोपम शतपृथक्त्व उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यग्मिथ्यात्व में जाकर (४) वहाँ से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्तकर अन्तर को प्राप्त होकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्त में सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया (५)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् अन्य गुणस्थान में जाकर (६) अन्य वेद में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में पुरुषवेद में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तक के जीवों का नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।१९८।।

उक्त गुणस्थानवर्ती जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।१९९।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। एकजीवापेक्षया उत्कर्षेणअसंयतसम्यग्दृष्टेः—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यवेदः देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः स्वकस्थितिं भ्रमित्वाऽन्ते उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (५)। षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले आसादनं गत्वा मृतो देवेषु उत्पन्नः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं सागरोपमशतपृथक्त्वमंतरं भवति।**

संयतासंयतस्योच्यते—एकः अन्यवेदः पुरुषवेदेषु उत्पन्नः। द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निष्क्रान्तः दिवसपृथक्त्वेन उपशमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे सासादनं गतः (१) मिथ्यात्वं गत्वा पुरुषवेदस्थितिं परिभ्रम्यान्ते मनुष्येषु उत्पन्नः। कृतकरणीयः भूत्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः (२)। लब्धमंतरं। ततः अप्रमत्तो (३) प्रमत्तः (४) अप्रमत्तः (५)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। एवं द्वाभ्यां मासाभ्यां त्रिदिवसैः एकादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊना पुरुषवेदस्थितिः उत्कृष्टान्तरं भवति।

अन्तरे लब्धे मिथ्यात्वं नीत्वान्यवेदेषु किन्नोत्पादितः?

नैष दोषः, येन कालेन मिथ्यात्वं गत्वा आयुर्बद्ध्वान्यवेदेषु उत्पद्यते, सः कालः सिद्ध्यत्कालात्

असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदियों का उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (५) उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाकर मरा और देवों में उत्पन्न हो गया। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

संयतासंयत पुरुषवेदी जीव का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—कोई एक अन्य वेदी जीव पुरुषवेदियों में उत्पन्न हुआ। दो मास गर्भ में रहकर निकला और वहाँ दिवसपृथक्त्व से उपशमसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त कर लिया। जब उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल शेष रहा, तब सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर (१) मिथ्यात्व में जाकर पुरुषवेद की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और कृत्कृत्यवेदक होकर संयमासंयम को प्राप्त हो गया (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। उसके पश्चात् अप्रमत्तसंयत (३) प्रमत्तसंयत (४) और अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपर के गुणस्थानों संबंधी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये गये। इस प्रकार दो मास, तीन दिन और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से कम पुरुषवेद की स्थिति ही पुरुषवेदी संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है।

शंका—अन्तर प्राप्त हो जाने पर पुनः मिथ्यात्व में ले जाकर अन्य वेदियों में उत्पन्न क्योंनहीं कराया गया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिस काल से मिथ्यात्व में जाकर और आयु को बांधकर

संख्यातगुणः इति कृत्वा अन्यवेदेषु अनुत्पादयितत्वात्। उपरिमानां गुणस्थानानामपि एतदेव कारणं वक्तव्यं।

प्रमत्ताप्रमत्तयोः पंचेन्द्रियपर्याप्तवदन्तरं भवति। केवलं तु विशेषं ज्ञात्वा वक्तव्यं।

एवं पंचमस्थले असंयताद्यप्रमत्तमुनीनां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना पुरुषवेदेषु द्वयोरुपशामकयोः क्षपकयोश्च अन्तरकथनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।२०१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२०२।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।२०३।।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२०४।।

उक्कस्सेण वासं सादिरेयं।।२०५।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२०६।।

अन्य वेदियों में उत्पन्न होता है, वह काल सिद्ध होने वाले काल से संख्यातगुणा है, इस अपेक्षा से उसे मिथ्यात्व में ले जाकर पुनः अन्य वेदियों में नहीं उत्पन्न कराया गया। ऊपर के गुणस्थानों में भी यही कारण मानना चाहिए।

पुरुषवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का भी अन्तर पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों के समान है। केवल इनमें जो विशेषता है उसे जानकर कहना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में असंयत से लेकर अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनियों तक का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेदी दो उपशामक और दो क्षपक महामुनियों का अन्तर बतलाने हेतु छहसूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा इन दोनों गुणस्थानों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।२०१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२०२।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है।।२०३।।

पुरुषवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत इन दोनों क्षपकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।२०४।।

उक्त दोनों क्षपकों का उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है।।२०५।।

दोनों क्षपकों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अपूर्वकरणस्योपशामकस्य उत्कर्षेणान्तरं कथ्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यवेदः पुरुषवेदमनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिको जातः। सम्यक्त्वं संयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। अनंतानुबंधिनः विसंयोज्य (२) दर्शनमोहनीयमुपशाम्य (३) अप्रमत्तः (४) प्रमत्तः (५) अप्रमत्तः (६) अपूर्वः (७) अनिवृत्तिः (८) सूक्ष्मः (९) उपशान्तकषायः (१०) प्रतिनिवृत्तः सूक्ष्मः (११) अनिवृत्तिः (१२) अपूर्वः (१३) अधः परिवर्त्यान्तरितः। सागरोपमशतपृथक्त्वं परिभ्रम्य कृतकरणीयो भूत्वा संयमं प्रतिपद्यापूर्वो जातः। लब्धमन्तरं। उपरि पंचेंद्रियवद्भंगः। एवमष्टवर्षैः एकोनत्रिंशदन्तर्मुहूर्तैश्च ऊना स्वकस्थितिः अन्तरं भवति।**

अनिवृत्तिकरणस्यापि एवमेव वक्तव्यं। विशेषेण तु अष्टवर्षैः सप्तविंशतिअंतर्मुहूर्तैश्च ऊनं सागरोपमशतपृथक्त्वमन्तरं भवति।

क्षपकस्यापूर्वकरणस्यान्तरं—पुरुषवेदेन अपूर्वगुणस्थानं प्रतिपन्नाः सर्वे जीवा उपरिमगुणस्थानं गताः। अन्तरितमपूर्वगुणस्थानं। पुनः षण्मासेषु अतिक्रान्तेषु सर्वे भावस्त्रीवेदेन चैव क्षपकश्रेणिमारूढा। पुनः चतुरो वा पंच वा मासान् अन्तरयित्वा क्षपकश्रेणि चटमानाः भावनपुंसकवेदोदयेन चटिताः। पुनरपि एकं वा द्वौ वा मासौ अंतरित्वा स्त्रीवेदेन चटिताः। एवं संख्यातवारं स्त्री-नपुंसकवेदोदयेन चैव क्षपकश्रेणिं चटापयित्वा पश्चात् पुरुषवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं चटिते वर्षं सातिरेकमन्तरं भवति, किंच-निरंतरं षण्मासान्तरस्य असंभवात्। एवमनिवृत्तिकरणस्यापि वक्तव्यं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक का उत्कृष्ट अन्तर कहा जा रहा है—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक अन्यवेदी जीव पुरुषवेदी मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ आठ वर्ष का होकर सम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त कर लिया (१)। अनन्तानुबंधी का विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीय का उपशमन कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशांतकषाय (१०) पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) अपूर्वकरण (१३) होता हुआ नीचे गिरकर अन्तर को प्राप्त हुआ। वहाँ सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण परिभ्रमण कर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संयम को प्राप्त कर अपूर्वकरण संयत हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। इसके ऊपर का कथन पंचेन्द्रिय जीवों के समान है। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अन्तर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामक का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अनिवृत्तिकरण उपशामक का भी इसी प्रकार से अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि आठ वर्ष और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तों से कम सागरोपमशतपृथक्त्व इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनि का अन्तर कहते हैं—

पुरुषवेद के द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थान को प्राप्त हुए सभी जीव ऊपर के गुणस्थानों में चले गये और अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर को प्राप्त हो गये। पुनः छह मास व्यतीत हो जाने पर सभी जीव भाव स्त्रीवेद के द्वारा ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए। पुनः चार या पाँच मास का अन्तर करके भाव नपुंसकवेद के उदय से कुछ जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़े। पुनः एक-दो मास अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेद के द्वारा क्षपक श्रेणी पर चढ़े। इस प्रकार संख्यात बार स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से ही क्षपक श्रेणी पर चढ़ करके पीछे पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणी चढ़ने पर कुछ अधिक वर्षप्रमाण अन्तर हो जाता है, क्योंकि निरन्तर छह मास का अन्तर होना असंभव है। इसी प्रकार पुरुषवेदी अनिवृत्तिकरण क्षपक का भी अन्तर जानना चाहिए।

''कास्वपि सूत्रपोथीषु पुरुषवेदस्यान्तरं षण्मासाः[१] कथिताः सन्ति।''

अत्र नानाजीवापेक्षयान्तरं कथितं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं — क्षपकानां प्रतिनिवृत्तेरसंभवात्।

एवं षष्ठस्थले पुरुषवेदेषु उपशमश्रेणिक्षपकश्रेण्यारोहकानामन्तरकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिपर्यंतानां अन्तरकथनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२०७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२०८।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२०९।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामगो त्ति मूलोघं।।२१०।।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२११।।

कितनी ही सूत्रपोथियों — सूत्र ग्रंथों में पुरुषवेद का उत्कृष्ट अन्तर छह मास कहा गया पाया जाता है।

यहाँ नाना जीव की अपेक्षा अन्तर कहा गया है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, क्योंकि क्षपकों का पुनः लौटना असंभव है।

इस प्रकार छठे स्थल में पुरुषवेदियों में उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले महामुनियों का अंतर बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेदियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक के महामुनियों का अन्तर कथन करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नपुंसकवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२०७।।

एक जीव की अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२०८।।

एक जीव की अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेंतीस सागरोपम है।।२०९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवों का अन्तर मूल गुणस्थान के समान है।।२१०।।

नपुंसकवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।२११।।

---

१. षट्खण्डागम धवला टीका पु. ५, पृ. १०६।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२१२।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नपुंसकवेदेषु एकजीवापेक्षया उत्कर्षेणान्तरं कथ्यते—एकः मिथ्यादृष्टिः अष्टाविंशतिसत्ताकः सप्तमपृथिव्यां उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपद्यान्तरितः। अवसाने मिथ्यात्वं गत्वा (४) आयुर्बद्ध्वा (५) विश्रम्य (६) मृतः तिर्यङ् जातः। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।**

सासादनादिसंयतासंयतानां गुणस्थानवदन्तरं ज्ञातव्यं।

प्रमत्तस्य द्रव्यपुरुषस्य भावनपुंसकवेदसहितस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं, एकजीवं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं देशोनं। अप्रमत्तस्यापि एवमेव वक्तव्यं। अपूर्वकरणस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं, एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं देशोनं। एवमनिवृत्तिकरणस्यापि कथयितव्यं।

तात्पर्यमेतत्—पंचमगुणस्थानपर्यंताः इमे द्रव्यनपुंसकवेदिनो भावनपुंसकवेदिनो वा भवन्ति किंतु प्रमत्तगुणस्थानादारभ्य अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागपर्यंतं द्रव्यपुरुषा एव भावेन नपुंसकवेदिनो भवितुमर्हन्ति इति निश्चेतव्यं।

एवमेव क्षपकयोरपि सूत्रानुसारेण ज्ञातव्यं।

एवं सप्तमस्थले द्रव्यभावनपुंसकवेदिनां अन्तरकथनत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकों का उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है।।२१२।।

उक्त दोनों नपुंसकवेदी क्षपकों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नपुंसकवेदियों में एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहा जा रहा है—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं नरक पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यक्त्व को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ। वहाँ पुनः आयु के अंत में मिथ्यात्व को प्राप्त होकर (४) आयु को बांधकर (५) विश्राम लेकर (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपमकाल नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयतासंयत जीवों तक का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

द्रव्य से पुरुषवेदी और भाव से नपुंसकवेदी प्रमत्तसंयत का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण अन्तर है। अप्रमत्तसंयत का भी इसी प्रकार अन्तर जानना चाहिए। अपूर्वकरण का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से वर्षपृथक्त्व तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण अन्तर है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण का भी अन्तर जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि ये द्रव्यनपुंसकवेदी अथवा भावनपुंसकवेदी जीव पंचम गुणस्थान तक होते हैं किन्तु प्रमत्तसंयत गुणस्थान से प्रारंभ करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के सवेद भाग पर्यन्त द्रव्य पुरुष ही होते हैं, भाव से नपुंसकवेदी भी वहाँ हो सकते हैं, ऐसा निश्चित करना चाहिए।

इसी प्रकार दोनों क्षपकों का अन्तर भी सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

संप्रति अपगतवेदानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२१४।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२१५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२१६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२१७।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२१८।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२१९।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२२०।।

अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।।२२१।।

इस प्रकार सातवें स्थल में द्रव्य और भाव नपुंसकवेदियों का अन्तर कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदी जीवों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु नौ सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

अपगतवेदियों में अनिवृत्तिकरण उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।२१४।।

उक्त दोनों अपगतवेदी उपशामकों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।२१५।।

उक्त दोनों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२१६।।

उक्त दोनों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२१७।।

उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।२१८।।

उपशान्त कषायवीतरागछद्मस्थों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।२१९।।

उपशान्तकषाय का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२२०।।

अपगतवेदियों में अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली जीवों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।२२१।।

सजोगिकेवली ओघं।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपशान्तकषायाणां नानाजीवापेक्षया उत्कर्षेण-एकवारमुपशमश्रेणिं चटित्वावतीर्याधः पतित्वान्तरिते उपशमश्रेण्यः वर्षपृथक्त्वान्तरोपलंभात्। एकजीवापेक्षया उपशान्तकषायस्य उपरि चटनाभावात्। अधः पतितेऽपि अपगतवेदत्वेनैव उपशान्तगुणस्थानं प्राप्तुं संभवाभावात्।**

अनिवृत्ति-सूक्ष्मयोः क्षपकयोः अपगतवेदत्वं प्रति क्षीणकषायस्यायोगिकेवलिनश्च गुणस्थानवदेवान्तरं भवति।

एवं अष्टमस्थले अपगतवेदानां गुणस्थानापेक्षया नवसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

सयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती उपशामकों का नाना जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट से कथन करते हैं—एक बार उपशमश्रेणी पर चढ़कर तथा उतरकर—नीचे गिरकर उत्कृष्ट से उपशमश्रेणी का वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा उपशान्तकषायवीतराग के ऊपर चढ़ने का अभाव है तथा नीचे गिरने पर भी अपगतवेदरूप से ही उपशान्तकषाय गुणस्थान को प्राप्त करना संभव नहीं है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती क्षपक, अपगतवेदत्व के प्रति और क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती का तथा अयोगिकेवली भगवन्तों का अन्तर गुणस्थान के समान ही होता है।

इस प्रकार आठवें स्थल में गुणस्थान की अपेक्षा अपगतवेदियों का अन्तर कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

जिनके उर में कल-कल बहती, गंगा की निर्मलधारा।
त्याग और शुभ ज्ञान मणि से, जिनने निज को शृंगारा।।
वचनों के मोती बिखरातीं, युग की पहली बालसती।
मेरा शत वन्दन स्वीकारो, गणिनी माता ज्ञानमती।।

—आर्यिका चंदनामती

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षट्सूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कषायसहितानां अंतरनिरूपणत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्याद्येकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले उपशान्तकषायाद्ययोगिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''अकसाईसु'' इत्यादिपंचसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति कषायमार्गणायां चतुर्विधकषायेषु मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मसांपरायान्तानां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो।।२२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वं सुगमं वर्तते। त्रयाणामुपशामकानां त्रयाणां क्षपकानां च नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वमिति।**

चतुर्णां कषायाणामपि उत्कृष्टान्तरं षण्मासमात्रमेव सिद्धयेत् इति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले कषायसहितानां अन्तरकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति अकषायाणां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नामका छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का अन्तर निरूपण करने वाला ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में उपशान्तकषाय गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भगवन्तों का अन्तर कथन करने वाले ''अकसाईसु'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कषायमार्गणा में चारों प्रकार की कषाय से युक्त मिथ्यादृष्टि जीवों से लेकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक के महामुनियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर मनोयोगियों के समान है।।२२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। तीनों उपशमश्रेणी चढ़ने वाले उपशामकों का तथा क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले तीनों (आठवें, नवमें, दशवें गुणस्थानवर्ती) क्षपकों का नाना जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है एवं उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

चारों कषायसहित जीवों का उत्कृष्ट अन्तर छहमास ही सिद्ध होता है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का अन्तर कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अकषायी जीवों का नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२२४।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२२५।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२२६।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।।२२७।।

सजोगिकेवली ओघं।।२२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपशान्तकषायस्य एकजीवापेक्षया अधः अवतीर्य अकषायत्वाविनाशेन पुनः उपशान्तपर्यायेण परिणमनाभावात् नास्त्यन्तरं। शेषमोघवद् ज्ञातव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—अकषायावस्थायाः प्राप्तये एव दीक्षाशिक्षाग्रहणं श्रुतस्याध्ययनं जिनानामकषायिणां भक्त्या प्रणमनं चेति ज्ञात्वा शनैः शनैः कषायाः कृशीकरणीया इति।

एवं द्वितीयस्थले अकषायिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्राणि पंच गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।२२४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।२२५।।

उपशान्त कषायवीतरागछद्मस्थ का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२२६।।

अकषायी जीवों में क्षीणकषायीवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली जिनों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।२२७।।

सयोगिकेवली जीवों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।२२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती का एक जीव की अपेक्षा नीचे उतरकर अकषायपने का विनाश हुए बिना पुनः उपशांतपर्याय के परिणमन का अभाव होने से अन्तर नहीं है। शेष का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अकषाय अवस्था की प्राप्ति के लिए ही दीक्षा-शिक्षा को ग्रहण किया जाता है, श्रुत का अध्ययन किया जाता है तथा कषायरहित जिनेन्द्र भगवन्तों को प्रणमन किया जाता है, ऐसा समझकर धीरे-धीरे अपनी कषायों को कृश करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अकषायी जीवों का अन्तर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में कषायमार्गणा नामका छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलषट्केन एकोनत्रिंशत्सूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले मत्यज्ञानादित्रिविधाज्ञानिनां अन्तरकथनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानिनां असंयतसंयतासंयतानां अन्तरनिरूपणत्वेन ''आभिणि'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले प्रमत्ताप्रमत्तयोः अन्तरकथनत्वेन ''पमत्त'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले उपशामकक्षपकयोः अन्तरनिरूपणत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनंतरं पंचमस्थले मनःपर्ययज्ञानिनां केवलज्ञानिनां च अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''मणपज्जव'' इत्यादि सूत्रदशकं। ततः परं षष्ठस्थले केवलज्ञानिनोरन्तरकथनेन सूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति ज्ञानमार्गणायां त्रिविधाज्ञानिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२२९।।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।२३०।।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अथ छह स्थलों में उनतीस सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में कुमतिज्ञानी आदि तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों का अन्तर कथन करने हेतु ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तीनों प्रकार के सम्यग्ज्ञानियों में असंयत और संयतासंयत जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''आभिणि'' इत्यादि छह सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में प्रमत्त और अप्रमत्त संयतों का अन्तर कथन करने वाले ''पमत्त'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में उपशामक और क्षपक मुनियों का अन्तर निरूपण करने वाले ''चदुण्हं'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''मणपज्जव'' इत्यादि दश सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में केवलज्ञानियों का अन्तर कथन करने वाले दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब ज्ञानमार्गणा में सर्वप्रथम तीनों अज्ञान से सहित जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२२९।।

तीनों अज्ञान वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा उनका अन्तर ओघ—गुणस्थान के समान है।।२३०।।

एगजीवं णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिषु अज्ञानिषु मिथ्यादृष्टीनां अच्छिन्नप्रवाहत्वात् गुणसंक्रान्तेरभावाच्च नास्त्यन्तरं। सासादनानां जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया ज्ञानान्तरगमने विवक्षितमार्गणाविनाशात्।**

एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनामन्तरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति मतिश्रुतावधिज्ञानिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।।२३२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२३३।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।२३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया सर्वकालमविच्छिन्नप्रवाहत्वात् नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया—एकः असंयतसम्यग्दृष्टिः संयमासंयमं प्रतिपन्नः। तत्र सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनरपि असंयतसम्यग्दृष्टिर्जातः। लब्धमन्तर्मुहूर्तमन्तरं। उत्कर्षेण यः कोऽपि जीवः अष्टाविंशतिसत्कर्मी पूर्वकोट्यायुःस्थितिसंज्ञिसम्मूर्च्छिम-**

तीनों अज्ञानवाले सासादनसम्यग्दृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों अज्ञान वाले मिथ्यादृष्टियों का अविच्छिन्न प्रवाह होने से गुणस्थान के परिवर्तन का अभाव है इसलिए अंतर नहीं है। सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग है, क्योंकि एक जीव की अपेक्षा भिन्न ज्ञानों के प्राप्त होने पर विवक्षित मार्गणा का विनाश हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीनों प्रकार के अज्ञानी जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब मति-श्रुत-अवधिज्ञानियों का अन्तर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानवालों में असंयत सम्यग्दृष्टियों काअन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।२३२।।

तीनों ज्ञान वाले असंयत सम्यग्दृष्टियों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।२३३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है।।२३४।।

हिन्दी टीका—नाना जीव की अपेक्षा तीनों ज्ञान वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का सर्वकाल अविच्छिन्न प्रवाह होने से वहाँ कोई अन्तर नहीं है।

एक जीव की अपेक्षा—एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सबसे छोटा अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। यह अन्तर्मुहूर्त काल का अन्तर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट से—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई जीव पूर्वकोटी की आयु स्थिति

पर्याप्तकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) अन्तर्मुहूर्तेन विशुद्धः संयमासंयमं गत्वान्तरितः। पूर्वकोटिकालं संयमासंयममनुपाल्य मृतो देवो जातः। लब्धं चतुर्भिः अन्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणमन्तरं। मतिश्रुतज्ञानिनः एतदन्तरं लब्धं।

अवधिज्ञानि-असंयतसम्यग्दृष्टेः उच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी संज्ञिसम्मूर्च्छिमपर्याप्तेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) ततः अन्तर्मुहूर्तेन अवधिज्ञानी जातः। अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (५) संयमासंयमं प्रतिपन्नः। पूर्वकोटिं संयमासंयममनुपाल्य मृतो देवो जातः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणं लब्धमन्तरं।

संप्रति संयतासंयतानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।।२३५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२३६।।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।।२३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेण—एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी मनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिकः संयमासंयमं संयमं वेदकसम्यक्त्वं च युगपत् प्रतिपन्नः (१) अंतर्मुहूर्तेन संयमं गत्वा अन्तरं**

वाले संज्ञी सम्मूर्च्छन पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) और अन्तर्मुहूर्त से विशुद्ध होकर संयमासंयम को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हो गया। पूर्वकोटीकाल प्रमाण संयमासंयम को परिपालन कर मरा और देव हुआ। इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी प्रमाण मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि का अन्तर प्राप्त हुआ।

अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि का अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक जीव संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४)। उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में अवधिज्ञानी हो गया। वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक अवधिज्ञान के साथ रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पूर्वकोटीप्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हो गया। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटीकाल प्रमाण अन्तर प्राप्त हुआ।

अब संयतासंयत जीवों का नाना जीव और एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर बताने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२३५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२३६।।

तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर साधिक छ्यासठ सागरोपम है।।२३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्ट की अपेक्षा—मोहनीयकर्म

प्राप्य संयमेन पूर्वकोटिं गमयित्वा अनुत्तरदेवेषु त्रयस्त्रिंशदायुःस्थितिकेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। क्षायिकं प्रतिपद्य संयमं अनुपाल्य पुनः समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततः च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। दीर्घकालं स्थित्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः (२) लब्धमन्तरं। ततः संयमं प्रतिपन्नः (३) प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्त्तसहस्रं कृत्वा (४) क्षपकश्रेणियोग्याप्रमत्तो जातः (५) उपरि षडन्तर्मुहूर्त्ताः। एवमष्टवर्षैः एकादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊनाः त्रिपूर्वकोटिभिः सातिरेकाः षट्षष्टिसागराः उत्कृष्टान्तरं।

एवमेव अवधिज्ञानिसंयतासंयतस्यापि। विशेषेण — आभिनिबोधिकज्ञानस्य आदेः अंतर्मुहूर्तेन आदिं कृत्वा अन्तरं प्रापय्य द्वादशान्तर्मुहूर्तैः समयाधिकाष्टवर्षैः ऊनं त्रिपूर्वकोटिभिः सातिरेकं षट्षष्टिसागरप्रमाणं इति वक्तव्यम्।

अत्र एतदपि ज्ञातव्यमस्ति यत् संज्ञिसम्मूर्च्छिमपर्याप्तेषु यथा संयमासंयमः संभवति तथा अवधिज्ञानं उपशमसम्यक्त्वं च न संभवतीति।

तदपि कथं ?

पंचेन्द्रियेषु दर्शनमोहनीयस्योपशमनं गर्भोत्पन्नानामेव न च सम्मूर्च्छिमानां। तथैव ''तत्थ वि ओहिणाणसंभवं परूवयंतवक्खाणाइरियाणं अभावादो।'' अतएव अवधिज्ञानमपि न सम्मूर्च्छिमानां संभवति इति।

की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ आठ वर्ष का होकर संयमासंयम और वेदकसम्यक्त्व को एक साथ प्राप्त कर लिया (१)। पुनः अंतर्मुहूर्त में संयम को प्राप्त करके अंतर को प्राप्त होकर संयम के साथ पूर्वकोटीप्रमाण काल बिताकर तेंतीस सागरोपम की आयुस्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। तब क्षायिक सम्यक्त्व को धारणकर और संयम को परिपालन कर पुनः एक समय कम तेंतीस सागरोपम आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हो गया। वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहां दीर्घ काल तक रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। पश्चात् संयम को प्राप्त हुआ। (३) और प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानसंबंधी सहस्रों परावर्तनों को करके (४) क्षपकश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपर के क्षपकश्रेणी संबंधी छह अंतर्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अंतर्मुहूर्तों से कम तीन पूर्वकोटियों से अधिक छ्यासठ सागरोपम मति-श्रुतज्ञान वाले संयतासंयतों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार से अवधिज्ञानी संयतासंयतों का भी उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानी के आदि के अंतर्मुहूर्त से प्रारंभ करके अंतर को प्राप्त कराकर बारह अंतर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्ष से कम तीन पूर्वकोटियों से साधिक छ्यासठ सागरोपमकाल अंतर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में संयमासंयम के समान अवधिज्ञान और उपशमसम्यक्त्व की संभावना का अभाव है।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — पंचेन्द्रिय जीवों में दर्शनमोह का उपशमन करता हुआ गर्भोत्पन्न जीवों में ही उपशमन करता है, सम्मूर्च्छन जीवों में नहीं। क्योंकि, उनमें भी अवधिज्ञान की सम्भावना की प्ररूपणा करने वाले व्याख्यानाचार्यों का अभाव है। अतएव सम्मूर्छन जीवों में अवधिज्ञान संभव नहीं है ऐसा अभिप्राय है।

एवं द्वितीयस्थले असंयतसंयतासंयतानां त्रिविधज्ञानेषु अन्तरप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि। अधुना त्रिविधज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तयोरन्तरप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२३८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२३९।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।२४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतो वा अर्पितज्ञानेन सह अन्यगुणस्थानं गत्वा पुनः प्रत्यागत्य सर्वजघन्येन कालेन तदेव गुणस्थानं चागतः। लब्धमन्तर्मुहूर्तं जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—एकः प्रमत्तः, अप्रमत्तः (१) अपूर्वः (२) अनिवृत्तिः (३) सूक्ष्मः (४) उपशान्तः (५) भूत्वा पुनरपि सूक्ष्मः (६) अनिवृत्तिः (७) अपूर्व (८) अप्रमत्तो जातः (९)।**

कालक्षयेण कालं कृत्वा समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते प्रमत्तो जातः (१)। लब्धमन्तरं। ततः अप्रमत्तः (२) उपरि षडन्तर्मुहूर्त्ताः।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंयत और संयतासंयत जीवों का तीनों ज्ञानों में अंतर प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीनों प्रकार के ज्ञानों में प्रमत्त और अप्रमत्त मुनियों का अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।२३८।।

तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२३९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर साधिक तेंतीस सागरोपम है।।२४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत जीव विवक्षित ज्ञान के साथ गुणस्थान में जाकर और पुनः वहाँ से वापस आकर सर्वजघन्य काल से उसी गुणस्थान में आये। इस प्रकार अंतर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य अंतर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट से—कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्पराय (४) और उपशांतकषाय हो करके (५) फिर सूक्ष्मसाम्पराय में जाकर (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपूर्वकरण (८) और अप्रमत्तसंयत हुआ (९)। तथा गुणस्थान का कालक्षय हो जाने से मरण को प्राप्त होकर एक समय कम तेंतीस सागरोपम की आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। पश्चात् वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और जीवन के अंतर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहने पर प्रमत्तसंयत हुआ। (१) यह अंतर प्राप्त हुआ। पुनः अप्रमत्त हुआ (२) इनमें ऊपर के छह अंतर्मुहूर्त और मिलाये।

अन्तरस्य अभ्यन्तरिमेषु नवसु अन्तर्मुहूर्तेषु बाह्याष्टान्तर्मुहूर्तानाम् अपनीते एकोऽन्तर्मुहूर्त्तोऽवतिष्ठते। त्रयस्त्रिंशत्सागराः एकेनान्तर्मुहूर्तेन अभ्यधिकपूर्वकोट्या सातिरेकाः उत्कृष्टान्तरं।

एवमेव अवधिज्ञानिप्रमत्तसंयतमपि अप्रमत्तादिगुणस्थानेषु नीत्वा अन्तरं प्रापय्य पूर्ववदुत्कृष्टान्तरं कथयितव्यमिति।

इत्थं अप्रमत्तस्यापि उत्कृष्टान्तरं ज्ञातव्यम्।

एवं तृतीयस्थले प्रमत्ताप्रमत्तयोः अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति उपशामकक्षपकयोः अन्तरकथनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२४१।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२४२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२४३।।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।२४४।।

चदुण्हं खवाणमोघं। णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**आद्यानां त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उत्कर्षेण उपशामकस्यान्तरं कथ्यते—**

अंतर के भीतर नौ अंतर्मुहूर्तों में से बाहरी आठ अंतर्मुहूर्तों के घटा देने पर एक अंतर्मुहूर्त अवशिष्ट रहता है। ऐसे एक अंतर्मुहूर्त से अधिक पूर्वकोटी से कुछ अधिक तेंतीस सागरोपम उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार अवधिज्ञानी प्रमत्तसंयत को अप्रमत्त आदि गुणस्थान में ले जाकर और अंतर को प्राप्त कराकर पूर्व के समान ही उत्कृष्ट अंतर कहना चाहिए।

इसी प्रकार अप्रमत्तसंयत का भी उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत मुनियों का अंतर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमश्रेणी चढ़ने वाले उपशामक और क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले क्षपक महामुनियों का अंतर कथन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तीनों ज्ञान वाले चारों उपशामकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।२४१।।

उक्त जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अंतर वर्षपृथक्त्व है।।२४२।।

उन्हीं जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२४३।।

उन्हीं जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम है।।२४४।।

तीनों ज्ञान वाले चारों क्षपकों का अंतर गुणस्थान के समान है। विशेष बात यह है कि अवधिज्ञानियों में क्षपकों का अंतर वर्षपृथक्त्व माना गया है।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों में से प्रारंभिक तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है।

एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः पूर्वकोट्यायुःमनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिकः वेदकसम्यक्त्वमप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। ततः प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्त्तसहस्रं कृत्वा (२) उपशमश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धः (३) अपूर्वः (४) अनिवृत्तिः (५) सूक्ष्मः (६) उपशान्तः (७) पुनरपि सूक्ष्मः (८) अनिवृत्तिः (९) अपूर्वः (१०) भूत्वाधः पतित्वान्तरितः।

देशोनपूर्वकोटिं संयमं अनुपाल्य मृतो त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततः च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। क्षायिकं सम्यक्त्वं प्रतिष्ठाप्य संयमं गृहीत्वा कालं गतः त्रयस्त्रिंशत्सागरायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्को मनुष्यो जातः संयमं प्रतिपन्नः। अन्तर्मुहूर्त्तावशेषे संसारे अपूर्वोः जातः। लब्धमन्तरं (११)। अनिवृत्तिः (१२) सूक्ष्मः (१३) उपशान्तः (१४) भूयः सूक्ष्मः (१५) अनिवृत्तिः (१६) अपूर्वः (१७) अप्रमत्तः (१८) प्रमत्तः (१९) अप्रमत्तः (२०)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। अष्टवर्षैःषड्विंशत्यन्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिभिः सातिरेकं षट्षष्टिसागरोपम-प्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।

अथवा त्रयोदश-द्वाविंशति-एकत्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पाद्य चतुःपूर्वकोट्यः वक्तव्याः। एवमेव त्रयाणामुपशामकानाम्। केवलं तत्र चतुर्विंशति-द्वाविंशति-विंशतिअन्तर्मुहूर्त्ताः ऊनाः कर्तव्याः।

एवमेवावधिज्ञानिनामपि वक्तव्यं, विशेषाभावात्।

अब उपशामकों का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं — मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक जीव पूर्व कोटी की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ आठ वर्ष का होकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थान को एक साथ प्राप्त कर लिया (१)। तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानसंबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (२) उपशमश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होता हुआ (३) अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशांतकषाय (७) होकर फिर से सूक्ष्मसाम्पराय होकर (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) होकर तथा नीचे गिरकर अंतर को प्राप्त हुआ। वहाँ कुछ कम पूर्वकोटीकाल प्रमाण संयम का परिपालन करके मरा और तेंतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवों में उत्पन्न हुआ। पश्चात् वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त करके तथा संयम धारण करके मरण को प्राप्त होकर तेंतीस सागरोपम की आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और यथासमय संयम को प्राप्त कर लिया। पुनः संसार के अंतर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हुआ। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ (११)। उसके पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१२) सूक्ष्मसाम्पराय (१३) उपशांतकषाय (१४) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१५) अनिवृत्तिकरण (१६) अपूर्वकरण (१७) अप्रमत्तसंयत (१८) प्रमत्तसंयत हुआ (१९)। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (२०)। इनमें ऊपर के क्षपक श्रेणी संबंधी और भी छह अंतर्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अंतर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटियों से कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अंतर होता है।

अथवा तेरह, बाईस और इकतीस सागरोपम आयु की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसंबंधी चार पूर्वकोटि प्रमाण काल कहना चाहिए। इसी प्रकार से शेष तीन उपशामकों का भी अंतर कहना चाहिए। विशेष बात केवल यह है कि अनिवृत्तिकरण के चौबीस अंतर्मुहूर्त सूक्ष्मसांपराय के बाईस और उपशांतकषाय के बीस अंतर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

इसी प्रकार से उपशामक अवधिज्ञानियों का भी अंतर कहना चाहिए, क्योंकि उसमें भी कोई विशेषता नहीं है।

चतुर्णां क्षपकाणां गुणस्थानवत् कथयितव्यं।

एवं चतुर्थस्थले उपशामक-क्षपकयोरन्तरकथनमुख्यत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तयोरन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

मणपज्जवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२४६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२४७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। उत्कर्षेण—एकः प्रमत्तः मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तो भूत्वा उपरि चटित्वाधः अवतीर्य प्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं। तथैव एकः अप्रमत्तः मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तो भूत्वान्तरं प्राप्य सर्वचिरेण कालेनाप्रमत्तो जातो लब्धमंतरं।**

उपशमश्रेणिं चटाप्य किन्नान्तरापितः?

नैतत्, उपशमश्रेण्यः चतुरारोहणानां त्रि-अवतरणानां एषां सर्वगुणस्थानवर्तिनां कालेभ्यः एकः प्रमत्तसंयतस्य कालः संख्यातगुणः इति गुरूपदेशो वर्तते।

संप्रति चतुर्णां उपशामकानां क्षपकानां च अन्तरकथनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती महामुनियों का अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में उपशामक और क्षपक मुनियों का अंतर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्त और अप्रमत्त मुनियों का अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२४६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२४७।।

उन्हीं जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्ट की अपेक्षा—एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अंतर को प्राप्त होकर अति दीर्घकाल से अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ।

शंका—मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत को उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर पुनः अंतर को प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमश्रेणी संबंधी सभी अर्थात् चार चढ़ने के और तीन उतरने के, इन सब गुणस्थानों संबंधी कालों से अकेले प्रमत्तसंयत का काल संख्यातगुणा होता है, ऐसा गुरु का उपदेश है।

अब चारों उपशामकों और क्षपकों का अंतर कथन करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२४९।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२५०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२५१।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।२५२।।

चदुण्हं खवगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२५३।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२५४।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमः। मनःपर्ययज्ञानिनिउत्कर्षेण कथ्यते—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकाष्टवर्षैः संयमं प्रतिपन्नः (१)। प्रमत्ताप्रमत्तसंयतस्थानयोः सातासाताप्रकृतिबंधपरावर्त्तसहस्रं कृत्वा (२) विशुद्धः मनःपर्ययज्ञानी जातः (३)। उपशमश्रेणिप्रायोग्याप्रमत्तो भूत्वा श्रेणिमुपगतः (४)। अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) उपशान्तः (८) पुनरपि सूक्ष्मः**

सूत्रार्थ—

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।२४९।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।२५०।।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा अंतर जघन्य से अंतर्मुहूर्त है।।२५१।।

उन्हीं जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम पूर्वकोटी है।।२५२।।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।२५३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।२५४।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, वे निरन्तर हैं।।२५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों में से तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है। अब मनःपर्ययज्ञानियों का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—कोई एक जीव पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और अंतर्मुहूर्त से अधिक आठ वर्ष के द्वारा संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में साता और असाता प्रकृतियों के बंध का सहस्रों बार परिवर्तन करके (२) विशुद्ध होकर मनःपर्ययज्ञानी हुआ (३)। पश्चात् उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणी को प्राप्त हुआ

(९) अनिवृत्तिः (१०) अपूर्वः (११) प्रमत्ताप्रमत्तसंयतस्थानयोः (१२) पूर्वकोटिकालं स्थित्वा अनुदिशादिषु आयुर्बद्ध्वान्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते विशुद्धः अपूर्वोपशामको जातः। निद्राप्रचलयोः बन्धव्युच्छित्तौ कालं कृत्वा देवो जातः। अष्टवर्षैः द्वादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं। एवमेव त्रयाणामुपशामकानां। केवलं तु — यथाक्रमेण दश-नव-अष्टान्तर्मुहूर्ताः समयश्च पूर्वकोट्या ऊना इति वक्तव्यम्।

क्षपकाणामपि अन्तरं नानाजीवापेक्षया मनःपर्ययज्ञानेन क्षपकश्रेणिं आरोहमाणानां प्रचुरं संभवाभावात् वर्षपृथक्त्वमेवान्तरं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

एवं पंचमस्थले मनःपर्ययज्ञानिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रदशकं गतम्।

संप्रति केवलज्ञानिनोरन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।।२५६।।

अजोगिकेवली ओघं।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **नानाजीवानां एकजीवस्य चान्तराभावेन साधर्म्याद् गुणस्थानवदन्तरं ज्ञातव्यं।**

तात्पर्यमेतत् — संप्रति मतिश्रुतज्ञानद्वयबलेन अभीक्ष्णज्ञानोपयोगिनो भूत्वा सिद्धान्तग्रन्थानां स्वाध्यायं

---

(४)। तब अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशांतकषाय (८) पुनः उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में (१२) पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानवासी देवों में आयु को बांधकर जीवन के अंतर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अपूर्वकरण उपशामक हुआ। पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दोनों प्रकृतियों के बंध-विच्छेद हो जाने पर मरण करके देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अंतर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अंतर होता है। इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उपशामकों का भी अंतर होता है। विशेषता केवल यह है कि उनके यथाक्रम से दश, नौ और आठ अंतर्मुहूर्त तथा पूर्वकोटी से एक समय कम जानना चाहिए।

क्षपकों में भी नाना जीवों की अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान के साथ क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों का प्रचुरता से होना संभव नहीं है इसलिए वर्षपृथक्त्व का ही अन्तर है। एक जीव की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है।

इस प्रकार पंचम स्थल में मनःपर्ययज्ञानी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर कथन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब केवलज्ञानी जीवों का अंतर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

केवलज्ञानी जीवों में सयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान है।।२५६।।

अयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान है।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नाना जीवों की अपेक्षा और एक जीव की अपेक्षा अंतर का अभाव होने से समानता है, इनका अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि आज हमें जो मति-श्रुत ज्ञान मिले हैं उन दोनों ज्ञानों के बल से अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी

कारं कारं द्रव्यश्रुतज्ञानालम्बनेन भावश्रुतज्ञानंप्राप्तव्यं। केवलज्ञानं यावन्न भवेत् तावत् श्रुतज्ञानदेवता एवाराधनीया अस्माभिः सर्वप्रयत्नेति।

एवं षष्ठस्थले केवलिज्ञानिनामन्तरकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

बनकर सिद्धांतग्रंथों का स्वाध्याय कर-करके द्रव्यश्रुतज्ञान के अवलम्बन से भावश्रुतज्ञान को प्राप्त करना चाहिए। जब तक केवलज्ञान की प्राप्ति न हो जावे, तब तक हम सबको सर्वप्रयत्नपूर्वक श्रुतज्ञानरूपी देवता की ही आराधना करना चाहिए।

इस प्रकार से छठे स्थल में केवलज्ञानियों का अंतर कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में ज्ञानमार्गणा नामक सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।

णमोकार मंत्र स्तवन

-शिखरिणी छंद-

णमो अरिहंताणं, नमन है अरिहंत प्रभु को।
णमो सिद्धाणं में, नमन कर लूँ सिद्ध प्रभु को।।
णमो आइरियाणं, नमन है आचार्य गुरु को।
णमो उवज्झायाणं, नमन है उपाध्याय गुरु को।।।1।।

णमो लोए सव्वसाहूणं पद बताता।
नमन जग के सब साधुओं को करूँ जो हैं त्राता।।
परमपद में स्थित कहें पाँच परमेष्ठि इनको।
नमन इनको करके लहूँ इक दिन मुक्ति पद को।।2।।

सभी के पापों को शमन करता मंत्र यह ही।
तभी सब मंगल में प्रथम माना मंत्र यह ही।।
जपें जो भी इसको वचन मन कर शुद्ध प्रणति।
लहें वे इच्छित फल, हृदय नत हो चन्दनामति।।3।।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलपंचकेन चतुर्विंशतिसूत्रैः संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले संयममार्गणायां अन्तरप्ररूपणत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि सूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सामायिक-छेदोपस्थापनयोः गुणस्थानापेक्षयान्तरनिरूपणत्वेन ''सामाइय'' इत्यादि सूत्राष्टकं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतस्यान्तरप्रतिपादनत्वेन ''परिहारसुद्धि'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातशुद्धिसंयमिनां अन्तरकथनत्वेन ''सुहुम'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनंतरं पंचमस्थले संयतासंयत-असंयतजीवानां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''संजदासंजदाणं'' इत्यादिसूत्राणि पंच वक्ष्यन्ते इति समुदायपातनिका।

संप्रति संयममार्गणायां गुणस्थानापेक्षया नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति मणपज्जवणाणिभंगो।।२५८।।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।।२५९।।

सजोगिकेवली ओघं।।२६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोः नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया**

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में चौबीस सूत्रों के द्वारा संयम मार्गणा नामका आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संयममार्गणा में सामान्य अंतर प्ररूपण करने वाले ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। द्वितीय स्थल में सामायिक और छेदोपस्थापना संयम का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर बतलाने हेतु ''सामाइय'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में परिहारविशुद्धिसंयत का अंतर प्रतिपादन करने हेतु ''परिहारसुद्धि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद चतुर्थ स्थल में सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातशुद्धि संयमियों का अंतर कथन करने वाले ''सुहुम'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का अंतर प्रतिपादन करने वाले ''संजदासंजदाणं'' इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे।

यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संयममार्गणा में सर्वप्रथम गुणस्थान की अपेक्षा नाना जीव एवं एक जीव का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में प्रमत्तसंयत को आदि लेकर उपशांतकषाय-वीतरागछद्मस्थ तक संयतों का अंतर मनःपर्ययज्ञानियों के समान है।।२५८।।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२५९।।

सयोगिकेवली संयतों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक

जघन्योत्कृष्टाभ्यां अंतर्मुहूर्त्तं। चतुर्णामुपशामकानां नानाजीवान् आश्रित्य जघन्येन एकसमयं। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं। एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिप्रमाणमन्तरं।

एवमेव क्षपकाणां सयोगिनां च गुणस्थानवद् ज्ञातव्यं।

इत्थं प्रथमस्थले सामान्येन संयमिनां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सामायिकछेदोपस्थापनयोः गुणस्थानापेक्षया अन्तरकथनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२६१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२६२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२६३।।

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२६४।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२६५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२६६।।

जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। चारों उपशामकों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय और उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटीप्रमाण अंतर है।

इसी प्रकार क्षपकों का एवं सयोगिकेवलियों का अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए। इस तरह से प्रथम स्थल में सामान्यरूप से संयमियों का अंतर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामायिक और छेदोपस्थापना संयमियों का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर कथन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्त तथा अप्रमत्त संयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२६१।।

उक्त संयतों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२६२।।

उक्त संयतों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२६३।।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों उपशामकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।२६४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।२६५।।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२६६।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।२६७।।

दोण्हं खवाणमोघं।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पञ्चानां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उपशामकानां एकजीवापेक्षया जघन्येन उच्यते—एकोऽवतीर्यमाणः अपूर्वः मुनिः अप्रमत्तः प्रमत्तः पुनः अप्रमत्तो भूत्वा अपूर्वो जातः। लब्धमन्तरं, एवमनिवृत्तिकरणस्यापि। केवलं-पंचान्तर्मुहूर्ता जघन्यान्तरं भवति। उत्कर्षेण उच्यते—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवर्षाणामुपरि संयमं प्रतिपन्नः (१)। प्रमत्ताप्रमत्तसंयतस्थानयोः सातासातबन्धपरावृत्तिसहस्रं कृत्वा (२) उपशमश्रेणिप्रायोग्याप्रमत्तः (३) अपूर्वः (४) अनिवृत्तिः (५) सूक्ष्मः (६) उपशान्तः (७) पुनरपि सूक्ष्मः (८) अनिवृत्तिः (९) अपूर्वः (१०) अधः पतित्वान्तरितः। प्रमत्ताप्रमत्तसंयतस्थाने पूर्वकोटिप्रमाणं स्थित्वा अनुदिशादिषु आयुर्बद्ध्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते अपूर्वोपशामको जातः। निद्राप्रचलयोः बंधव्युच्छित्तौ कालं गतो देवो जातः। अष्टवर्षैः एकादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊना पूर्वकोटिः अन्तरं।**

एवं अनिवृत्तिकरणस्यापि। विशेषेण—समयाधिकनवान्तर्मुहूर्ताः ऊनाः कर्तव्याः। द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् कथयितव्यम्।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम पूर्वकोटी है।।२६७।।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्णकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों क्षपकों का नाना और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अंतर गुणस्थान के समान है।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त आठ सूत्रों में प्रारंभिक पाँच सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर कहते हैं—

उपशमश्रेणी से उतरने वाले कोई एक मुनि अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्तसयंत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत हो गये। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयत का भी अंतर कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि इनके पाँच अंतर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अंतर होता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा कथन करते हैं—कोई एक जीव पूर्वकोटी आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और वहाँ आठ वर्ष के पश्चात् संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में साता और असातावेदनीय के बंध के सहस्रों परिवर्तनों को करके (२) उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। पश्चात् अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशांतकषाय (७) होकर फिर सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) होकर नीचे गिरकर अंतर को प्राप्त हुआ। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में पूर्वकोटी प्रमाण काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानों की आयु बांधकर जीवन के अंतर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ अर्थात् दूसरी बार उपशम श्रेणी पर चढ़ा और वहाँ निद्रा तथा प्रचला प्रकृतियों के बंधन से व्युच्छिन्न होने पर मरण को प्राप्त होकर देव हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अंतर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण उपशामक का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामक का भी उत्कृष्ट अंतर है।

एवं द्वितीयस्थले आद्ययोः द्वयोः संयमिनोः गुणस्थानापेक्षयान्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्राणि अष्टौ गतानि।

अधुना परिहारशुद्धिसंयतानां अन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२६९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२७०।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२७१।।

सिद्धान्तचिंताणिटीका—**एकजीवापेक्षया एकः प्रमत्तः परिहारशुद्धिसंयतः अप्रमत्तो भूत्वा सर्वलघुकालं प्रमत्तो जातः। लब्धमंतरं। एवमप्रमत्तस्यापि प्रमत्तगुणस्थानेन अंतरं प्रापय्य वक्तव्यम्, जघन्यान्तरमेतत्। उत्कर्षेण तु सर्वचिरेणान्तर्मुहूर्तेन कालेन प्रतिनिवृत्तिः कर्तव्या।**

एवं तृतीयस्थले परिहारविशुद्धिसंयमिनां अन्तरकथनेन सूत्रत्रयं गतम्।

सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातसंयमिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।२७२।।

विशेषता केवल यह है कि इनका अंतर एक समय अधिक नौ अंतर्मुहूर्त कम करना चाहिए। दोनों क्षपकों का अंतर सामान्यवत् कहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में आदि के दो संयमियों का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर बतलाने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब परिहारशुद्धि संयतों का अंतर निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

परिहारशुद्धिसंयतों में प्रमत्त और अप्रमत्त संयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२६९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२७०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंत होकर सर्वलघु काल से प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार उनका अंतर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयत को भी प्रमत्त गुणस्थान के द्वारा अंतर को प्राप्त कराकर अंतर कहना चाहिए। यह जघन्य अंतर है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा सर्वदीर्घकाल से पलटा कर लाना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल के परिहारविशुद्धि संयमियों का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात संयमियों का अंतर प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।२७२।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२७३।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२७४।।

खवाणमोघं।।२७५।।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो।।२७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमः। क्षपकाणां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण षण्मासाः। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

अकषायाणां यथाख्यातसंयमेन विना अन्यसंयमाभावात् चतुर्णां गुणस्थानानां समानमन्तरं ज्ञातव्यं। एवं चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातसंयमिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

संप्रति संयतासंयतासंयतयोः अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२७७।।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२७८।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।२७३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२७४।।

सूक्ष्मसाम्परायसंयमी क्षपकों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२७५।।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों में चारों गुणस्थानों के संयमी जीवों का अंतर अकषायी जीवों के समान है।।२७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों में तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है। क्षपकों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है, उत्कृष्ट से छह महीने का अंतर है। एक जीव की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है।

अकषायी जीवों के यथाख्यात संयम के बिना अन्य संयमों का अभाव होने से चारों गुणस्थानों का एक समान अंतर जानना चाहिए।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यातसंयमियों का अंतर प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत और असंयत जीवों का अंतर प्रतिपादन करने के लिए पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों और एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२७७।।

असंयतों में मिथ्यादृष्टियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२७८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२७९।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।२८०।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं।।२८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणस्थानान्तरग्रहणे मार्गणाविनाशात्, गुणस्थानान्तरग्रहणेन विना अन्तरकरणे उपायाभावात् नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया वा संयतासंयतानां नास्त्यन्तरं। असंयतेषु मिथ्यादृष्टिजीवानां प्रवाहव्युच्छेदाभावात् नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया गुणस्थानान्तरं गत्वा अंतरं प्राप्य अविनष्टासंयमेन जघन्यकालेन प्रतिनिवृत्त्य मिथ्यात्वं प्रतिपन्नस्य अंतर्मुहूर्त्तान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण कथ्यते—**

एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः मिथ्यादृष्टिः सप्तम्यां पृथिव्यां उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपद्यान्तरितः अन्तर्मुहूर्त्तावशेषे जीविते मिथ्यात्वं गतः (४)। लब्धमन्तरं। तिर्यगायुर्बद्ध्वा (५) विश्रम्य (६) मृतः तिर्यङ् जातः। षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणं मिथ्यात्वोत्कृष्टान्तरं कथितं।

सासादनानां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एवमेव सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि। जघन्येन सासादनस्य एकजीवं प्रतीत्य पल्योपमस्यासंख्यातभागः, सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तर्मुहूर्तं। एतयोरुत्कर्षेण अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तं देशोनं।

असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२७९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम तेंतीस सागरोपम है।।२८०।।

असंयमी सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपने गुणस्थान को छोड़कर अन्य गुणस्थान के ग्रहण करने पर मार्गणा का विनाश होता है और अन्य गुणस्थान को ग्रहण किये बिना अंतर करने का कोई उपाय नहीं होने से नाना जीव की अपेक्षा और एक जीव की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। असंयतों में मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रवाह का कभी विच्छेद नहीं होने से वहाँ अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा—अन्य गुणस्थान में जाकर और अंतर को प्राप्त होकर असंयमभाव के नहीं नष्ट होने के साथ ही जघन्य काल से वापस आकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीव के अंतर्मुहूर्तप्रमाण अंतर पाया जाता है।

उत्कृष्ट रूप से कथन करते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं नरक पृथिवी में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्रामलेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यक्त्व को प्राप्त होकर अंतर को प्राप्त हो गया और जीवन के अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण अवशेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। उसके बाद तिर्यंच आयु को बांधकर (५) विश्राम लेकर (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अंतर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपमकाल मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टि का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से पल्योपम का असंख्यातवां भाग अंतर है।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेणार्द्धपुद्गल-परिवर्त्तं देशोनं, एतत् देशोनं पञ्चदशान्तर्मुहूर्तैः न्यूनं ज्ञातव्यमिति।

एतत् संयममार्गणान्तरं पठित्वा यथाक्रमेण संयमासंयमं अनुपाल्य सामायिकसंयमप्राप्त्यर्थं पुरुषार्थः कर्तव्यः। किंच, संयमाभावे स्वात्मोत्थपरमानन्दसौख्यं कथमपि न लभ्यते। अतो ज्ञानामृतं पायं पायं त्रिरत्नं गृहीत्वा प्रमादमपसार्य अपुनर्गतिसिद्धये भावना भावयितव्या।

एवं पंचमस्थले संयतासंयतासंयतजीवानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचम ग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का भी अंतर होता है। जघन्य से सासादन सम्यग्दृष्टि के एक जीव की अपेक्षा पल्योपम का असंख्यातवां भाग है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अंतर्मुहूर्त अंतर होता है। इन दोनों का उत्कृष्ट की अपेक्षा अंतर कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट अंतर कुछ कम अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन है। यहाँ कुछ कम अंतर से पंद्रह अंतर्मुहूर्त कम समझना चाहिए।

इस संयम मार्गणा को पढ़कर यथाक्रम से संयमासंयम का अनुपालन करके सामायिक संयम की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करना चाहिए, क्योंकि संयम के अभाव में स्वात्मा से उत्पन्न होने वाला परमानंद सुख किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं होता है। अतः ज्ञानामृत का अतिशयरूप से पान करते हुए तीन रत्न—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को ग्रहण करके प्रमाद छोड़कर अपुनर्गति—सिद्धगति (जहाँ से पुनः संसार में आवागमन नहीं होता है) की प्राप्ति हेतु भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार से पंचम स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का अंतर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम नाम के प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में संयममार्गणा नामक आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

किसी भी कार्य के प्रारंभ में इष्टदेव का नाम स्मरण करें

आरंभे तु पुराणस्यान्यव्यापाराय कस्यचित्।
''नमः सिद्धेभ्यः'' इत्युच्चैर्नम्रीभूतो वदेद्वचः।।

अर्थ—किसी शास्त्र के प्रारंभ में तथा अन्य किसी भी कार्य के प्रारंभ में नम्रता के साथ ''ॐ नमः सिद्धेभ्यः'' इस पद का उच्चारण करना चाहिए।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलपंचकेन चतुर्दशसूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनमार्गणायां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले अस्मिन्नेव दर्शने असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले उपशामकक्षपकयोरन्तरप्रतिपादनत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां अन्तरकथनत्वेन ''अचक्खु'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं पंचमस्थले अवधिकेवलदर्शनिनोः अंतरनिरूपणत्वेन ''ओधि'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरप्ररूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।।२८२।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।२८३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, अंतोमुहुत्तं।।२८४।।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नामका नवमां अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन मार्गणा में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अंतर कथन करने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में इसी चक्षुदर्शन में असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों का अंतर बतलाने हेतु ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में उपशामक और क्षपक महामुनियों का अंतर प्रतिपादन करने वाले ''चदुण्हं'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में अचक्षुदर्शन वालों का अंतर कथन करने वाला ''अचक्खु'' इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर पंचम स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वाले जीवों का अंतर निरूपण करने वाले ''ओधि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब दर्शनमार्गणा में चक्षुदर्शनी जीवों में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का अंतर प्ररूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जाते हैं।

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२८२।।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर गुणस्थान के समान है।।२८३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवां भाग और अंतर्मुहूर्त है।।२८४।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।२८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं, एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण—देशोने द्वे षट्षष्टी सागरोपमे स्तः।**

सासादनानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमासंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया पल्योपमासंख्यातभागः। उत्कर्षेण कथ्यते—

एकः भ्रमिताचक्षुर्दर्शनस्थितिमात्रः असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु उत्पन्नः, पंचपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासिवानव्यन्तरदेवेषु आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रान्तः (५) देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (९) सासादनं गतः। मिथ्यात्वं गत्वान्तरं प्राप्य चक्षुर्दर्शनिस्थितिप्रमाणं परिभ्रम्यावसाने सासादनं गतः।

लब्धमन्तरं। अचक्षुर्दर्शनिप्रायोग्यमावलिकायाः असंख्यातभागं स्थित्वा मृतः अचक्षुर्दर्शनी जातः। एवं नवभिः अंतर्मुहूर्तैः आवलिकायाः असंख्यातभागेन च ऊना चक्षुर्दर्शनिस्थितिः सासादनोत्कृष्टान्तरं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं उच्यते—अचक्षुर्दर्शनिस्थितिं प्राप्य एकः असंज्ञिपंचेन्द्रियेषु उत्पन्नः। पंचपर्याप्तिभिः पर्याप्तः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासि-वानव्यन्तरदेवेषु आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रान्तः (५) देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो हजार सागरोपम है।।२८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है तथा एक जीव की अपेक्षा अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य अंतर है, उत्कृष्ट से कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपमप्रमाण अंतर है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नाना जीव का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अंतर पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा पल्योपम का असंख्यातवां भाग है। अब उत्कृष्ट से कथन करते हैं—

अचक्षुदर्शन की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेंद्रियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पाँच पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) भवनवासी या वानव्यंतर देवों में आयु को बांधकर (४) विश्राम लेकर (५) देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो (६) विश्राम लेकर (७) विशुद्ध होकर (८) उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सासादनगुणस्थान में चला गया। पुनः मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त होकर चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अंत में सासादनगुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। पुनः अचक्षुदर्शनी के बंधयोग्य आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल रहकर मरा और अचक्षुदर्शनी हो गया। इस प्रकार नौ अंतर्मुहूर्तों से और आवली के असंख्यातवें भाग से कम चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट अंतर है।

अब चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अंतर कहते हैं—अचक्षुदर्शन की स्थिति को प्राप्त हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) भवनवासी या वानव्यंतर देवों में आयु को बांधकर (४) विश्राम लेकर (५) मरा और देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (६) विश्राम लेकर (७) विशुद्ध होकर

प्रतिपन्नः (९) सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (१०)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः चक्षुर्दर्शनिस्थितिं परिभ्रम्यावसाने सम्यग्मिथ्यात्वं गतः (११)। लब्धमन्तरं। मिथ्यात्वं गत्वा (१२) अचक्षुर्दर्शनिषु उत्पन्नः। एवं द्वादशान्तर्मुहूर्तैः ऊना चक्षुर्दर्शनिस्थितिः उत्कृष्टान्तरं ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां चक्षुर्दर्शनिनां अन्तरकथनेन सूत्रचतुष्टयं गतम्। संप्रति चक्षुर्दर्शनिषु असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२८६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२८७।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।२८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः अचक्षुर्दर्शनि-स्थितिप्रमाणं स्थितः असंज्ञिपंचेन्द्रियसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकेषु उत्पन्नः। पंचभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) भवनवासि-वानव्यन्तरेषु आयुर्बद्ध्वा (४) विश्रान्तः (५) कालं गतो देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (६) विश्रान्तः (७) विशुद्धः (८) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः**

---

(८) उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व में चला गया (१०) और वहाँ मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अंतर को प्राप्त हुआ। चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अंत में सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। (११)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। पुनः मिथ्यात्व में जाकर (१२) अचक्षुदर्शनियों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बारह अंतर्मुहूर्तों से कम चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों में चक्षुदर्शनियों का अंतर बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब चक्षुदर्शनी जीवों में असंयत से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का अंतर बतलाने हेतु तीन सूत्रों का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२८६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२८७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो हजार सागरोपम है।।२८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सरल है। एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्टरूप से—अचक्षुदर्शनी जीवों की स्थिति में विद्यमान एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) भवनवासी या वानव्यंतरों में आयु को बांधकर (४) विश्राम लेकर (५) मरण को प्राप्त हुआ और देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (६) विश्राम लेकर (७) विशुद्ध होकर (८) उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्व

(९)। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाः सन्तीति सासादनं गत्वान्तरितः। मिथ्यात्वं गत्वा चक्षुर्दर्शनिस्थितिं भ्रमित्वावसाने उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (१०)। लब्धमन्तरं। पुनः सासादनं गतः अचक्षुर्दर्शनिप्रायोग्यं आवलिकायाः असंख्यातभागकालं स्थित्वा अचक्षुर्दर्शनिषु उत्पन्नः। दशभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनं स्वकस्थितिप्रमाणं असंयतसम्यग्दृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं।

संयतासंयतस्य कथ्यते—एकः अचक्षुर्दर्शनिस्थितौ विद्यमानः गर्भोपक्रान्तिके पंचेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु उत्पन्नः (१)। संज्ञिपंचेन्द्रियसम्मूर्च्छिमपर्याप्तेषु किन्नोत्पादितः ?

नैतत्, सम्मूर्च्छिमेषु प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तेरसंभवात्। न च असंख्यातासंख्यातलोकं अनन्तकालं वा अचक्षुर्दर्शनिषु परिभ्रमतां जीवानां वेदकसम्यक्त्वग्रहणं संभवति, विरोधात्। न च स्तोककालं स्थितः चक्षुर्दर्शनिस्थितेः समापनसक्षमः।

पुनः स एव जीवः त्रिपक्षत्रिदिवसान्तर्मुहूर्तेन च प्रथमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः (२)। प्रथमसम्यक्त्वकाले षडावलिकाः सन्तीति सासादनं गतः। अन्तरितो मिथ्यात्वं गत्वा स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अपश्चिमे भवे कृतकरणीयो भूत्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः (३)। लब्धमंतरं। अप्रमत्तः (४) प्रमत्तः (५) अप्रमत्तः (६)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। एवमष्टचत्वारिंशद्दिवसैः द्वादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊना स्वकस्थितिः संयतासंयतस्योत्कृष्टान्तरं।

प्रमत्तस्य उच्यते—एकः अचक्षुर्दर्शनिस्थितिं स्थितः मनुष्येषु गर्भाद्यष्टवर्षेण उपशमसम्यक्त्वमप्रमत्त-

---

के काल में छह आवलीप्रमाण काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाकर अंतर को प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व में जाकर चक्षुदर्शन की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (१०)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। पुनः सासादन में चला गया और अचक्षुदर्शनी जीवों के योग्य आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहकर अचक्षुदर्शनी जीवों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दश अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थिति-प्रमाण चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

चक्षुदर्शनी संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं। जैसे–अचक्षुदर्शन की स्थिति में विद्यमान कोई एक जीव गर्भोपक्रान्तिक——गर्भ जन्म वाले पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ (१)।

शंका—उक्त जीव को संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्मूर्च्छिम जीवों में प्रथमोपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति असंभव है तथा असंख्यातासंख्यात लोकप्रमाण या अनंतकाल तथा अचक्षुदर्शनियों में परिभ्रमण किये हुए जीवों के वेदकसम्यक्त्व को ग्रहण करना संभव नहीं है, क्योंकि ऐसे जीवों के सम्यक्त्वोत्पत्ति का विरोध है। और न अल्पकाल तक रहे हुए जीव चक्षुदर्शन की स्थिति को समाप्त करने में समर्थ है।

पुनः पूर्वोक्त गर्भज वही जीव तीन पक्ष तीन दिवस और अंतर्मुहूर्त से प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (२)। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल अवशिष्ट रह जाने पर सासादन को प्राप्त हुआ। पुनः अंतर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व में जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अंतिम भव में कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (३)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। इनमें ऊपर के छह अंतर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार अड़तालीस दिवस और बारह अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण चक्षुदर्शनी संयतासंयतों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

अब चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं——अचक्षुदर्शनी जीवों की स्थिति में विद्यमान

गुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। पुनः प्रमत्तोः जातः अधः पतित्वान्तरितः चक्षुर्दर्शनिस्थितिं परिभ्रम्या पश्चिमे भवे मनुष्यो जातः। कृतकरणीयो भूत्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते अप्रमत्तो भूत्वा प्रमत्तो जातः (३)। लब्धमंतरं। भूयोऽप्रमत्तः (४)। उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। एवमष्टवर्षैः दशान्तर्मुहूर्तैः ऊना स्वकस्थितिः प्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरं।

एवमेवाप्रमत्तस्यापि ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरकथनेन सूत्रत्रयं गतम्।

चक्षुर्दर्शनिषु उपशामक-क्षपकाणां अन्तरकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।२८९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२९०।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।।२९१।।

चदुण्हं खवगाणमोघं।।२९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णामुपशामकानां एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण कथ्यते—एकः अचक्षुर्दर्शनिस्थितौ**

एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और गर्भ को आदि लेकर आठ वर्ष के द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् नीचे के गुणस्थानों में गिरकर अंतर को प्राप्त हुआ। चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अंतिम भव में मनुष्य हुआ। पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवन के अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपर के अंतर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष दश अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर है।

इसी प्रकार अप्रमत्तसंयत मुनियों का भी अंतर जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती महामुनियों तक का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र समाप्त हुए।

अब चक्षुदर्शनी जीवों में उपशामक और क्षपक महामुनियों का अंतर बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर गुणस्थान के समान है।।२८९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अंतर्मुहूर्त है।।२९०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो हजार सागरोपम है।।२९१।।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकों का अंतर गुणस्थान के समान है।।२९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती महामुनियों का उत्कृष्ट अंतर बतलाते हैं—

विद्यमानः मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षेण उपशमसम्यक्त्वमप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। अंतर्मुहूर्तेन वेदकसम्यक्त्वं गतः (२)। ततः अन्तर्मुहूर्त्तेन अनन्तानुबंधिनः विसंयोजितः (३)। दर्शनमोहनीयमुपशाम्य (४) प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्त्तसहस्रं कृत्वा (५) उपशमश्रेणिप्रायोग्यमप्रमत्तो जातः (६)। अपूर्वः (७) अनिवृत्तिः (८) सूक्ष्मः (९) उपशान्तः (१०) सूक्ष्मः (११) अनिवृत्तिः (१२) अपूर्वः (१३) अधोऽवतीर्यान्तरितः चक्षुर्दर्शनिस्थितिं परिभ्रम्यान्तिमे भवे मनुष्येषु उत्पन्नः। कृतकरणीयो भूत्वा अन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे विशुद्धोऽप्रमत्तो जातः। सातासातबंधपरावर्त्तसहस्रं कृत्वा उपशमश्रेणिप्रायोग्याप्रमत्तो भूत्वा अपूर्वोपशामको जातः (१४) लब्धं अन्तरं। ततः अनिवृत्तिः (१५) सूक्ष्मः (१६) उपशान्तः (१७) पुनरपि सूक्ष्मः (१८) अनिवृत्तिः (१९) अपूर्वः (२०) अप्रमत्तः (२१) प्रमत्तः (२२) अप्रमत्तः (२३) भूत्वा क्षपकश्रेणिमारूढः। उपरि षडन्तर्मुहूर्त्ताः। एवमष्टवर्षैः एकोनत्रिंशदन्तर्मुहूर्तैश्च ऊना स्वकस्थितिः अपूर्वकरणस्योत्कृष्टान्तरं। एवमेव त्रयाणामुपशामकानां। केवलं तु सप्तविंशति-पंचविंशति-त्रयोविंशति-अन्तर्मुहूर्त्ताः ऊनाः कर्तव्याः।

चतुर्णां क्षपकाणां गुणस्थानवदन्तरं वक्तव्यं।

एवं तृतीयस्थले उपशामक-क्षपकाणामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति अचक्षुर्दर्शनेषु गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

अचक्षुदर्शन की स्थिति में विद्यमान कोई एक जीव मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ को आदि लेकर आठ वर्ष की आयु में उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। वहाँ अंतर्मुहूर्त के पश्चात् वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया (२) पुनः अंतर्मुहूर्त से अनंतानुबंधी का विसंयोजन किया (३)। पुनः दर्शनमोहनीय को उपशमनकर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसंबंधी सहस्त्रों परिवर्तनों को करके (५) उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अंतर को प्राप्त होकर चक्षुदर्शनी की स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अंतिम भव में मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संसार के अंतर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर विशुद्ध होकर अप्रमत्तसंयत हुआ। वहां पर साता और असाता वेदनीय के बंध-परावर्तनों को सहस्त्रों बार करके उपशमश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४)। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६)। उपशांतकषाय (१७)। पुनरपि नीचे आकर सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्तसंयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणी पर चढ़ा। इनमें ऊपर के छह अंतर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी स्थितिप्रमाण चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामक का उत्कृष्ट अंतर होता है। इसी प्रकार शेष तीन उपशामकों का भी अंतर जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामक के सत्ताईस अंतर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक के पच्चीस अंतर्मुहूर्त और उपशांतकषाय के तेईस अंतर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनियों का अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में उपशामक और क्षपकों का अंतर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शनी जीवों के एक जीव की अपेक्षा अंतर प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रियपर्यन्ताः तथा च मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषायपर्यंता अचक्षुर्दर्शनिनः सन्ति। अतो गुणस्थानवदन्तरं ज्ञातव्यं।**

पूर्वं चक्षुर्दर्शनिस्थितिं परिभ्रम्य इति कथितं तर्हि का चक्षुर्दर्शनिस्थितिः इति चेत् ? द्विसहस्रसागरोपमा स्थितिः इति ज्ञातव्यं। मिथ्यादृष्टीनां ततश्च सासादनादीनां गुणस्थानवदेवावगंतव्यं।

एवं चतुर्थस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां अन्तरकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति अवधि-केवलदर्शनिनोरन्तरकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।२९४।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।२९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अवधिदर्शनिनां चतुर्थगुणस्थानादारभ्य द्वादशगुणस्थानपर्यंतं गुणस्थानवद् ज्ञातव्यं। केवलदर्शनिनां सयोगिनां नानाजीवापेक्षया सर्वकालं। एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अष्टवर्षैः अष्टान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिकालं कथयितव्यं। अयोगिनां चापि नानाजीवापेक्षया अंतर्मुहूर्तं, एकजीवापेक्षया चान्तर्मुहूर्तं, जघन्येन उत्कर्षेण चेति ज्ञातव्यं। किंच केवलिनां भगवतां दर्शनज्ञानोपयोगौ**

सूत्रार्थ—

अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवों का अंतर गुणस्थान के समान होता है।।२९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय जीवों से आरंभ करके पंचेन्द्रिय पर्यन्त तथा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से आरंभ करके क्षीणकषाय पर्यन्त अचक्षुदर्शनी जीव होते हैं। अतः इनका अंतर गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

पूर्व में 'चक्षुदर्शन की स्थिति में परिभ्रमण करके' ऐसा कहा है, तो चक्षुदर्शन की क्या स्थिति है ? दो हजार सागरोपम की उनकी स्थिति है ऐसा जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टियों का एवं सासादन सम्यग्दृष्टियों का अंतर गुणस्थान के समान ही जानना चाहिए।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में अचक्षुदर्शनियों का अंतर कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अवधिदर्शनी एवं केवलदर्शनियों का अंतर कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अवधिदर्शनी जीवों का अंतर अवधिज्ञानियों के समान है।।२९४।।

केवलदर्शनी जीवों का अंतर केवलज्ञानियों के समान है।।२९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवधिदर्शनियों का चतुर्थ गुणस्थान से आरंभ करके बारहवें गुणस्थान तक सभी का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिए। केवलदर्शन वाले सयोगिकेवलियों का नाना जीव की अपेक्षा अन्तर सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अंतर्मुहूर्त अंतर है और उत्कृष्ट से आठ वर्ष और आठ अंतर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिकाल का अन्तर कहना चाहिए। अयोगिकेवलियों का भी नाना जीवों की अपेक्षा

युगपत् स्तः न च क्रमेण अतो केवलदर्शनिनां अन्तरं केवलज्ञानिवद् निरूपितमस्ति।
एवं पंचमस्थले अवधिकेवलदर्शनिनोरन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम-नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अंतर्मुहूर्त अन्तर है, एक जीव की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त है और जघन्य तथा उत्कृष्ट की अपेक्षा भी अंतर्मुहूर्त जानना चाहिए, क्योंकि केवली भगवन्तों के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ होते हैं न कि क्रम से, अतः केवलज्ञानी के समान केवलदर्शनियों का अंतर निरूपित किया गया है।

इस प्रकार से पंचम स्थल में अवधि एवं केवलदर्शनी जीवों का अंतर निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में दर्शनमार्गणा नामक नवमां अधिकार समाप्त हुआ।

दिगम्बराचार्य गुरु सबसे बड़े वैद्य हैं

जैसे वैद्य, रोगी, औषधि और परिचारक के संयोग से आरोग्य होता है वैसे ही गुरु, शिष्य, रत्नत्रय और साधन के संयोग से मोक्ष होता है।

आचार्य वैद्य हैं, शिष्य रोगी है, औषधि चर्या है। इन्हें तथा क्षेत्र, बल, काल और पुरुष को जानकर धीरे-धीरे इनमें दृढ़ करे।

आचार्य देव वैद्य हैं, शिष्य रोगी हैं, औषधि निर्दोष भिक्षा चर्या है, शीत, उष्ण आदि सहित प्रदेश क्षेत्र हैं, शरीर की सामर्थ्य आदि बल है, वर्षा आदि काल हैं एवं जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट भेद रूप पुरुष होते हैं। इन सभी को जानकर आकुलता के बिना आचार्य शिष्य को चर्यारूपी औषधि का प्रयोग कराये ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वैद्य रोगी को आरोग्य हेतु औषधि प्रयोग कराकर स्वस्थ कर देता है।

—मूलाचार-श्री वट्टकेराचार्य

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः स्थलैः द्वात्रिंशत्सूत्रैः लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कृष्णादित्रिकाशुभलेश्यासु चतुर्गुणस्थानवर्तिनामन्तरप्रतिपादनत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनु द्वितीयस्थले तेजः पद्मलेश्यायोः गुणस्थानापेक्षया अन्तरनिरूपणत्वेन ''तेउलेस्सिय'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तदनंतरं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यायामन्तरकथनत्वेन ''सुक्कलेस्सिएसु'' इत्यादि एकोनविंशतिसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति कृष्णादित्रिकलेश्यासु गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।२९६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२९७।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।।२९८।।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में बत्तीस सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नामका दशवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं में चार गुणस्थानवर्ती जीवों का अंतर प्रतिपादन करने वाले ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पीत और पद्मलेश्यायुक्त जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा ''तेउलेस्सिय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में शुक्ललेश्याधारी जीवों का अंतर कथन करने वाले ''सुक्कलेस्सिएसु'' इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। इस प्रकार लेश्यामार्गणा अधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम कृष्ण आदि तीन लेश्या वाले जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोत लेश्यावालों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।२९६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।२९७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर क्रमशः कुछ कम तेंतीस, सत्रह और सात सागरोपम है।।२९८।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।२९९।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।३००।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।।३०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तिसृषु लेश्यासु नानाजीवापेक्षया मिथ्यादृष्टीनां असंयतसम्यग्दृष्टीनां नास्त्यंतरं। एकजीवापेक्षया सप्तमपृथिवीगतकृष्णलेश्यायुतः पंचमपृथिवीगतनीललेश्यायुतः प्रथमपृथिवीगत-कापोतलेश्यायुतः मिथ्यादृष्टिः असंयत सम्यग्दृष्टिर्वा अन्यगुणस्थानं गत्वा स्तोककालेन प्रतिनिवृत्त्य तच्चैव गुणस्थानमागतः, लब्धं द्वयोर्गुणस्थानयोरन्तरं जघन्येन।**

उत्कर्षेण—त्रयो मिथ्यादृष्टयः कृष्णनीलकापोतलेश्यायुताः सप्तम-पंचम-तृतीयपृथिवीषु क्रमेण उत्पन्नाः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः (१) विश्रान्ताः (२) विशुद्धाः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः अन्तरिताः अवसाने मिथ्यात्वं गताः। लब्धमन्तरं (४)। मृताः मनुष्येषु उत्पन्नाः। विशेषेण तु—सप्तमपृथिवीनारकः तिर्यगायुर्बद्ध्वा (५) विश्राम्य (६) तिर्यक्षु उत्पद्यते इति गृहीतव्यं। एवं षट्चतुः-चतुरन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्-

---

उक्त तीनों अशुभलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर गुणस्थान के समान है।।२९९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवां भाग और अंतर्मुहूर्त है।।३००।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम तेंतीस सागरोपम, सत्रह सागरोपम और सात सागरोपम है।।३०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीवों की अपेक्षा तीनों लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि एवं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा—सातवीं पृथिवी के कृष्णलेश्यावाले, पांचवीं पृथिवी के नीललेश्यावाले और प्रथम पृथिवी के कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव अन्य गुणस्थान में जाकर अल्पकाल में ही वहाँ से लौटकर उसी गुणस्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों गुणस्थानों का जघन्य अंतर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट की अपेक्षा—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रम से सातवीं, पाँचवीं और तीसरी पृथिवी में उत्पन्न हुए। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यक्त्व को प्राप्त कर अंतर को प्राप्त होकर आयु के अंत में मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मरणकर मनुष्यों में उत्पन्न हुए। विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवी का नारकी तिर्यंच आयु को बांधकर (५) विश्राम लेकर (६) तिर्यंचों में उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार छह अंतर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपम कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंतर है। चार अंतर्मुहूर्तों से कम सत्रह सागरोपम नील लेश्या का उत्कृष्ट अंतर है। तथा चार अंतर्मुहूर्तों से कम सात सागरोपम कापोतलेश्या वालों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

सप्तदश-सप्तसागरोपमाणि कृष्ण-नील-कापोतलेश्यायुतानां मिथ्यादृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवमसंयतसम्यग्दृष्टेरपि वक्तव्यं। विशेषेण — षट्-पंच-पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्तसागरोपमाणि उत्कृष्टान्तरं।

सासादनस्य उत्कर्षेण कथ्यते — त्रयो मिथ्यादृष्टयः जीवाः सप्तम-पंचम-तृतीयपृथिवीषु कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासहिताः उत्पन्नाः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः (१) विश्रान्ताः (२) विशुद्धाः (३) उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः (४) सासादनं गताः। मिथ्यात्वं गत्वान्तरिताः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नाः। सासादनं गत्वा द्वितीयसमये मृताः मनुष्येषु उत्पन्नाः। विशेषेण तु सप्तमपृथिव्याः सासादनाः मिथ्यात्वं गत्वा (५) तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते इति वक्तव्यं।

एवं पंच-चतुः-चतुरन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्तसागरोपमानि कृष्ण-नील-कापोतलेश्यायुतसासादनोत्कृष्टान्तरं भवति। अत्र एकसमयः अंतर्मुहूर्त्तस्याभ्यन्तरे प्रविष्टः इति पृथग् नोक्तः।

एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टेरपि। विशेषेण — षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश-सप्तसागरोपमाणि कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासहितानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं प्रथमस्थले अशुभत्रिलेश्यानां अन्तरकथनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना तेजःपद्मलेश्ययोः गुणस्थानापेक्षया अन्तरनिरूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

इसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि का भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि कृष्णलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर छह अंतर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपम, नील लेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम सत्रह सागरोपम और कापोत लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम सात सागरोपम होता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं —

कृष्ण, नील और कापोतलेश्या वाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवी, पाँचवी और तीसरी पृथिवी में उत्पन्न हुए। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुए (४)। पुनः सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो गये। पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त हुए। पुनः जीवन के अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण अवशिष्ट रहने पर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुए। पश्चात् सासादनगुणस्थान में जाकर द्वितीय समय में मरे और मनुष्यों में उत्पन्न हुए। विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्व को प्राप्त होकर (५) तिर्यंचों में उत्पन्न होते है ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार पाँच, चार और चार अंतर्मुहूर्तों से कम क्रमशः तेंतीस, सत्रह और सात सागरोपम कालप्रमाण कृष्ण, नील और कपोत लेश्या वाले सासादन सम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अंतर होता है। यहां सासादनगुणस्थान में जाकर रहने का एक समय अंतर्मुहूर्त के ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिए पृथक् से नहीं कहा है।

इसी प्रकार तीनों अशुभलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि का भी उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ पर छह-छह अंतर्मुहूर्तों से कम तेंतीस, सत्रह और सात सागरोपम कालप्रमाण क्रमशः कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालों का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में अशुभ तीन लेश्याओं का अंतर कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पीत और पद्मलेश्या से सहित जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अंतर निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु-मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३०२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३०३।।

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३०४।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।३०५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।३०६।।

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३०७।।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३०८।।

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है।।३०२।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३०३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपम है।।३०४।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर गुणस्थान के समान है।।३०५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवां भाग और अंतर्मुहूर्त है।।३०६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर क्रमशः साधिक दो सागरोपम और अट्ठारह सागरोपम है।।३०७।।

तेज और पद्म लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना और एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तेजोलेश्यापद्मलेश्याः मिथ्यादृष्ट्यः सम्यग्दृष्ट्यः चत्वारः जीवाः अन्यगुणस्थानं गत्वा सर्वजघन्यकालेन प्रतिनिवृत्त्य तच्चैव गुणस्थानमागताः। लब्धमन्तरं।**

उत्कर्षेण—द्वौ मिथ्यादृष्टिजीवौ तेजःपद्मलेश्यायुतौ सातिरेकद्विसागरसातिरेकाष्टादशसागर आयुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नौ। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तौ (१) विश्रान्तौ (२) विशुद्धौ (३) सम्यक्त्वं गृहीत्वान्तरितौ। स्वकस्थितिं जीवित्वावसाने मिथ्यात्वं गतौ (४)। लब्धमन्तरं। एवं सम्यग्दृष्टेरपि। नवरि पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनम् स्वकस्थितिप्रमाणमन्तरं। सासादनस्य उत्कर्षेण—द्वौ सासादनौ तेजःपद्मलेश्यौ सातिरेकद्विसागरसातिरेकाष्टादशसागरायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नौ। एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गत्वान्तरितौ। अवसाने द्वौ अपि उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नौ। पुनः सासादनं गत्वा द्वितीयसमये मृतौ। एवं सातिरेक-द्वि-अष्टादशसागरोपमाणि षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनमुक्तस्थितिप्रमाणमन्तरं।

संयतासंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तयोश्च नानाजीवप्रवाहव्युच्छेदाभावात् नास्त्यन्तरं। एकजीवस्यापि लेश्याकालात् गुणस्थानकालस्य बहुत्वोपदेशात् नास्त्यन्तरम्।

एवं द्वितीयस्थले द्विकशुभलेश्यायुतानां अन्तरनिरूपणत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

संप्रति शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्दृष्टि चार जीव अन्य गुणस्थान में जाकर सर्वजघन्य काल से लौटकर उसी गुणस्थान में आ गये। इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट की अपेक्षा—तेज और पद्मलेश्या वाले दो मिथ्यादृष्टि जीव कुछ अधिक दो सागरोपम और कुछ अधिक अट्ठारह सागरोपम की आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुए। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) और सम्यक्त्व को ग्रहण कर अंतर को प्राप्त हुए। पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयु के अंत में मिथ्यात्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार (कुछ अधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का और कुछ अधिक अट्ठारह सागरोपमकाल पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट) अंतर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का भी अंतर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण अंतर होता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—

तेज और पद्मलेश्या वाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कुछ अधिक दो सागरोपम और कुछ अधिक अट्ठारह सागरोपम की आयुस्थितिवाले देवों में उत्पन्न हुए। वहाँ एक समय रहकर दूसरे समय में मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त हुए। आयु के अंत में दोनों ही उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुए। पश्चात् सासादनगुणस्थान में जाकर दूसरे समय में मरे। इस प्रकार दो समय कम कुछ अधिक दो सागरोपम और कुछ अधिक अट्ठारह सागरोपम और छह अंतर्मुहूर्तों से कम उक्त स्थिति प्रमाण अंतर होता है।

उपर्युक्त संयतासंयत एवं प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले जीवों के प्रवाह का कभी विच्छेद नहीं होता है। तथा एक जीव की अपेक्षा भी अंतर नहीं है क्योंकि लेश्या के काल से गुणस्थान का काल बहुत होता है ऐसा उपदेश पाया जाता है इसलिए अंतर नहीं है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में दो शुभ लेश्यासहित जीवों का अंतर कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्या वाले जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती तक का अंतर कथन करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं—

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३०९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१०।।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।३११।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।३१२।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।३१३।।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।।३१४।।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३१५।।

अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३१६।।

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्यावालों में मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३०९।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३१०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम इकत्तीस सागरोपम है।।३११।।

शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर गुणस्थान के समान है।।३१२।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवां भाग और अंतर्मुहूर्त है।।३१३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम इकत्तीस सागरोपम है।।३१४।।

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों और एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३१५।।

शुक्ललेश्यावाले अप्रमत्तसंयतों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३१६।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१७।।
उक्कस्समंतोमुहुत्तं।।३१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकजीवापेक्षया कश्चिद् मिथ्यादृष्टिः शुक्ललेश्यः गुणस्थानान्तरं गत्वा जघन्यकालेन विवक्षितगुणस्थानं प्रतिपन्नः। लब्धमन्तरं। एवमेव सम्यग्दृष्टेरपि ज्ञातव्यं।**

उत्कर्षेण—एकःशुक्ललेश्यः मिथ्यादृष्टिः द्रव्यलिंगी मुनिः एकत्रिंशत्सागरेषु आयुष्केषु देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः, मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः (४) अतो चतुरन्तर्मुहूर्तैः ऊनं एकत्रिंशत्सागरप्रमाणंमिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टान्तरं।

एवं शुक्ललेश्यस्य सम्यग्दृष्टेः पञ्चान्तर्मुहूर्तैः ऊनं एकत्रिंशत्सागरप्रमाणं उत्कृष्टान्तरं ज्ञातव्यं।

सासादनानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि गुणस्थानवदन्तरं ज्ञातव्यं।

संयतासंयतानां प्रमत्तानां च नानाजीवाप्रवाहच्युच्छेदाभावात् नास्त्यंतरं। एकजीवस्य लेश्याकालात् गुणस्थानकालस्य बहुत्वोपदेशात् नास्त्यन्तरं।

अप्रमत्तसंयतानां एकजीवापेक्षया—एकः अप्रमत्तः शुक्ललेश्यायां स्थितः उपशमश्रेणिं चटित्वान्तरं प्राप्य सर्वजघन्यकालेन प्रतिनिवृत्त्य अप्रमत्तो जातः। लब्धमंतरं। उत्कर्षेण तु—सर्वचिरेण कालेन उपशमश्रेण्याः अवतीर्यमाणस्य अंतर्मुहूर्तं वक्तव्यं।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३१७।।
उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा कोई एक शुक्ल लेश्या वाला मिथ्यादृष्टि जीव अन्य गुणस्थान में जाकर जघन्यकाल से विवक्षित गुणस्थान को प्राप्त हो गया। यह अंतर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्या वाले जीव का भी अंतर जानना चाहिए।

उत्कृष्ट की अपेक्षा कथन करते हैं—शुक्ललेश्या वाले कोई एक मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि इकत्तीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुए। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। मिथ्यात्व में जाकर अंतर को प्राप्त हुए (४)। अतः चार अंतर्मुहूर्तों से कम इकत्तीस सागरोपमकाल शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अंतर है ऐसा जानना चाहिए।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या वाले सम्यदृष्टि जीव का और पाँच अंतर्मुहूर्तों से कम इकत्तीस सागरोपम काल असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर जानना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अंतर भी गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

उन संयतासंयत एवं प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती नाना जीवों के प्रवाह का कभी विच्छेद न होने से अंतर नहीं है। एक जीव की लेश्या के काल से गुणस्थान का काल बहुत होता है ऐसा उपदेश पाया जाता है अतः अंतर नहीं है।

अप्रमत्तसंयतों का एक जीव की अपेक्षा अंतर कहते हैं—शुक्ललेश्या में विद्यमान कोई एक अप्रमत्तसंयत मुनि उपशमश्रेणी पर चढ़कर अंतर को प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल से लौटकर अप्रमत्तसंयत हुए। इसी प्रकार अंतर प्राप्त हो गये। अर्थात् इसका अन्तर भी जघन्य अंतरप्ररूपणा के समान है। विशेषता यह है कि उत्कृष्ट से सर्वदीर्घकालात्मक अंतर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणी से उतरे हुए जीव के उत्कृष्ट अंतर कहना चाहिए।

संप्रति शुक्ललेश्यासु उपशामक-क्षपक-सयोगिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३१९।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।३२०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३२१।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३२२।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३२३।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।३२४।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३२५।।

चउण्हं खवगा ओघं।।३२६।।

सजोगिकेवली ओघं।।३२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रयाणामुपशामकानां एकजीवापेक्षया लघुकालेन उपशमश्रेणिं चटित्वा

अब शुक्ललेश्या वाले जीवों के उपशामक-क्षपक महामुनि एवं सयोगिकेवलियों का अंतर प्रतिपादन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती तीनों उपशामक जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।३१९।।

शुक्ललेश्या वाले तीनों उपशामकों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।३२०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३२१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३२२।।

शुक्ललेश्यावाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अंतर है।।३२३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है।।३२४।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३२५।।

शुक्ललेश्या वाले चारों क्षपकों का अंतर गुणस्थान के समान है।।३२६।।

शुक्ललेश्या वाले सयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान है।।३२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—शुक्ललेश्या वाले तीनों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा लघुकाल से

अवतीर्यमाणस्य जघन्यान्तर्मुहूर्त्तं। उत्कर्षेण चिरकालेन उपशमश्रेणिमारोह्यावतीर्यमाणस्य उत्कृष्टान्तर्मुहूर्तान्तरं। उपशान्तकषायस्य एकजीवापेक्षया उपशान्तात् उपरि उपशान्तकषायेण प्रतिपद्यमानगुणस्थानाभावात्, अधोऽवतीर्यमाणस्यापि लेश्यान्तरसंक्रान्तिमन्तरेण उपशान्तकषायगुणस्थानग्रहणाभावात्।

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगिकेवलिनां च गुणस्थानवदन्तरं कथयितव्यं।

तात्पर्यमेतत्—पीत-पद्म-शुक्ललेश्यानां मध्ये कामपि लेश्यां उपगतस्य पुण्यशालिनः शुभकार्ये प्रवृत्तस्य शुद्धोपयोगः भवतुमर्हति। पुनश्च कारणसमयसारबलेन कार्यसमयसारस्य अनन्तचतुष्टयस्वरूपस्य आर्हन्त्यपदस्य प्राप्त्यै सक्षमो भूत्वा परंपरया निर्वाणपरमस्थानमाप्नोति इति ज्ञात्वा शुभलेश्यासु प्रवृत्तिर्विधातव्या।

एवं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यापरिणतानां अन्तरप्रतिपादनत्वेन एकोनविंशतिसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीव का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट की अपेक्षा चिरकाल—दीर्घकाल से उपशम श्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीव का उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है।

उपशांतकषाय का एक जीव की अपेक्षा उपशांतकषाय गुणस्थान से ऊपर उपशांतकषायी जीव के द्वारा प्रतिपद्यमान गुणस्थान का अभाव है। तथा नीचे उतरे हुए जीव के भी अन्य लेश्या के संक्रमण के बिना पुनः उपशांतकषाय गुणस्थान के ग्रहण का अभाव पाया जाता है।

चारों क्षपकों का तथा सयोगिकेवलियों का अंतर अपने-अपने गुणस्थान के समान जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि पीत-पद्म-शुक्ल इन तीन शुभ लेश्याओं में किसी भी लेश्या को प्राप्त हुए शुभकार्यों में प्रवृत्त पुण्यशाली जीव के शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो सकती है। पुनः वे कारणसमयसार के बल से अनंतचतुष्टयरूप अर्हंत पद की प्राप्तिरूप कार्यसमयसार की प्राप्ति के लिए सक्षम होकर परम्परा से निर्वाण परमस्थान को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा जानकर शुभलेश्याओं में प्रवृत्ति करना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में शुक्ल लेश्यापरिणत जीवों का अंतर प्रतिपादन करने वाले उन्नीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में लेश्यामार्गणा नामक दशवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिसूत्रैः भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमे स्थले भव्यमार्गणायां अन्तरकथनमुख्यत्वेन ''भवियाणु'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले अभव्यानां अन्तरप्ररूपणत्वेन ''अभवसिद्धिया'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

भव्यमार्गणायां मिथ्यादृष्ट्यादि-अयोगिकेवलिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिदिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वप्रकारेण गुणस्थानप्ररूपणायाः भेदाभावात्, ओघवद्ज्ञातव्यं। किंच, सर्वेऽपि चतुर्दशगुणस्थानेषु कस्मिंश्चिद् गुणस्थाने एव तिष्ठन्ति अतो नात्र वितन्यते।**

एवं प्रथमस्थले भव्यानामन्तरप्ररूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अभव्यानामन्तरकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३२९।।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नामका ग्यारहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्यमार्गणा में भव्य जीवों का अंतर कथन करने हेतु ''भवियाणु'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का अंतर प्ररूपण करने वाले ''अभवसिद्धिया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम भव्यमार्गणा में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानवर्तियों तक का अंतर प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवों का अंतर गुणस्थान के समान है।।३२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी प्रकार से गुणस्थान प्ररूपणा से भव्यमार्गणा की अंतरप्ररूपणा में कोई भेद नहीं है, उनका सारा वर्णन गुणस्थान के समान जानना चाहिए, क्योंकि भव्यजीव सभी चौदहों गुणस्थानों में से किसी न किसी गुणस्थान में ही रहते हैं, इसलिए यहाँ उनका विस्तार नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में भव्य जीवों का अंतर प्ररूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्य जीवों का अंतर बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्धिक जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३२९।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अभव्यानां जीवानां प्रवाहव्युच्छेदाभावात् ते सर्वे निरंतरं सन्त्येव। एकजीवापेक्षयापि तत्र अभव्येषु गुणस्थानान्तरसंक्रान्तेः अभावात् नास्त्यन्तरं।**

यद्यपि अभव्यानां लक्षणं स्थूलतया निर्णयश्च नास्माकं कर्तुं शक्यते तथापि समयसारप्राभृतग्रन्थे श्रीकुंदकुंददेवेन प्रोक्तं तत्प्रकरणस्य स्मारं स्मारं विषयभोगेषु विरतिर्विधातव्या।

ताः गाथाः उच्यन्ते—

वदसमिदीगुत्तीओ, सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं।
कुव्वंतो वि अभव्वो, अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ।।२९१।।
मोक्खं असद्दहंतो, अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं, असद्दहंतस्स णाणं तु।।२९२।।
सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं, ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।२९३।।

व्रतसमितिगुप्तिशीलतपश्चरणादिकं जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथितं मंदमिथ्यात्व कषायोदये सति कुर्वन्नप्यभव्यो जीवस्त्वज्ञानी भवति मिथ्यादृष्टिश्च भवति। कस्मात् इति चेत् ? मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनामुपशमक्षयोपशमक्षयाभावात् शुद्धात्मोपादेयश्रद्धानाभावात् इति।

अभव्य जीवों का एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अभव्य जीवों के प्रवाह व्युच्छेद का अभाव होने से वे सभी निरंतर ही हैं। एक जीव की अपेक्षा भी उन अभव्यों में अन्य गुणस्थान के परिवर्तन का अभाव होनेसे अंतर नहीं है, वे निरन्तर हैं।

यद्यपि स्थूलरूप से अभव्यों के लक्षण का निर्णय कर पाना हमारे लिए शक्य नहीं है, फिर भी समयसारप्राभृत ग्रंथ में श्रीकुंदकुंददेव ने कहा है, उस प्रकरण को बार-बार पढ़कर विषयभोगों से हमें विरक्त होना चाहिए।

वे गाथाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

गाथार्थ—जिनवरों के द्वारा प्रतिपादित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप को करते हुए भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।।२९१।।

जो अभव्य जीव मोक्ष का श्रद्धान न करता हुआ अध्ययन करता है, उस ज्ञान की श्रद्धा नहीं करने वाले जीव को उसका अध्ययन करना लाभकारी नहीं होता है।।२९२।।

वह अभव्यजीव धर्म का श्रद्धान करता है, उसकी प्रतीति करता है और उसका स्पर्श भी करता है, किन्तु यह सारी क्रियाएँ वह मात्र सांसारिक भोगों की प्राप्ति के लिए करता है न कि कर्मक्षय के लिए करता है।।२९३।।

जो पाँचव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, शील और तपश्चरण आदि हैं उनका कथन श्री जिनेन्द्रदेव ने किया है। अभव्यजीव अपने मंदमिथ्यात्व और मंद कषायों का उदय होने पर इन व्रतादि को धारण करते हुए भी अज्ञानी होता है और मिथ्यादृष्टि ही रहता है। क्यों ? क्योंकि उसके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति और अनंतानुबंधि क्रोध मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय नहीं होने से शुद्धात्मा के उपादेयरूप श्रद्धान का अभाव है।

मोक्षमश्रद्दधानः सन्नभव्यजीवो यद्यपि ख्यातिपूजालाभार्थमेकादशांगश्रुताध्ययनं कुर्यात् तथापि तस्य शास्त्रपाठः शुद्धात्मपरिज्ञानरूपं गुणं न करोति। किं कुर्वतस्तस्य ? अश्रद्दधतोऽरोचमानस्य ज्ञानं इति। कस्मान्न श्रद्धत्ते ? अभव्यत्वादिति।

आत्मख्यातिटीकायां कथितं श्रीअमृतचन्द्रसूरिवर्येण—

अभव्यो हि नित्यकर्मकर्मफलचेतनारूपं वस्तु श्रद्धत्ते, नित्यज्ञानचेतनामात्रं न तु श्रद्धते नित्यमेव भेदविज्ञानानर्हत्वात्। ततः स कर्ममोक्षनिमित्तं ज्ञानमात्रं भूतार्थं धर्मं न श्रद्धत्ते। भोगनिमित्तं शुभकर्ममात्रमभूतार्थमेव श्रद्धत्ते। तत एवासौ अभूतार्थधर्मश्रद्धानप्रत्ययनरोचनस्पर्शनैरुपरितनग्रैवेयकभोगमात्रमास्कंदेन्न पुनः कदाचनापि विमुच्यते, ततोऽस्य भूतार्थधर्मश्रद्धानाभावात् श्रद्धानमपि नास्ति।

एतां अभव्यानां प्रवृत्तिं ज्ञात्वा प्रत्यहं चिंतनीयं—'न वयमभव्याः अस्मत्सु त्रिरत्नानां सद्भावात्' इति श्रद्धां कृत्वा निरंतरं चिच्चैतन्यस्वरूपशुद्धात्मनि रुचिः प्रतीतिः प्रत्ययश्च कर्तव्यः। तस्मिन्नेव चैतन्यरत्नाकरे अवगाह्य तत्र स्थिरीभूय परमानन्दसुखामृतस्वादो गृहीतव्योऽस्माभिरिति।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यानामन्तर-कथनमुख्यत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

मोक्ष का श्रद्धान नहीं करता हुआ वह अभव्य जीव यद्यपि ख्याति, पूजा और लाभ के लिये एकादश अंग तक भी श्रुत का अध्ययन कर लेता है तो भी उसका वह शास्त्रों का पढ़ना शुद्ध आत्मा के जाननेरूप—अनुभवरूप गुण को भी नहीं कराता है, क्योंकि उसको ज्ञान का श्रद्धान नहीं है—रुचि नहीं है।

प्रश्न—यह अभव्यजीव इस ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मा का श्रद्धान क्यों नहीं करता है ?

उत्तर—क्योंकि वह अभव्य है।

अभव्य जीव हमेशा ही कर्मचेतना और कर्मफल-चेतनारूप वस्तु का श्रद्धान करता है किन्तु नित्य ज्ञानचेतनामात्र जो आत्मद्रव्य है उसका श्रद्धान नहीं करता है क्योंकि वह नित्य ही भेदविज्ञान के अयोग्य है। इसलिए वह कर्मों से मुक्त होने के लिए कारण ऐसे ज्ञानमात्र भूतार्थ धर्म का श्रद्धान नहीं करता है प्रत्युत भोगों के लिए कारण शुभक्रियामात्र ऐसे अभूतार्थ धर्म का ही श्रद्धान करता है इसलिए यह असत्यार्थ धर्म के श्रद्धान, प्रतीति, रुचि और स्पर्शन के द्वारा नवमें ग्रैवेयक तक के भोगमात्र को प्राप्तकर लेता है किन्तु वह कदाचित् भी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता है। इस हेतु से इसके सत्यार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से श्रद्धान—सम्यग्दर्शन भी नहीं है।

अभव्य जीवों की ऐसी प्रवृत्ति जानकर प्रतिक्षण यही चिंतन करना चाहिए कि—

"हम अभव्य नहीं हैं, क्योंकि हमारी आत्मा में त्रिरत्न—रत्नत्रय का सद्भाव है" ऐसी श्रद्धा करके निरंतर चिच्चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा में रुचि, प्रतीति और आचरण करना चाहिए। उसी चैतन्य रत्नाकर—आत्मा के ज्ञानसमुद्र में अवगाहना करते हुए आत्मा में स्थिर होकर परमानंदसुखरूपी अमृत का स्वाद हमें ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का अंतर कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने समयसार में इस गाथा के विशेषार्थ में स्पष्ट किया है—

इस गाथा को पढ़कर ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए कि व्रत, समिति, गुप्ति, शील और इनका पालन करने वाले मिथ्यादृष्टि अज्ञानी ही हैं, क्योंकि पहली बात तो यह है कि इनको पालन करने का आदेश श्री जिनेन्द्रदेव ने किया है। दूसरी बात यह है कि आज तक जितने महापुरुष मोक्ष गये हैं, वे सभी इन व्रतादिकों

का पालन करके ही मोक्ष गये हैं इनके बिना नहीं गये हैं और तीसरी बात यह है कि ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों ने भी इसका पालन किया है, जैनेश्वरी दीक्षा ली है, केशलोंच किया है और तपश्चरण भी किया है। श्री कुंदकुंददेव ने अन्यत्र भी कहा है—

धुवसिद्धी तित्थयरो, चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा, तवयरणं णाणजुत्तो वि।।

अर्थात् तीर्थंकरों की ध्रुवसिद्धि है—नियम से उसी भव से मोक्ष जायेंगे तथा दीक्षा लेते ही मनःपर्ययसहित चार ज्ञान के धारी हो जाते हैं फिर भी वे तपश्चरण करते हैं ऐसा जानकरके ज्ञान से सहित होते हुए भी नियम से तुम्हें तपश्चरण करना चाहिये, देखो भगवान ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक तपश्चरण किया था और भगवान् महावीर ने बारह वर्ष तक किया था। इसलिए व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप इनको आदरपूर्वक ग्रहण करना चाहिए और इनको धारण करने वालों के प्रति भी महान आदरभाव रखना चाहिए।

कोई कहे कि अभव्य तो इनको धारण करते हुए भी अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि ही रहता है यही कारण है इस व्यवहारनयाश्रित चारित्र की ऊपर की गाथा में निश्चयनय ने प्रतिषेध कर दिया है। सो बात यह है कि इस व्यवहारचारित्र के आश्रय से ही मुनि कहलाते हैं तभी वे निश्चयनय के आश्रित शुद्धात्मा में लीन हो सकते हैं अतः महल की छत पर पहुँचने के लिए सीढ़ी के समान यह व्यवहारचारित्र उपादेय है पुनः छत पर पहुँच जाने पर सीढ़ी स्वयमेव छूट जाती है। हाँ, यदि ऊपर से पुनः नीचे उतरना हो तो सीढ़ी की फिर भी आवश्यकता रहती ही है वैसे ही मुनि सातवें गुणस्थान से छठे में उतरते हैं तब व्यवहारचारित्री होते हैं और छठे से सातवें में चढ़ते हैं तब निश्चयचारित्री होते हैं। ये छठे-सातवें गुणस्थान अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त काल के ही हैं अतः वे अपने जीवन में असंख्यातों बार इन दोनों गुणस्थानों में चढ़ते-उतरते रहते हैं।

दूसरी बात यह भी है कि अभव्यमुनि का चारित्र भी निंदनीय नहीं है, क्योंकि वह भी तो निर्दोष चारित्र और ग्यारह अंगों तक ज्ञान प्राप्तकर समयसार जैसे आध्यात्मिक ग्रंथों को भी पढ़ता है "आत्मा भिन्न है-शरीर भिन्न है" ऐसा प्रतिपादन करके हजारों शिष्यों को मोक्षमार्गी बना देता है फिर भी उसके श्रद्धान नहीं है, कहां और क्या कमी है ? ऐसा होने पर भी संघों में यह अभव्य है या द्रव्यलिंगी मुनि ? ऐसा भेद नहीं देखा जा सकता है। क्या उन अभव्य या द्रव्यलिंगी मुनियों को आहार देने के लिए छांट-छांटकर—ढूँढ-ढूँढ कर मिथ्यादृष्टि श्रावक बुलाये जाते थे ? आखिर संघ में मुनिगण वंदना-प्रतिवंदना भी तो करते ही थे, जैसे पुष्पडाल मुनि द्रव्यलिंगी थे तो भी उनको आहार देने वाले, नमस्कार करने वाले सम्यग्दृष्टि श्रावक थे। अतः किन्हीं मुनि को अभव्य या द्रव्यलिंगी कहकर उनका अपमान करना चारित्र का अपमान है, क्योंकि वह चारित्र नवग्रैवेयक तक ले जाने का कारण है।

कोई कहे 'ज्ञान बिना करनी दुःखदायी' सो यहाँ यह पंक्ति लागू नहीं होगी। इसे तो वहां लगाना चाहिए जहाँ करनी—क्रियायें उल्टी-सुल्टी हों, जैसे—किसी ने दिनभर तो उपवास रखा है पुनः कंदमूल आदि अभक्ष्य भक्षण करते हुए रात में पारणा कर लिया। लोक उदाहरण प्रसिद्ध है—एक वैद्य ने कहा कि-भाई 'दवाई हिला कर पिलाना' वे महानुभाव घर आये और रोगी को हिला-हिलाकर दवाई पिलाने लगे, बेचारा अति कमजोर रोगी और अधिक अस्वस्थ हो गया। सो यहाँ दवाई हिलाने की बात थी, न कि रोगी को हिलाने की इत्यादि।

निष्कर्ष यह निकला कि यह महाव्रत आदि व्यवहारचारित्र भव्य तो धारण करते ही हैं तथा अभव्य भी धारण कर सकते हैं इसलिये इसी से साक्षात् मोक्ष मत मानो इसको साधन मानकर इससे साध्य—

निश्चयचारित्र की भावना भावो, इसी में अटके मत रहो। इसी तक कर्तव्य की 'इति श्री' मत समझो। जब तक तुम मुनि नहीं बने हो, मुनिव्रत धारण करने की भावना करते रहो और यदि मुनि हो तो निश्चयचारित्र को प्राप्त करने की भावना भाते रहना ही श्रेयस्कर है।

अभव्यजीव कदाचित् मिथ्यात्व और कषायों के मंद उदय से मुनि बन जाता है, वह निर्दोष चारित्र पालते हुए गुरु के सानिध्य में रहकर आचारांग, सूत्रकृतांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन भी कर लेता है। "आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है" ऐसा कहते हुये अच्छा से अच्छा उपदेश देकर अनेक भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर संसार से तार देता है किंतु उसमें श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन की जो कमी है वह न स्वयं समझ पाता है और न हम और आप ही समझ सकते हैं। यही कारण है कि वह मोक्ष का पात्र नहीं है। उसके व्यवहाररत्नत्रय भी नहीं है। यद्यपि ऊपर से दिख रहा है लेकिन वास्तव में सच्चा रत्नत्रय नहीं है। यहाँ यह बात ध्यान में रखना कि अभव्यजीव को मुनि बनने पर ही अंगों का ज्ञान होता है मुनि के बिना श्रावक को या ग्रहस्थ अव्रती को अंगरूप श्रुत पढ़ने का अधिकार नहीं है। दूसरी बात यह है कि अभव्यमुनि को ग्यारह अंग तक ही ज्ञान हो सकता है। पूर्वों का ज्ञान नहीं होता है। जो कोई रुद्रों को दशपूर्व तक ज्ञान सुनकर अभव्य को दशपूर्व तक ज्ञान मानते हैं वह गलत है क्योंकि रुद्र अभव्य नहीं है भव्य हैं, ऐसा नियम है, वे भ्रष्ट होकर दुर्गति में जाकर भी आगे भवों में नियम से मोक्ष जावेंगे ऐसा कथन आया है। यह अभव्य जीव अहमिंद्र आदि पदवी के लिए कारण होने से ऐसे पुण्यरूप धर्म का भोगों की आकांक्षारूप से श्रद्धान करता है, ज्ञानरूप से उस धर्म को जानता है– प्रतीति करता है और विशेष श्रद्धान रूप से उसी पर रुचि रखता है तथा उसी धर्म के अनुष्ठान रूप से उसी का स्पर्श करता है। किन्तु यह अभव्य होने से कर्मों के क्षय के निमित्त ऐसे शुद्धात्मा के अनुभव लक्षण वाले निश्चयधर्म को नहीं प्राप्त कर पाता है, ऐसा समझना।

यहाँ टीका में श्री अमृतचंद्रसूरि ने असत्यार्थ धर्म के श्रद्धान आदि से नवमें ग्रैवेयक तक जाना माना है यह दिगम्बर मुनियों के लिए ही संभव है, क्योंकि निर्वस्त्र मुनि हुये बिना सोलहवें स्वर्ग के ऊपर जाना असंभव है। अतः यह ग्रंथ और इसका सारा प्रकरण मुनियों के लिए ही है। यहाँ जो अभव्य की बात है उससे यह समझते हुए देरी नहीं लगती है कि अभव्यमुनि ही ग्यारह अंगों को पढ़कर व घोर तपश्चरण करके नवमें ग्रैवेयक तक जा सकते हैं। इन्हीं प्रकरणों को पढ़कर शायद पं. दौलतराम जी ने यह पद्य बनाया होगा—

कोटि जन्म तप तपें ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिनमाहिं त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते।।
मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम-ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।

जहाँ तक अनंतबार ग्रैवेयक जाने की बात है वह अभव्य मुनियों के लिए ही घटित होगी जो कि इस समयसार ग्रंथ की इन गाथा व टीकाओं से संदर्भित है। तथा जो यहाँ ज्ञानी और अज्ञानी की बात है वह भी मुनियों की अपेक्षा से ही है, क्योंकि 'ज्ञानी के छिनमाहिं त्रिगुप्ति तें' शब्द तीन गुप्ति के धारक मुनियों के लिए ही हैं, तीन गुप्तियां भला गृहस्थ श्रावक व अव्रती के कहाँ संभव हैं ? यह प्रकरण भी जिस गाथा के आधार से लिया गया है उसे देखिये—

जं अण्णाणी कम्मं, खवेइ भवसयसहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमेत्तेण।।३८।। (प्रवचनसार)

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अज्ञानी जीव जितने कर्मों को लाखों-करोड़ों भवों द्वारा नष्ट करता है, ज्ञानी मुनि तीन गुप्तियों से गुप्त—सहित होकर उतने कर्मों को उच्छ्वास मात्र में क्षपित कर देते हैं।

इस गाथा को पढ़कर और उपर्युक्त समयसार में अभव्यमुनि की बात पढ़कर आजकल के विद्वानों को उन छहढाला की पंक्तियों का अर्थ आजकल के सभी मुनियों में नहीं घटाना चाहिए। आज तो उत्तम संहनन के अभाव में कोई भी मुनि न तो नवग्रैवेयक में ही जा सकते हैं और न ही वे तीनगुप्तियों के धारी ही हो सकते हैं। फिर भी आज के मुनियों में से भी कोई-कोई मुनि इंद्रपद व लौकांतिक देव के पद को भी प्राप्त कर सकते हैं तथा आत्मतत्व के ज्ञानी व ध्यानी भी हो सकते हैं। श्री कुंदकुंददेव की गाथायें हैं—

भरहे दुस्समकाले, धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे, ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।
अज्जवि तिरयणसुद्धा, अप्पा झायेहि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।। (मोक्षपाहुड़)

इस भरत क्षेत्र में, दुःषमकाल में साधुओं के धर्मध्यान होता है वे आत्मस्वभाव में स्थित होकर धर्मध्यान करते हैं। जो ऐसा नहीं मानते हैं वे अज्ञानी हैं। आज भी मन वचन काय की शुद्धि से सहित मुनि आत्मा का ध्यान करके इंद्र और लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं पुनः वहां से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। अतः समयसार की इन गाथाओं को आज के सभी मुनियों पर लगाकर उन्हें द्रव्यलिंगी अभव्य मानकर उनकी भक्ति का निषेध करना मिथ्यात्व है, महापाप है ऐसा समझना।

इस प्रकार षट्खंडागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में भव्यमार्गणा नामक ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

धर्म एक सर्वश्रेष्ठ समुद्र है

चारुगुणसलिलपउरं संजमउत्तुंगउम्मिसंघायं।
णिम्मलतवपायालं समिदि महामच्छ संछण्ण।।
जमणियमदीवपउरं वरगुत्तिगंभीर सीलमज्जादं।
णिव्वाणरयणणिवहं धम्मसमुद्दं णमंसामि।।

अर्थ—सुन्दर गुणों रूप जल की प्रचुरता से संयुक्त, संयम रूप उन्नत ऊर्मि समूहों से सहित, निर्मल तपरूप पातालों से परिपूर्ण, समितियों रूपी महामत्स्यों से व्याप्त, यम-नियम रूप प्रचुर द्वीपों (जलजन्तु विशेषों) से संयुक्त, श्रेष्ठ गुप्तियों एवं गंभीर शीलरूप मर्यादा से सहित और निर्वाणरूप रत्नसमूह से सम्पन्न ऐसे धर्मरूप समुद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

—जम्बूद्वीपपण्णत्ति-आचार्य पद्मनंदि

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलपंचकेन अष्टचत्वारिंशत्सूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येन सम्यक्त्वमार्गणायां गुणस्थानिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनु द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां अन्तरकथनत्वेन ''खइय'' इत्यादिसूत्रद्वादशकं। ततः परं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनामन्तरनिरूपणत्वेन ''वेदग'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां अंतर कथनत्वेन ''उवसम'' इत्यादिसूत्राणि एकोनविंशतिः। तदनंतरं पंचमस्थले सासादनादित्रिकानामन्तर-निरूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

अधुना सम्यक्त्वमार्गणायां सामान्येन सम्यग्दृष्टीनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३३१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३३२।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।३३३।।

अथ सम्यक्त्व मार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में अड़तालीस सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्व मार्गणा नामका बारहवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से सम्यक्त्वमार्गणा में गुणस्थानों के निरूपण की मुख्यता वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का अंतर कथन करने वाले ''खइय'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में वेदक सम्यग्दृष्टियों का अंतर निरूपण करने वाले ''वेदग'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में उपशम सम्यग्दृष्टियों का अंतर बतलाने वाले ''उवसम'' इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। तदनंतर पंचमस्थल में सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का अंतर निरूपण करने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। अधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम सम्यक्त्व मार्गणा में सामान्य से सम्यग्दृष्टि जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३३१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३३२।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम पूर्वकोटी है।।३३३।।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणि-भंगो।।३३४।।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं।।३३५।।

सजोगिकेवली ओघं।।३३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सम्यक्त्वमार्गणायां एकजीवापेक्षया — एकः सम्यग्दृष्टिः असंयतः संयतासंयतगुणस्थानं गत्वा सर्वजघन्येन कालेन पुनः असंयतसम्यग्दृष्टिः जातः। लब्धमंतरं। उत्कर्षेण — एकः मिथ्यादृष्टिः अष्टाविंशतिसत्ताकः पंचेन्द्रियतिर्यक्संज्ञिसम्मूर्च्छिमपर्याप्तेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) संयमासंयमगुणस्थानं गत्वान्तरितः पूर्वकोटिप्रमाणं जीवित्वा मृतो देवो जातः। एवं चतुरन्तर्मुहूर्तैरूनं पूर्वकोटिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं कथितं।**

संयतासंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तान्तरं, उत्कर्षेण सातिरेकं षट्षष्टिसागरप्रमाणमन्तरं। प्रमत्ताप्रमत्तयोः नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तान्तरं, उत्कर्षेण सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमन्तरं। चतुर्णामुपशामकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येन ? एकसमयं, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वं। एकजीवं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण सातिरेकं षट्षष्टिसागरप्रमाणमन्तरम्। एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टीनामन्तरप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियों का अंतर अवधिज्ञानियों के समान है।।३३४।।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियों का अंतर गुणस्थान के समान है।।३३५।।

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवली का अंतर गुणस्थान के समान है।।३३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यक्त्वमार्गणा में एक जीव की अपेक्षा कथन करते हैं —

एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयतासंयत गुणस्थान को प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल से पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार उनका अंतर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट की अपेक्षा — मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४)। पुनः संयमासंयम गुणस्थान में जाकर अंतर को प्राप्त होकर पूर्व कोटी वर्ष तक जीवित रहकर मरा और देव हुआ। इस प्रकार चार अंतर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर कहा है।

संयतासंयत जीवों का नाना जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त काल है और उत्कृष्ट की अपेक्षा कुछ अधिक छ्यासठ सागर प्रमाण अंतर है। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत मुनियों का नाना जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अंतर्मुहूर्त काल का अंतर होता है। उत्कृष्ट से कुछ अधिक तेंतीस सागर प्रमाण अंतर है। चारों उपशामकों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय है, उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्व है। एक जीव की अपेक्षा उन उपशामकों का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्तकालप्रमाण है और उत्कृष्ट अंतर कुछ अधिक छ्यासठ सागर प्रमाण है।

इस तरह से प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टियों का अंतर प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३३७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३३८।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।३३९।।

संजदासंजदपमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३४०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३४१।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**क्षायिकसम्यग्दृष्टेरन्तरमुत्कर्षेण कथ्यते—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पद्य गर्भाद्यष्टवार्षिको जातः। दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जातः (१) अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा (२) संयमासंयमं संयमं वा प्रतिपद्य पूर्वकोटिकालं गमयित्वा कालं कृत्वा देवो जातः। अष्टवर्षैः द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां**

अब क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों में असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अंतर बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३३७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३३८।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है।।३३९।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों का अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है, निरंतर है।।३४०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है।।३४१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर कुछ अधिक तेंतीस सागरोपम है।।३४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— क्षायिक सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—

कोई एक जीव पूर्वकोटि की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर गर्भ से लेकर आठ वर्ष का हुआ और वहाँ दर्शन मोहनीय का क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया (१) वहां अंतर्मुहूर्त रह करके (२) संयमासंयम या संयम को प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष बिताकर मरण को प्राप्त होकर देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष

च ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणमन्तरं।

संयतासंयतस्य उत्कर्षेण—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षाणामुपरि अंतर्मुहूर्तेन (१) क्षायिकं सम्यक्त्वं प्रतिष्ठाप्य (२) विश्रम्य (३) संयमासंयमं प्रतिपद्य (४) संयमं प्रतिपन्नः। पूर्वकोटिकालं गमयित्वा मृतः समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। स्तोकावशेषे जीविते संयमासंयमं गतः (५)। ततः अप्रमत्तादिनवान्तर्मुहूर्तैः सिद्धो जातः। अष्टवर्षैः चतुर्दशान्तर्मुहूर्तैश्च न्यूनं द्वाभ्यां पूर्वकोटीभ्यां सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं।

प्रमत्तस्य कथ्यते-एकः प्रमत्तः, अप्रमत्तः (१) अपूर्वः (२) अनिवृत्तिः (३) सूक्ष्मः (४) उपशान्तः (५) पुनरपि सूक्ष्मः (६) अनिवृत्तिः (७) अपूर्वः (८) अप्रमत्तः (९) कालक्षयेण कालं गतः। समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्केषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते प्रमत्तः जातः। लब्धमन्तरं (१)। ततोऽप्रमत्तः (२) उपरि षडन्तर्मुहूर्ताः। अन्तरस्य बाह्या अष्टान्तर्मुहूर्ताः, अन्तरस्य अभ्यन्तरिमा अपि नव। नवसु अष्टौ अपनीय शेषैकान्तर्मुहूर्तेनाधिकपूर्वकोट्या सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं।

एवमप्रमत्तस्यान्तरं कथ्यते—विशेषेण तु सार्धपंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोट्या सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागर-प्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।

और दो अंतर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी वर्ष प्रमाण असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर है।

संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—एक जीव पूर्वकोटि वर्ष की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ को आदि लेकर आठ वर्षों के पश्चात् अंतर्मुहूर्त से (१) क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त कर (२) विश्राम लेकर (३) संयमासंयम को प्राप्तकर (४) संयम को प्राप्त हुआ। वहाँ संयमसहित पूर्वकोटीकाल बिताकर मरा और एक समय कम तेंतीस सागरोपम की आयुस्थिति प्रमाण वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। जीवन के अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (५)। इसके पश्चात् अप्रमत्तादि गुणस्थानसंबंधी नौ अंतर्मुहूर्तों से सिद्ध हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अंतर्मुहूर्तों से कम दो पूर्वकोटियों से कुछ अधिक तेंतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर होता है।

अब क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—कोई एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्पराय (४) उपशांतकषाय (५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपूर्वकरण (८) अप्रमत्तसंयत (९) होकर गुणस्थान और आयु के कालक्षय से मरण को प्राप्त होकर एक समय कम तेंतीस सागरोपम की आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हो गया। पुनः वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहां जीवन के अंतर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अंतर प्राप्त हो गया। (१)। पश्चात् अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इनमें ऊपर के छह अंतर्मुहूर्त और मिलाए। अंतर के बाहरी आठ अंतर्मुहूर्त हैं और अंतर के भीतरी नौ अंतर्मुहूर्त हैं, इसलिए नौ में से आठ के घटा देने पर शेष बचे हुए एक अंतर्मुहूर्त से अधिक पूर्वकोटी से कुछ अधिक तेंतीस सागरोपम क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर होता है।

इसी प्रकार अप्रमत्तसंयत का अंतर कहते हैं—इसमें विशेष बात यह है कि साढ़े पाँच अंतर्मुहूर्त से कम पूर्वकोटि से कुछ अधिक तेंतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट अंतर होता है।

संप्रति उपशामक-क्षपक-अयोगि-सयोगिनां अन्तरकथनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३४३।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।३४४।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३४५।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३४६।।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।।३४७।।

सजोगिकेवली ओघं।।३४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णामुपशामकानां एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवर्षैः अन्तर्मुहूर्ताधिकेन (१) अप्रमत्तः जातः (२)। प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तसहस्रं कृत्वा तस्मिंश्चैव क्षायिकं सम्यक्त्वं प्रतिष्ठाप्य (३) उपशमश्रेणिप्रायोग्यविशुद्ध्या विशुद्धः (४) अपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) उपशान्तः (८) पुनः सूक्ष्मः (९) अनिवृत्तिः (१०) अपूर्वः जातः (११) अन्तरितः। पूर्वकोटिं संयमं अनुपाल्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु**

अब उपशामक-क्षपक-अयोगिकेवली और सयोगिकेवलियों का अंतर कथन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर होता है।।३४३।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।३४४।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३४५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेंतीस सागरोपम है।।३४६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३४७।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि सयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक जीव की अपेक्षा चारों उपशामकों का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—कोई एक जीव पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ आठ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त (१) के बाद अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके उसी काल में क्षायिकसम्यक्त्व को भी प्रस्थापनकर (३) उपशमश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (४) अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकषाय (८) होकर, पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (९)

मनुष्येषु उत्पन्नः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते अपूर्वो जातः (१२)। लब्धमंतरं। ततोऽनिवृत्तिः (१३) सूक्ष्मः (१४) उपशान्तः (१५) पुनः सूक्ष्मः (१६) अनिवृत्तिः (१७) अपूर्वो जातः (१८)। उपरि अप्रमत्तादिनवान्तर्मुहूर्तैः सिद्धिं गतः। एवमष्टवर्षैः सप्तविंशति-अन्तर्मुहूर्तैः ऊनं द्वाभ्यां पूर्वकोटीभ्यां सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागर-प्रमाणमुत्कृष्टान्तरं। एवमेव त्रयाणामुपशामकानां। विशेषेण तु पंचविंशति-त्रयोविंशति-एकविंशतिमुहूर्ता ऊना कर्तव्याः।

चतुर्णां क्षपकाणां गुणस्थानवदन्तरं। अयोगिसयोगिकेवलिनोरपि पूर्ववत् अन्तरं ज्ञातव्यं, किं चैतेषां क्षायिकसम्यक्त्वमेवास्ति न चान्यद्।

एवं द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां अन्तरकथनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अधुना वेदकसम्यग्दृष्टीनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरनिरूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो।।३४९।।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३५०।।

अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण हुआ (११) और अन्तर को प्राप्त हो गया। पुनः वहाँ पूर्वकोटि तक संयम को परिपालन कर तेंतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। जीवन के अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अपूर्वकरण हुआ (१२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। पुनः अनिवृत्तिकरण (१३) सूक्ष्मसाम्पराय (१४) उपशान्तकषाय (१५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१६) अनिवृत्तिकरण (१७) और अपूर्वकरण (१८) हुआ। पश्चात् ऊपर के अप्रमत्तादि गुणस्थानसंबंधी नौ अन्तर्मुहूर्तों से सिद्धि को प्राप्त हुआ। इस प्रकार आठ वर्षों से और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तों से कम दो पूर्वकोटि प्रमाण काल से साधिक तेंतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणसंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार शेष तीन उपशामकों का भी अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामक के पच्चीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक के तेंतीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषाय के इक्कीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

चारों क्षपक श्रेणी में आरोहण करने वाले महामुनियों का अन्तर गुणस्थान के समान है। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली का अन्तर भी पूर्ववत् जानना चाहिए, क्योंकि उनके क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है, कोई दूसरा सम्यक्त्व उनके नहीं होता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर बतलाने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर सम्यग्दृष्टिसामान्य के समान है।।३४९।।

वेदकसम्यग्दृष्टियों में संयतासंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३५०।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३५१।।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि।।३५२।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३५३।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३५४।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सम्यक्त्वमार्गणायां ओघे यथा असंयतसम्यग्दृष्टीनामन्तरं प्ररूपितं तथैवात्र प्ररूपयितव्यं। अस्यायमर्थः—''क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना[१]।''**

संयतासंयतानां एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः मिथ्यादृष्टिः वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत् प्रतिपन्नः। अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा संयमं प्रतिपन्नोऽन्तरितः। यावत्कालं संयमासंयमेन संयमेन च स्थितः तावन्मात्रेण ऊनं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः मनुष्येषु उत्पन्नः। तत्र यावत्कालं असंयमेन

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३५१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागरोपम है।।३५२।।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३५३।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३५४।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेंतीस सागरोपम है।।३५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यक्त्वमार्गणा में गुणस्थान में जिस प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टियों का अन्तर प्ररूपित किया गया है, उसी प्रकार यहाँ प्ररूपित करना चाहिए। इसका यह अर्थ है कि क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि के नाना जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अंतर कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है।

अब संयतासंयतों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ। अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः संयम को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हो गया। पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयम के साथ रहा था, उतने ही काल से कम तेंतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर जितने काल असंयम के अथवा संयम के साथ रहा है और स्वर्ग से मनुष्यगति में आकर जितने वर्ष पृथक्त्वादि काल असंयम अथवा संयम के साथ रहेगा उन दोनों ही कालों से कम तेंतीस

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. १, सूत्र ८।

संयमेन वा तिष्ठति, पुनः स्वर्गात् मनुष्यगतिमागत्य यावत्वर्षपृथक्त्वादिकालं स्थास्यति, एताभ्यां द्वाभ्यामपि कालाभ्यां ऊनं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः मनुष्यो जातः। द्विअन्तर्मुहूर्तावशेषे वेदकसम्यक्त्वकाले परिणामप्रत्ययेन संयमासंयमं प्रतिपन्नः। लब्धमंतरं।

ततोऽन्तर्मुहूर्तेण दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जातः। आदेरेकः, अंतस्य द्वौ, एभिः त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनानि षट्षष्टिसागरोपमाणि संयतासंयतोत्कृष्टान्तरं भवति।

प्रमत्तसंयतस्यापि—एकः प्रमत्तः अप्रमत्तो भूत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषूत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषूत्पन्नः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे प्रमत्तो जातः। लब्धमंतरं। क्षायिकं सम्यक्त्वं गृहीत्वा क्षपकश्रेणिप्रायोग्याप्रमत्तो भूत्वा क्षपकश्रेणिमारूढः अपूर्वादिषडन्तर्मुहूर्तेषु निर्वृत्तः। अन्तरस्य आदिममेकमन्तर्मुहूर्तं अन्तरबाह्येषु अष्टान्तर्मुहूर्तेषु शोधिते अवशेषाः सप्तान्तर्मुहूर्ताः। एतैः सप्तान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोट्या सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवमप्रमत्तस्यापि-विशेषेण तु अष्टान्तर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोट्याः सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनामन्तरनिरूपणत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

अधुना उपशमसम्यग्दृष्टीनामसंयताद्यप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय द्वादश-सूत्राण्यवतार्यन्ते—

सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर मनुष्य हुआ। इस प्रकार वेदकसम्यक्त्व के काल में दो अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर परिणामों के निमित्त से संयमासंयम को प्राप्त हुआ। तब उनका अन्तर प्राप्त हुआ।

पुनः अन्तर्मुहूर्त से दर्शनमोहनीय का क्षपणकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार आदि का एक और अन्त के दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम छ्यासठ सागरोपम वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयत मुनियों का भी अन्तर कहते हैं—

कोई एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत होकर अन्तर्मुहूर्त स्थित रहकर एक समय कम तेंतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। संसार के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षपक श्रेणी के योग्य अप्रमत्त होकर क्षपक श्रेणी पर चढ़ा पुनः अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तों में निर्वाण को प्राप्त हुआ। अन्तर के आदि के एक अन्तर्मुहूर्त को अन्तर के बाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तों में कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इन सात अन्तमुर्हूर्तों से कम पूर्वकोटी से कुछ अधिक तेंतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इसी प्रकार अप्रमत्तसंयत का भी अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि आठ अन्तर्मुहूर्त से कम पूर्वकोटि से कुछ अधिक तेंतीस सागरप्रमाण उनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों का अन्तर निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयत से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं—

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३५६।।

उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि।।३५७।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३५८।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३५९।।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३६०।।

उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि।।३६१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३६२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३६३।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३६४।।

उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि।।३६५।।

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है।।३५६।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन (अहोरात्र) है।।३५७।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३५८।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३५९।।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है।।३६०।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन है।।३६१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३६२।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३६३।।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है।।३६४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है।।३६५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३६६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपशमसम्यग्दृष्टीनां असंयतसम्यग्दृष्टीनां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं, निरन्तरं उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानजीवानाभावात्। उत्कर्षेण सप्तरात्रिंदिवविरहनियमः स्वभावादेव।**

एकजीवापेक्षया—एकः उपशमश्रेण्याः अवतीर्य असंयतो जातः। अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः, अंतर्मुहूर्तेन पुनः असंयतो जातः। लब्धं जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—एकः श्रेण्याः अवतीर्य असंयतो जातः। तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः। ततोऽप्रमत्तः प्रमत्तो भूत्वासंयतो जातः। लब्धमुत्कृष्टान्तरं।

संयतासंयतस्य एकजीवापेक्षया—एकः उपशमश्रेण्याः अवतीर्य संयमासंयमं प्रतिपन्नः। अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वासंयतो जातः। पुनरपि अन्तर्मुहूर्तेण संयमासंयमं प्रतिपन्नः। लब्धं जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—एकः श्रेण्याः अवतीर्य संयतासंयतो जातः। अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अप्रमत्तः प्रमत्तः असंयतश्च भूत्वा संयतासंयतो जातः। लब्धमुत्कृष्टान्तरं।

प्रमत्ताप्रमत्तयोः एकजीवापेक्षया—एकः उपशमश्रेण्याः अवतीर्य प्रमत्तो भूत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अप्रमत्तो जातः। पुनरपि प्रमत्तत्वं गतः। लब्धमन्तरं। एवं अप्रमत्तस्यापि जघन्यान्तरं वक्तव्यं।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३६६।।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय का अन्तर पाया जाता है, क्योंकि निरंतर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीवों का अभाव है। उत्कृष्ट से सात रात-दिनों के अन्तर का नियम स्वभाव से ही पाया जाता है।

एक जीव की अपेक्षा—कोई एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ और वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वही जीव अन्तर्मुहूर्त से पुनः असंयत हो गया। इस प्रकार जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट से कोई एक संयत उपशमश्रेणी से नीचे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

संयतासंयत के एक जीव की अपेक्षा—कोई एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ और वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। फिर भी अन्तर्मुहूर्त में संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

उत्कृष्ट से—कोई एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर संयतासंयत हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत हो गया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती का एक जीव की अपेक्षा—एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर प्रमत्तसंयत होकर अन्तर्मुहूर्त रहकर अप्रमत्तसंयत हुआ। फिर भी प्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार से उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत का भी जघन्य अन्तर कहना चाहिए।

उत्कर्षेण—एकः उपशमश्रेण्याः अवतीर्य प्रमत्तो भूत्वा पुनः संयतासंयतः असंयतोऽप्रमत्तश्च भूत्वा प्रमत्तो जातः। लब्धमंतरं। अप्रमत्तस्यापि—एकः श्रेण्याः अवतीर्य अप्रमत्तो जातः। पुनः प्रमत्तः असंयतः संयतासंयतश्च भूत्वा भूयः अप्रमत्तो जातः। लब्धमुत्कृष्टान्तरं।

संप्रति चतुर्णामुपशामकानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३६८।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।३६९।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३७०।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३७१।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।।३७२।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।३७३।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३७४।।

उत्कृष्ट की अपेक्षा—कोई एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—कोई एक संयत उपशमश्रेणी से उतरकर अप्रमत्तसंयत हुआ। पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर से अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

अब चार उपशामकों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन तीनों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।३६८।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।३६९।।

उक्त तीनों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३७०।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३७१।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एकसमय है।।३७२।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।।३७३।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रयाणामुपशामकानां एकजीवापेक्षया—उपशमश्रेणिं आरोह्य आदिं कृत्वा पुनः उपरि गत्वा अवतीर्य विवक्षितगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य अन्तर्मुहूर्तान्तरं भवति। उत्कर्षेण पूर्ववदेव—केवलं तु द्वितीयवारं चटमानस्य जघन्यान्तरं, प्रथमवारं चटित्वा अवतीर्यमाणस्य उत्कृष्टान्तरं वक्तव्यं।**

उपशान्तकषायाणां एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।

अधस्तनगुणस्थानेषु अंतरं प्रापय्य सर्व जघन्येन कालेन पुनः उपशान्तकषायभावं गतस्य जघन्यान्तरं किन्नोच्यते ?

न, अधोऽवतीर्यमाणस्य वेदकसम्यक्त्वं अप्राप्य पूर्वोपशमसम्यक्त्वेन उपशमश्रेणिसमारोहणे संभवाभावात्।

तदपि कुतोऽवगम्यते ?

उपशमश्रेणिसमारोहणप्रायोग्यकालात् शेषोपशमसम्यक्त्वकालस्य स्तोकत्वोपलंभात्।

तदपि कुतो ज्ञायते ?

उपशान्तकषायैकजीवस्य अन्तराभावान्यथानुपपत्तेः। अनेन ज्ञायते यत् उपशमश्रेणिसमारोहणकालात् शेषोपशमसम्यक्त्वकालः अल्पोऽस्ति।

सम्यक्त्वमार्गणान्तरं पठित्वा किं कर्तव्यम् ?

सम्यग्दर्शनस्योत्पत्तेः अन्तरंगबहिरंगकारणानि चिंतयित्वा तस्य सम्यग्दर्शनस्य भेदप्रभेदाः चिन्तनीयाः। तद्यथा—

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले तीन गुणस्थानवर्तियों का एक जीव की अपेक्षा अंतर कहते हैं—उपशमश्रेणी पर चढ़कर आदि करके फिर से ऊपर जाकर और वहाँ से उतरकर विवक्षित गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव में अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है। इस उत्कृष्ट अन्तर की प्ररूपणा भी जघन्य अन्तर की प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। किन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणी पर द्वितीय बार चढ़ने वाले जीव के जघन्य अन्तर होता है और प्रथम बार चढ़कर उतरे हुए जीव के उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए। उपशांत कषाय गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं हैं।

शंका—नीचे के गुणस्थानों में अन्तर को प्राप्त कराकर सर्वजघन्यकाल से पुनः उपशान्तकषाय को प्राप्त हुए जीव के जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमश्रेणी से नीचे उतरे हुए जीव के वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुए बिना पहले वाले उपशमसम्यक्त्व के द्वारा पुनः उपशमश्रेणी पर समारोहण करने की संभावना का अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणी के समारोहण योग्य काल से शेष उपशमसम्यक्त्व का काल अल्प पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ के एक जीव के अन्तर का अभाव अन्यथा बन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशमश्रेणी के समारोहणकाल से शेष उपशमसम्यक्त्व का काल अल्प है।

प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणा का अन्तर पढ़कर हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के अंतरंग-बहिरंग कारणों का चिंतवन करके उस सम्यग्दर्शन के भेद-प्रभेदों का चिंतन करना चाहिए। वह इस प्रकार है—

सामान्येन श्रद्धानापेक्षया वा सम्यग्दर्शनमेकमेव। ''तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।।२।।''उत्पत्त्यपेक्षया ''तन्निसर्गादधिगमाद्वा[१]''।।३।। एतन्निसर्गसम्यग्दर्शनं गुरूपदेशाभावात् गुरोरल्योपदेशमात्रादपि उत्पद्यते।

उक्तं च—''नैसर्गिकमपि सम्यग्दर्शनं गुरोरक्लेशकारित्वात् स्वाभाविकमुच्यते न तु गुरूपदेशं विना प्रायेण तदपि जायते[२]। त्रिविधमपि—क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभेदात्। दशधा अपि गीयते—

आज्ञामार्गसमुद्भव-मुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च[३]।।११।।

आज्ञासमुद्भवः मार्गसमुद्भवः उपदेशसमुद्भवः सूत्रसमुद्भवः बीजसमुद्भवः संक्षेपसमुद्भवः विस्तारसमुद्भवः अर्थसमुद्भवः अवगाढः परमावगाढश्चेति।

दर्शनमोहोपशमनेन ग्रन्थश्रवणमन्तरेण केवलं वीतरागसर्वज्ञदेवानां आज्ञयैव यत्तत्त्वार्थश्रद्धानमुत्पद्यते तदाज्ञासम्यक्त्वमुच्यते.....इत्यादिः अंगांगबाह्यसर्वश्रुतावगाहनेन यत्सम्यग्दर्शनं तत् अवगाढं कथ्यते।

केवलज्ञानेन सर्वपदार्थेषु या रुचिः तत् परमावगाढं सम्यग्दर्शनं गीयते। अवगाढ़ सम्यक्त्वं श्रुतकेवलिनां परमावगाढं केवलिभगवतां भवति।

अथवा ''सरागवीतरागविषयभेदाद् द्विविधं—प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्त्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमं। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्[४]।''

सामान्य से अथवा श्रद्धान की अपेक्षा सम्यग्दर्शन एक ही है। ''तत्त्व एवं पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।।२।। उत्पत्ति की अपेक्षा उसके दो भेद हैं—निसर्गज और अधिगमज।।३।। इस निसर्गज सम्यग्दर्शन में गुरु उपदेश का अभाव पाया जाता है अर्थात् गुरु के अल्प उपदेश मात्र से भी उत्पन्न हो जाता है।

कहा भी है—निसर्गज सम्यग्दर्शन में भी प्रायः गुरु का उपदेश अपेक्षित रहता है, गुरु उपदेश के बिना नहीं होता है परन्तु उसे स्वाभाविक इसलिए कहते हैं कि इसके लिए गुरु को विशेष क्लेश—प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, सहज ही शिष्य को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है। वह सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का भी है—

क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक के भेद से उस सम्यग्दर्शन के तीन भेद होते हैं।

दश प्रकार का भी है—

गाथार्थ—आज्ञा समुद्भव, मार्गसमुद्भव, उपदेशसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, बीज समुद्भव, संक्षेपसमुद्भव, विस्तारसमुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ तथा परमावगाढ ये सम्यग्दर्शन के दश भेद आत्मानुशासन ग्रंथ में कहे गये हैं।।११।।

दर्शनमोहनीय के उपशम से ग्रंथश्रवण के बिना केवल वीतराग सर्वज्ञदेव की आज्ञा से जो तत्त्वार्थ का श्रद्धान उत्पन्न होता है वह आज्ञासम्यक्त्व कहलाता है....इत्यादि। आचारादि द्वादशांग और अंगबाह्यरूप सर्वश्रुत को पढ़कर जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है वह अवगाढ सम्यग्दर्शन है तथा केवलज्ञान से प्रकाशित जीवादि पदार्थों के विषय में जो आत्मनिर्मलता होती है वह परमावगाढ़ सम्यक्त्व है। इनमें से अवगाढ़ सम्यग्दर्शन श्रुतकेवलियों के एवं परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन केवलियों के होता है।

अथवा ''सराग और वीतराग के विषय भेद से सम्यक्त्व के दो प्रकार भी हैं—प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुणों की अभिव्यक्तिलक्षणरूप प्रथम सराग सम्यग्दर्शन है तथा आत्मशुद्धिरूप वीतराग सम्यग्दर्शन है।''

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. १। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ३। ३. आत्मानुशासन। ४. सर्वार्थसिद्धि अ. १, सूत्र २।

''सप्तानां कर्मप्रकृतीनां आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्मविशुद्धिमात्रमितरद् वीतरागसम्यक्त्वमुच्यते। अत्र पूर्वं साधनं भवति, उत्तरं साधनं साध्यं च[१]।''

तात्पर्यमेतत्—मयि नैसर्गिक सम्यग्दर्शनमनुमीयते तदपि वेदकसम्यक्त्वमेवाधुना दुःषमकालेऽस्ति न तु क्षायिकं, न चौपशमिकमिति तस्यान्तर्मुहूर्तकालत्वात्। अतः आज्ञासम्यक्त्वबलेनैव मया निरन्तरं परमावगाढं सम्यक्त्वमेव प्रार्थ्यते। ततश्च आ मुक्तेः इदं सम्यग्दर्शनं मां न मुंचेत्, अस्यान्तरं न भवेत् कदाचिदपि।

उक्तं च—

यः सारः सर्वसारेषु, स सम्यग्दर्शनं मतम्।
आ मुक्तेर्न हि मां मुञ्चेत्, वृत्तं च विमलीक्रियात्[२]।।

एवं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरकथनमुख्यत्वेन एकोनविंशतिसूत्राणि गतानि।

संप्रति सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमयं।।३७५।।

''अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार चारित्रमोहनीय की तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति ये तीन दर्शनमोहनीय की, इस प्रकार सात प्रकृतियों का सत्व नष्ट हो जाने पर जो आत्मविशुद्धि होती है, वह वीतराग सम्यग्दर्शन है। यहाँ सराग सम्यग्दर्शन तो साधन ही है और वीतराग सम्यग्दर्शन साधन भी है और साध्य भी है।

तात्पर्य यह है कि मुझमें नैसर्गिक सम्यग्दर्शन है ऐसा अनुमान किया जाता है, फिर भी आज इस दुःषमकाल में वेदकसम्यक्त्व ही होता है, क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है और औपशमिक सम्यग्दर्शन भी नहीं है, क्योंकि उसका काल अन्तर्मुहूर्त है। अतः आज्ञासम्यक्त्व के बल से ही निरंतर परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन प्राप्त करने हेतु मेरी प्रार्थना है। उसके पश्चात् मोक्ष प्राप्त होने तक मेरा सम्यग्दर्शन छूटने न पावे तथा कदाचित् भी सम्यग्दर्शन का अन्तर न पड़ने पाए, यही भावना है।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—सम्पूर्ण सारों में भी जो ''सार'' है वह सम्यग्दर्शन ही है। मोक्ष होने तक वह मुझे न छोड़े या मुझसे न छूटे और मेरे चारित्र को भी निर्मल करे।।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टियों में नाना जीव और एक जीव का जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर बतलाने वाले उन्नीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्तियों का अंतर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय अन्तर है।।३७५।।

---

१. प्रवचननिर्देशिका पृ. ३५। २. तत्त्वार्थवार्तिक अ. १, सूत्र २ की टीका।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।३७६।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३७७।।

मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया वा नास्त्यन्तरं। नानाजीवप्रवाहस्य व्युच्छेदाभावात्, गुणस्थानान्तरसंक्रान्तेरभावाच्च। किं च त्रिलोकेषु त्रिकालेषु च तिलेषु तैलवत् अनन्ताः सूक्ष्माः जीवा भृताः सन्ति ते सर्वे मिथ्यादृष्टयः एव।**

अतो मिथ्यात्वात् सदैव भेत्तव्यं भवद्भिः।

उक्तं च—

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत् तनुभृताम्[१]।।

एवं पंचमस्थले सम्यग्मिथ्यात्व-सासादन-मिथ्यात्वगुणस्थानवर्तिनां अन्तरकथनमुख्यत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।३७६।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३७७।।

मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है। मिथ्यादृष्टियों में नाना जीवों की अपेक्षा अथवा एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। नाना जीवों के प्रवाह के विच्छेद का अभाव पाया जाता है तथा गुणस्थानों में संक्रमण का भी अभाव रहता है, क्योंकि तीनों लोकों में और तीनों कालों में तिलों में तेल के समान जो अनंत सूक्ष्म जीव भरे हुए हैं वे सभी मिथ्यादृष्टि ही हैं। अतः हम सभी को मिथ्यात्व से सदैव डरना चाहिए। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा भी है—

श्लोकार्थ—तीनों कालों में और तीनों लोकों में प्राणियों के लिए सम्यक्त्व के समान कोई कल्याणकारी वस्तु नहीं है एवं मिथ्यात्व के समान कोई दूसरी अहितकारी वस्तु नहीं है।

इस प्रकार पंचम स्थल में सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व इन तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक ३४।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचसूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिनां गुणस्थानापेक्षया अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''सण्णिया'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिनां अन्तरकथनत्वेन ''असण्णीणं'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति पातनिका।

अधुना संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवानामन्तरकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।।३७९।।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसवेदभंगो।।३८०।।

चदुण्हं खवाणमोघं।।३८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संज्ञिनां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवं प्रतीत्य नास्त्यन्तरं। एकजीवं आश्रित्य जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण द्वे षट्षष्टी सागरोपमे देशोने। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण पल्योपमस्यासंख्यातभागः। एकजीवापेक्षया जघन्येन पल्योपमस्यासंख्येयभागः अन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं।**

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा संज्ञी मार्गणा नामका तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''सण्णिया'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''असण्णीणं'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञी मार्गणा में संज्ञी जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणा के अनुवाद से संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टियों का अंतर गुणस्थान के समान है।।३७९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ तक संज्ञी जीवों का अन्तर पुरुषवेदियों के समान है।।३८०।।

संज्ञी चारों क्षपकों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों का नाना जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का नाना जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट से सागरोपमशतपृथक्त्वकाल की स्थिति है। असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां उपशामकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् कथयितव्यं।

एवं प्रथमस्थले संज्ञिनां अन्तरकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति असंज्ञिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३८२।।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंज्ञिजीवानां प्रवाहस्य व्युच्छेदाभावान्नास्त्यन्तरं। एकजीवापेक्षयापि गुणस्थानसंक्रान्तेरभावात् नास्त्यन्तरं। इमे एकेन्द्रियादारभ्य असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः मिथ्यात्वगुणस्थाने एव निवसन्तीति ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

तक के जीवों का नाना जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है। चारों उपशामकों का अन्तर नाना जीव की अपेक्षा सामान्यवत् है और एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से सागरोपम शत पृथक्त्व है। चारों क्षपकों का अन्तर सामान्यवत् कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३८२।।

असंज्ञी जीवों का एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंज्ञी जीवों के प्रवाह का व्युच्छेद नहीं होने से कोई अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा भी गुणस्थानों के संक्रमण का अभाव होने से अन्तर नहीं है। ये एकेन्द्रिय से आरंभ होकर असंज्ञीपंचेन्द्रियपर्यन्त मिथ्यात्व गुणस्थान में ही निवास करते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नामका तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन चतुर्दशसूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारमार्गणायां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले असंयताद्यप्रमत्तान्तानां अंतरकथनेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले उपशामकानां क्षपकाणां सयोगिनां चान्तरकथनमुख्यत्वेन ''चदुण्हं'' इत्यादिपंचसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अनाहाराणां अन्तरप्रतिपादनत्वेन ''अणाहारा'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति आहारमार्गणायां मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानवर्तिनां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।।३८४।।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।।३८५।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।।३८६।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नामका चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारमार्गणा में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। आगे द्वितीय स्थल में असंयत से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीवों का अंतर कथन करने हेतु ''असंजद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में उपशामक, क्षपक और सयोगिकेवली भगवन्तों का अन्तर कथन करने वाले ''चदुण्हं'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में अनाहारक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''अणाहारा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारमार्गणा में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का नाना जीव की अपेक्षा एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारक जीवों में मिथ्यादृष्टियों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३८४।।

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर गुणस्थान के समान है।।३८५।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अन्तर्मुहूर्त है।।३८६।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।३८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमः। त्रिगुणस्थानवर्तिनामाद्यानां एकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः सासादनकाले द्वौ समयौ स्तः इति कालं गतः। एकविग्रहं कृत्वा द्वितीयसमये आहारको भूत्वा तृतीयसमये मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाणं कालं परिभ्रम्यान्तर्मुहूर्तावशेषे आहारकाले उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः। एकसमयावशेषे आहारकाले सासादनं गत्वा विग्रहं गतः। द्वाभ्यां समयाभ्यामूनः आहारोत्कृष्टकालः सासादनोत्कृष्टान्तरं।

एकः मिथ्यादृष्टि आहारकः अष्टाविंशतिसत्कर्मी विग्रहं कृत्वा देवेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (४)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। अंगुलस्यासंख्येयभागं परिभ्रम्य सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः (५)। लब्धमंतरं। ततः सम्यक्त्वेन वा मिथ्यात्वेन वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा (६) विग्रहं गतः। षडन्तर्मुहूर्तैः ऊनः आहारकालः सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवस्योत्कृष्टान्तरं भवति।

एवं प्रथमस्थले आहारिणां मिथ्यादृष्ट्यादीनां अन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति असंयताद्यप्रमत्तान्तानां नानैकजीवजघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-संख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकाल है।।३८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है। प्रारंभ के तीन गुणस्थानवर्ती जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—

एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थान के काल में दो समय अवशिष्ट रहने पर मरण को प्राप्त हुआ। एक विग्रह (मोडा) करके द्वितीय समय में आहारक होकर और तीसरे समय में मिथ्यात्व गुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ। असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी काल प्रमाण और उत्सर्पिणी काल प्रमाण तक परिभ्रमणकर आहारककाल में अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। पुनः आहारककाल के एक समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादन में जाकर विग्रह को प्राप्त हुआ। इस प्रकार दो समयों से कम आहारक का उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि आहारक जीव विग्रह करके देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (४) और मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हो गया। पुनः अंगुल के असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। उसके बाद सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व के साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर (६) विग्रहगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम आहारकाल ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयत से लेकर अप्रमत्त तक जीवों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३८८।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३८९।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।३९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेषां नास्त्यन्तरं नानाजीवापेक्षया। एकजीवापेक्षया गुणस्थानांतरं गत्वा सर्वजघन्यकालेन पुनः अर्पितगुणस्थानप्रतिपन्नस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण—असंयतसम्यग्दृष्टेः अन्तरं कथ्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः विग्रहं कृत्वा देवेषूत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिःपर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः अंगुलस्यासंख्येयभागं परिभ्रम्यान्ते उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (५)। लब्धमन्तरं। उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषे सासादनं गत्वा विग्रहं गतः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनः आहारकालः उत्कृष्टान्तरं।**

संयतासंयतस्योच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः विग्रहं कृत्वा संज्ञिसम्मूर्च्छिमेषूत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तिं गतः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च समकं प्रतिपन्नः (४)। मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः अंगुलस्यासंख्येयभागं परिभ्रम्यान्ते प्रथमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च समकं प्रतिपन्नः (५)। लब्धमन्तरं। उपशमसम्यत्वकाले षडावलिकावशेषे सासादनं गत्वा विग्रहं गतः। पंचान्तर्मुहूर्तैः ऊनः आहारकालः उत्कृष्टान्तरं।

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है।।३८८।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३८९।।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकाल है।।३९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीव की अपेक्षा इनका कोई अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान से अन्य गुणस्थान में जाकर और सर्वजघन्य काल से लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव विग्रह करके देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४)। पीछे मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाणकाल तक परिभ्रमण करके अन्त में उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो गया (५)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हो गया। पुनः उपशमसम्यक्त्व के

प्रमत्तस्य कथ्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः विग्रहं कृत्वा मनुष्येषूत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षैः अप्रमत्तः (१) प्रमत्तो भूत्वा (२) मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। अंगुलस्यासंख्येयभागं परिभ्रम्यान्ते प्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं (३)। कालं कृत्वा विग्रहं गतः। त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः अष्टवर्षैश्च ऊनः आहारकालः उत्कृष्टान्तरं। अप्रमत्तस्यापि एवं चैव, केवलं तु—अप्रमत्तः (१) प्रमत्तो भूत्वान्तरितः स्वकस्थितिं परिभ्रम्य अप्रमत्तो भूत्वा (२) पुनः प्रमत्तो जातः (३)। कालं कृत्वा विग्रहं गतः। त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनः आहारकालः उत्कृष्टान्तरं।

एवं द्वितीयस्थले असंयातद्यप्रमत्तपर्यन्तानां आहारिणां अन्तरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति उपशामक-क्षपक-सयोगिनां आहारकाणां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

काल में छह आवली प्रमाण काल अवशिष्ट रह जाने पर सासादन में जाकर विग्रह गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम आहारककाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

आहारक संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह गति को प्राप्त करके संज्ञी पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिमों में उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (४) पश्चात् मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्त में प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयम को एक साथ प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली प्रमाण काल अवशेष रहने पर सासादन में जाकर विग्रह गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्तों से कम आहारककाल ही आहारक संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर है।

अब आहारक प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव विग्रह गति को प्राप्त करके मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ को आदि लेकर आठ वर्षों में अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत होकर (२) मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ। अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक परिभ्रमण करके अन्त में प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (३)। पश्चात् मरण करके विग्रहगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षों से कम आहारककाल ही आहारक प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर है।

आहारक अप्रमत्तसंयत का भी अन्तर इसी प्रकार है। विशेषता केवल यह है कि अप्रमत्तसंयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तर को प्राप्त होकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अप्रमत्तसंयत (२) हुआ, पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३)। पश्चात् मरण करके विग्रहगति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम आहारककाल ही आहारक प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंयतादि से अप्रमत्तसंयत पर्यन्त आहारक जीवों का अंतर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशामक-क्षपक और सयोगिकेवली आहारकों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघभंगो।।३९१।।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३९२।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।३९३।।

चदुण्हं खवाणमोघं।।३९४।।

सजोगिकेवली ओघं।।३९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णामुपशामकानामेकजीवापेक्षया उत्कर्षेण—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः विग्रहं कृत्वा मनुष्येषु उत्पन्नः। अष्टवार्षिकः सम्यक्त्वं अप्रमत्तभावेन संयमं च समकं प्रतिपन्नः (१)। अनंतानुबंधिनं विसंयोज्य (२) दर्शनमोहनीयमुपशाम्य (३) प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वा (४) ततोऽपूर्वः (५) अनिवृत्तिः (६) सूक्ष्मः (७) उपशान्तः (८) पुनरपि अधः प्रतिपतन् सूक्ष्मः (९) अनिवृत्तिः (१०) अपूर्वो जातः (११) अधोऽवतीर्यान्तरितः अंगुलस्य असंख्येयभागं परिभ्रम्यान्तेऽपूर्वो जातः। लब्धमन्तरं। ततो निद्राप्रचलयोः बन्धव्युच्छिन्ने मृत्वा विग्रहं गतः। अष्टवर्षैः द्वादशान्तर्मुहूर्तैश्च ऊनः आहारकालः**

सूत्रार्थ—

आहारक चारों उपशामकों का अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर गुणस्थान के समान है।।३९१।।

उक्त जीवों का एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।।३९२।।

आहारक चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है।।३९३।।

आहारक चारों क्षपकों का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३९४।।

आहारक सयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चारों उपशामकों का एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट कथन करते हैं—

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव विग्रह करके मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। आठ वर्ष का होकर सम्यक्त्व को और अप्रमत्तभाव के साथ संयम को एक साथ प्राप्त हुआ (१) पुनः अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करके (२) दर्शनमोहनीय का उपशमनकर (३) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसंबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (४) पश्चात् अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उपशान्तकषाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) और अपूर्वकरण हुआ (११)। पुनः नीचे उतरकर अन्तर को प्राप्त होकर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्त में अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचला इन दोनों प्रकृतियों के बंध से व्युच्छिन्न होने पर मरकर विग्रह को प्राप्त हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और बारह

उत्कृष्टान्तरं। एवं चैव त्रयाणामुपशामकानां। केवलं तु दश-नव-अष्टान्तर्मुहूर्ताः समयाधिका ऊना ज्ञातव्याः।

चतुर्णां क्षपकाणां, अयोगिकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयं, उत्कर्षेण षण्मासं अन्तरं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। सयोगिकेवलिनामपि नानैकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्।

एवं प्रथमस्थले आहारिणां गुणस्थानापेक्षयान्तरनिरूपणत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

संप्रति अनाहारकाणामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो।।३९६।।

णवरि विसेसो, अजोगिकेवली ओघं।।३९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्टीनां कार्मणकाययोगिनां नानैकजीवानां नास्यन्तरं। सासादनानां नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण पल्योपमस्यअसंख्येयभागः। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। असंयतसम्यग्दृष्टीनां जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण मासपृथक्त्वमन्तरं। एकजीवापेक्षया नास्त्यन्तरं। सयोगिकेवलिनां नानाजीवं प्रतीत्य एकसमयः जघन्येन, वर्षपृथक्त्वमुत्कर्षेण अन्तरं, एकजीवं आश्रित्य नास्त्यन्तरम्।**

विशेषेण अनाहारकाणां अयोगिकेवलिनां सामान्यवत्। तद्यथा—नानाजीवं प्रतीत्य जघन्येन एकसमयः,

---

अन्तर्मुहूर्तों से कम आहारककाल ही अपूर्वकरण उपशामक का उत्कृष्ट अन्तर है। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकों का भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आहारककाल में अनिवृत्तिकरण उपशामक के दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक के नौ और उपशान्तकषाय उपशामक के आठ अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए।

चारों क्षपकों का और अयोगिकेवली भगवन्तों का नाना जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह माह का है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। सयोगिकेवली भगवन्तों का भी नाना जीव एवं एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अन्तर निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अनाहारक जीवों का अन्तर कार्मणकाययोगियों के समान है।।३९६।।

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवली का अन्तर गुणस्थान के समान है।।३९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टियों का नाना जीव और एक जीव की अपेक्षा अन्तर का अभाव होने से अंतर नहीं है। सासादनसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है, एक जीव की अपेक्षा अंतर नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्व है और एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। सयोगिकेवलियों का नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है तथा एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है।

विशेषरूप से अनाहारक अयोगिकेवलियों का अन्तर सामान्य गुणस्थान के समान है। वह इस प्रकार

उत्कर्षेण षण्मासं अन्तरं। एकजीवं आश्रित्य नास्त्यन्तरं इति ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले अनाहाराणां अन्तरनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

चतुरास्योऽस्ति यो ब्रह्मा, विष्णुर्ज्ञानेन व्याप्यते।
देवदेवो महादेवः, तस्मै तीर्थकृते नमः।।१।।

अधुना मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे कल्पद्रुममहामहो यज्ञो भवन् अस्ति। पूर्वं यत्र समवसरणे गंधकुट्यां अनन्तचतुष्टयरूपान्तरङ्गलक्ष्म्या अष्टभूमिगतातुल्यविभवरूपाबहिरङ्गलक्ष्म्या च सह शतेन्द्रवंदिततीर्थकरभगवन्तो विराजन्ते तेभ्योऽस्माकं नमो नमः। तदेव समवसरणं संप्रत्यत्र विरचितमस्ति। अत्र स्थापनानिक्षेपेण चक्रवर्तिनो मुकुटबद्धराजानश्च भूत्वा चतुर्दिक्षु स्थित्वोपविश्य च कल्पद्रुमविधानपूजां कुर्वन्तः सन्ति। अस्मिन् महामंगलकाले एषोऽन्तरानुगमो नामानियोगद्वारो मया परिपूर्यते।

है—नाना जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर छह माह है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अनाहारकों का अंतर बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अन्तरानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांत चिंतामणिटीका में आहार-मार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

श्लोकार्थ—जो चतुर्मुखी अतिशय से समन्वित होने के कारण "ब्रह्मा" कहलाते हैं, लोकालोक के ज्ञान से व्याप्त होने के कारण "विष्णु" संज्ञा को धारण करते हैं तथा समस्त देवों के भी देव होने से "महादेव" कहे जाते हैं उन तीर्थंकर भगवान को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१।।

इस समय मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में कल्पद्रुम महामण्डल विधान नामक यज्ञ—पूजन का कार्यक्रम चल रहा है। पूर्व में अधर आकाश में निर्मित किये गये जिस वास्तविक समवसरण में गंधकुटी के अन्दर अनंत चतुष्टयरूप अन्तरंग लक्ष्मी एवं आठ भूमियों से समन्वित अतुलनीय वैभवरूप बहिरंग लक्ष्मी के साथ सौ इन्द्रों से वंदित तीर्थंकर भगवान विराजमान होते थे, उन सभी तीर्थंकर भगवन्तों को हमारा बारम्बार नमस्कार होवे। उसी प्रकार का समवसरण आज यहाँ धरती पर मण्डल के रूप में बनाया गया है। यहाँ स्थापना निक्षेप से चक्रवर्ती सम्राट् और मुकुटबद्ध राजा बनकर समवसरण मण्डल की चारों दिशाओं में बैठकर महापूजा कर रहे हैं। इस महान मंगल घड़ियों में मैंने षट्खण्डागम ग्रंथ का यह अंतरानुगम नामक अनुयोगद्वार लिखकर पूर्ण किया है।

भावार्थ—ईसवी सन् १९९६ में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने संघ सहित मंगल चातुर्मास महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर किया था। उसी के अन्तर्गत आश्विन मास में पूज्य माताजी के ६३वें जन्मजयंती के प्रसंग में आयोजित कल्पद्रुम मण्डल विधान के मध्य वीर निर्वाण संवत् २५२२, आश्विन

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे श्रीमद्भूतबलि-सूरिविरचितान्तरानुगमे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीका-प्रमुखानेकग्रन्थाधारेण विरचितायां अस्मिन् विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ति श्री शांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंता-मणिटीकायां मार्गणान्तरप्ररूपको नाम द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

शु. षष्ठी, १८ अक्टूबर १९९६ को प्रातः १० बजकर १० मिनट पर षट्खण्डागम ग्रंथ की पंचम पुस्तक का यह अन्तरानुगम प्रकरण लिखकर परिपूर्ण किया है, इसीलिए वहाँ का नाम उद्धृत किया है। वह मण्डल विधान अत्यंत प्रभावनापूर्वक चमत्कारिकरूप में हुआ था। उस समय बम्बई में एक वृहत् तूफान की घोषणा महाराष्ट्र सरकार द्वारा हुई थी, किन्तु इस कल्पद्रुम विधान में भक्तों द्वारा किये गये लाखों मंत्रों के प्रभाव से वह तूफान टल गया था। इसीलिए उस कल्पद्रुम विधान का नाम इस प्रकरण में प्रमुखता से लिया गया है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में श्रीमान भूतबली आचार्य द्वारा रचित अन्तरानुगम प्रकरण में श्री वीरसेनाचार्य द्वारा विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से इस बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में मार्गणाओं में अन्तर प्ररूपण करने वाला द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

गृहस्थ धर्म भी मुक्ति में हेतु है

सन्तः सर्वसुरा सुरेन्द्रमहितं मुक्तेः परं कारणम्, रत्नानां दधति त्रयं त्रिभुवनप्रद्योति कायेसति।
वृत्तिस्तस्य यदन्नतः परमया भक्त्यार्पिताज्जायते, तेषां सद्गृहमेधिनां गुणवतांधर्मो न कस्य प्रियः।।

अर्थ—जो रत्नत्रय समस्त देवेन्द्रों एवं असुरेन्द्रों से पूजित है, मुक्ति का अद्वितीय कारण है तथा तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाला है, उसे साधुजन शरीर के स्थिर रहने पर ही धारण करते हैं। उस शरीर की स्थिति उत्कृष्ट भक्ति से दिये गये जिन सद्गृहस्थों के अन्न से रहती हैउन गुणवान सद्गृहस्थों का धर्म भला किसे न प्रिय होगा? अर्थात् सभी को प्रिय होगा।

—आचार्य पद्मनन्दिदेव

अथ भावानुगमः

तृतीयो महाधिकारः

मंगलाचरणं

अष्टादशमहाभाषा-लघुसप्तशतान्विता।
यन्मुखाब्जाद् ध्वनिर्दिव्या निःसृता तं च तां नुमः।।१।।
चतुष्कर्मक्षयान्नान्त्य-चतुर्भावयुतार्हतः।
प्रणम्य शुद्धभावाप्त्यै, भावानुगम उच्यते।।२।।

ये द्वादशसभामध्ये गंधकुट्यां उपरि कमलासने चतुरंगुलाधरविराजमानाः सन्ति तेभ्यः ऋषभादिवर्धमानान्तेभ्योऽस्माकमनन्तशः नमोऽस्तु।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमे ग्रन्थे भावानुगमनामा सप्तमोऽनियोगद्वारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् गुणस्थानमार्गणाधिकाराभ्यां तृतीयचतुर्थनामधेयौ द्वौ महाधिकारौ स्तः। तस्मिन् तृतीय महाधिकारे नवसूत्राणि वक्ष्यन्ते। चतुर्थमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तत्रापि प्रथमायां गतिमार्गणायां विंशतिसूत्राणि। द्वितीयेऽधिकारे एकं सूत्रं। तृतीये कायाधिकारे एकमेव सूत्रं। चतुर्थ योगमार्गणायां नवसूत्राणि। पंचमे वेदाधिकारे द्वे सूत्रे। षष्ठे कषायाधिकारे द्वे सूत्रे। सप्तमे ज्ञानाधिकारे चत्वारि सूत्राणि। अष्टमसंयममार्गणायां सप्तसूत्राणि। नवमे दर्शनाधिकारे त्रीणि सूत्राणि। दशमलेश्यामार्गणायां त्रीणि सूत्राणि। एकादशभव्याधिकारे

अथ भावानुगम प्रकरण प्रारंभ

तृतीय महाधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ— अठारह महाभाषा एवं सात सौ लघु भाषाओं से समन्वित दिव्यध्वनि जिनके मुख से प्रकट हुई है, उन अरिहंत भगवान एवं उनकी दिव्यध्वनि को हम नमस्कार करते हैं।।१।।

चार घातिया कर्मों को नष्ट करके जिन्होंने अनंत चतुष्टयरूप चार क्षायिक भावों को प्राप्त कर लिया है, ऐसे अरिहंत भगवान को नमस्कार करके निज आत्मा के शुद्ध भावों की प्राप्ति हेतु मेरे द्वारा भावानुगम कहा जा रहा है।।२।।

जो बारह सभाओं के मध्य गंधकुटी में ऊपर कमलासन पर चार अंगुल अधर विराजमान हैं उन ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों को मेरा अनन्तबार नमस्कार होवे।

इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में भावानुगम नाम का सातवाँ अनुयोगद्वार प्रारंभ हो रहा है। उनमें गुणस्थान और मार्गणा नाम वाले तृतीय-चतुर्थ दो महाधिकार हैं। उसमें से तृतीय महाधिकार में नौ सूत्र कहेंगे। चतुर्थ महाधिकार में चौदह अधिकार हैं। उसमें भी प्रथम गतिमार्गणा में बीस सूत्र हैं। द्वितीय इंद्रियमार्गणा अधिकार में एक सूत्र है। तृतीय कायमार्गणा अधिकार में एक ही सूत्र है। चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में नौ सूत्र हैं। पंचम वेदमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। सातवें ज्ञानमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। आठवें संयममार्गणा अधिकार में सात सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो

द्वे सूत्रे। द्वादशे सम्यक्त्वाधिकारे पंचविंशतिसूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञिअधिकारे द्वे सूत्रे। चतुर्दशाहारमार्गणायां त्रीणि सूत्राणि।

तस्मिन्नपि तृतीयमहाधिकारे अष्टौ स्थलानि सन्ति। तत्र प्रथमस्थले भावानुगमकथनप्रतिज्ञासूचनपरत्वेन ''भावाणुगमेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टीनां भावकथनत्वेन ''ओघेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले सासादनसम्यग्दृष्टीनां भावप्रतिपादनत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भावनिश्चयकरणत्वेन ''सम्मामिच्छा'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं पंचमस्थले असंयतसम्यग्दृष्टीनां भावप्ररूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च षष्ठस्थले संयतासंयताद्यप्रमत्तसंयतानां भावप्रतिपादनत्वेन ''संजदासंजद'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् सप्तमस्थले चतुर्णामुपशामकानां भावनिर्णयार्थं ''चदुण्हमुवसमा'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं अष्टमस्थले क्षपकाणां सयोगिनां अयोगिकेवलिनां च भावकथनार्थं ''चदुण्हं खवा'' इत्यादिसूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

संप्रति भावानुगमप्रतिपादनप्रतिज्ञासूचनाय सूत्रमवतरति—

भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**जीवस्य भावः स्वभावः स्वतत्त्वं वा, नायं तुच्छाभावः किन्तु भावान्तररूप एव। एतस्य जीवस्य भावस्य अनुगमः भावानुगमः। तेन द्विविधः निर्देशः—ओघेन संग्रहेण सामान्येन गुणस्थानेन। आदेशेन असंग्रहेण विशेषेण मार्गणाभिः वा द्विविध एव भवति, तृतीयस्य निर्देशस्य संभवाभावात्।**

सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्व मार्गणा अधिकार में पच्चीस सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञी मार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं एवं चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं।

उसमें भी तृतीय महाधिकार में आठ स्थल हैं। उनमें प्रथम स्थल में भावानुगम के कथन की प्रतिज्ञा को सूचित करने वाला ''भावाणुगमेण'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों के भावकथन की मुख्यता से ''ओघेण'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के भावों का कथन करने हेतु ''सासण'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के भावों का निश्चय कराने वाला ''सम्मामिच्छा'' इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर पंचम स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का भाव प्ररूपण करने वाले ''असंजद'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में संयतासंयत से अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक के जीवों के भावप्रतिपादन करने हेतु ''संजदासंजद'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् सातवें स्थल में चारों उपशामकों के भावों का निर्णय करने हेतु ''चदुण्हमुवसमा'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके आगे आठवें स्थल में क्षपकों के, सयोगिकेवलियों के और अयोगिकेवलियों के भावों का कथन करने हेतु ''चदुण्हं खवा'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भावानुगम के कथन की प्रतिज्ञा को सूचित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

भावानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जीव का भाव स्वभाव कहलाता है, उसे स्वतत्त्व भी कहते हैं। यह तुच्छाभावरूप नहीं है, किन्तु भावान्तररूप ही है। उस जीव के भाव का अनुगम भावानुगम कहा जाता है। उसके द्वारा दो प्रकार का निर्देश किया जाता है—ओघ, संग्रह, सामान्य और गुणस्थान के द्वारा प्रथम निर्देश होता है। आदेश, असंग्रह, विशेष अथवा मार्गणाओं के द्वारा द्वितीय प्रकार का निर्देश होता है। तृतीय प्रकार के

नामस्थापनाद्रव्यभावैश्चतुर्विधो भावः। बाह्यार्थनिरपेक्षः स्वात्मनि चेव प्रवृत्तः भावशब्दो नामभावो भवति। स्थापनाभावः सद्भावासद्भावभेदेन द्विविधः—विरागसरागादिभावे अनुकुर्वन्ती स्थापना सद्भावस्थापनाभावः। तद्विपरीतोऽसद्भावस्थापनाभावः। आगम-नोआगमभेदेन द्रव्यभावनिक्षेपो द्विविधः। भावप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्तः आगमद्रव्यभावनिक्षेपः भवति। यः नोआगमद्रव्यभावनिक्षेपः सोऽपि त्रिविधः—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदेन। तत्रापि नोआगमज्ञायकशरीरद्रव्यभावनिक्षेपः त्रिविधः—भाविवर्तमान-समुज्झितभेदेन। भावप्राभृतपर्यायपरिणतजीवस्य यदाधारो भविष्यति तत्शरीरं भाविनाम। भावप्राभृतपर्याय-परिणतजीवेन सह यदेकीभूतं शरीरं तद्वर्तमानं नाम। भावप्राभृतपर्यायेण परिणतजीवेन एकत्वमुपगम्य यत्पृथग्भूतं शरीरं तत्समुज्झितं नाम।

भावप्राभृतपर्यायस्वरूपेण यो जीवो परिणमिष्यति स नोआगमभाविद्रव्यभावो नाम। तद्व्यतिरिक्तनो-आगमद्रव्यभावनिक्षेपोऽपि त्रिविधः-सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन। तत्र सचित्तो जीवद्रव्यं। अचित्तः पुद्गलधर्मा-धर्माकाशकालद्रव्याणि। पुद्गलजीवद्रव्ययोः संयोगः कथंचित् जात्यन्तरत्वं आपन्नः नोआगममिश्रभावो नाम भवति।

द्रव्यस्य भावव्यपदेशः कथं भवितुमर्हति ?

न एष दोषः, भवनं भावः, भूतिर्वा भावः इति भावशब्दस्य व्युत्पत्त्यवलंबनात् द्रव्यस्यापि भावव्यपदेशो भवितुमर्हति।

निर्देश की संभावना का अभाव है, अर्थात् इन दो प्रकार के निर्देशों के अलावा तीसरा कोई निर्देश नहीं पाया जाता है।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की अपेक्षा भाव चार प्रकार का है। बाह्य अर्थ से निरपेक्ष अपने आप में प्रवृत्त भाव यह शब्द नामभावनिक्षेप है। उन चार निक्षेपों में से स्थापना भावनिक्षेप सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से विरागी और सरागी आदि भावों का अनुकरण करने वाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप है। उससे विपरीत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है। द्रव्यभावनिक्षेप आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। भावप्राभृतज्ञायक किन्तु वर्तमान में अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्य भावनिक्षेप कहलाता है। जो नोआगमद्रव्य निक्षेप है वह भी ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार होता है। उनमें नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभावनिक्षेप भव्यवर्तमान और समुज्झित के भेद से तीन प्रकार का है। भावप्राभृतपर्याय से परिणत जीव का जो शरीर आधार होगा, वह भावि शरीर है। भावप्राभृतपर्याय से परिणत जीव के साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमान शरीर है। उस भावप्राभृतपर्याय से परिणत जीव के साथ एकत्व को प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुज्झित शरीर है भावप्राभृतपर्यायस्वरूप से जो जीव परिणत होगा, वह नो आगम भाविद्रव्य भावनिक्षेप है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें जीवद्रव्य सचित्तभाव है। पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश द्रव्य अचित्तभाव है। कथंचित् जात्यन्तर भाव को प्राप्त पुद्गल और जीव द्रव्यों का संयोग नोआगममिश्रद्रव्य नाम का भावनिक्षेप होता है।

शंका—द्रव्य के भाव ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि 'भवनंभावः' अथवा 'भूतिर्वाभावः' इस प्रकार भाव शब्द की व्युत्पत्ति के अवलंबन से द्रव्य के भी भाव ऐसा व्यपदेश बन जाता है। जो भाव नामक भावनिक्षेप है, वह

यो भावभावः सोऽपि द्विविधः—आगमनोआगमभेदेन। भावप्राभृतज्ञायकः उपयुक्तः आगमभाव-भावनिक्षेपः। नोआगमभावभावः पञ्चविधः—औदयिकः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिकश्चेति। तत्र कर्मोदयजनितो भावः औदयिकः। कर्मोपशमेन समुद्भूतः औपशमिकः भावः। कर्मणां क्षयेण प्रकटीभूतजीवभावः क्षायिकः। कर्मोदये सत्यपि यत् जीवगुणस्य खण्डमुपलभ्यते स क्षायोपशमिको भावः।

यश्चतुर्भिर्भावैः पूर्वकथितैः व्यतिरिको जीवाजीवगतः भावः स पारिणामिकः कथ्यते।

एतेषु चतुर्षु भावेषु अत्र केन भावेनाधिकारः?

नोआगमभावभावेन अधिकारोऽस्ति।

तत्कथं ज्ञायते ?

चतुर्दशजीवसमासाणामनात्मभूतैः नामादिशेषभावैः इह प्रयोजनाभावात्। अनेनैव ज्ञायते यत् अत्र नोआगमभाव-भावनिक्षेपणैव प्रयोजनमस्ति।

अत्र त्रयश्चैव निक्षेपाः भवंतु, नामस्थापनयोर्विशेषाभावात् ?

नैतत्, नामनिक्षेपे नामवद्द्रव्यस्य अध्यारोपनियमाभावात् तथा नामवद्वस्तुनः स्थापना भवेदेवेति नियमो नास्ति, अतः स्थापना इव आदरानुग्रहयोरभावात् च।

भणितं च—

अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो य।
ठवणाए कीरंते ण होंति णाममि एए दु[१]।।

आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। भावप्राभृत का ज्ञायक और उसमें उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है। नोआगमभाव भावनिक्षेप, औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक के भेद से पाँच प्रकार का है। उनमें से कर्मोदयजनित भाव का नाम औदयिक है। कर्मों के उपशम से उत्पन्न हुए भाव का नाम औपशमिक है। कर्मों के क्षय से प्रकट होने वाला जीव का भाव क्षायिक है। कर्मों के उदय होते हुए भी जो जीवगुण का खंड (अंश) उपलब्ध रहता है, वह क्षायोपशमिक भाव है।

जो पूर्वोक्त चारों भावों से व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव है, वह पारिणामिक भाव है।

शंका—उक्त चार भावों में से यहाँ पर किस भाव से प्रयोजन है ?

समाधान—यहाँ नोआगमभाव भाव से प्रयोजन है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—चौदह जीवसमासों के लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिक्षेपों से यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं है, इसी से जाना जाता है कि यहाँ नोआगमभाव भावनिक्षेप से ही प्रयोजन है।

शंका—यहाँ पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि नाम और स्थापना में कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, नाम निक्षेप में नामवत द्रव्य के अध्यारोप का कोई नियम नहीं है। इसलिए तथा नामवाली वस्तु की स्थापना होनी ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है इसलिए एवं स्थापना के समान नाम निक्षेप में आदर और अनुग्रह का भी अभाव है, इसलिए दोनों निक्षेपों में भेद है ही। कहा भी है—

गाथार्थ—विवक्षित वस्तु के प्रति आदरभाव, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापना में किया जाता है। किन्तु ये बातें नाम निक्षेप में नहीं होती हैं।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५, पृ. १८६।

तस्मात् चतुर्विधश्चैव निक्षेपः इति सिद्धं।

तत्र पंचसु भावेषु केन भावेनात्र प्रयोजनं ?

पञ्चभिरपि प्रयोजनमस्ति।

कुतः?

जीवेषु पंचभावानामुपलंभात् ।

कश्चिदाह—न च शेषद्रव्येषु पंच भावाः सन्ति, पुद्गलद्रव्येषु औदयिकपारिणामिकयोर्द्वयोरेव भावोपलंभात्, धर्माधर्माकालाकाशद्रव्येषु एकस्य पारिणमिकभावस्यैवोपलंभात् ।

नैतद् वक्तव्यं, भावो नाम जीवपरिणामः तीव्रमंदनिर्जराभावादिरूपेणानेकप्रकारः। तत्र तीव्रमंदभावो नाम—

सम्मत्तुप्पत्तीए सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए[१]।।

पुनरपिकश्चिदाशंकते—

एतेषां सूत्रोद्दिष्टपरिणामानां प्रकर्षताया तीव्रभावो नाम अप्रकर्षताया मंदभावो नाम। एतैश्चैव परिणामैः असंख्यातगुणितश्रेण्याः कर्मसडनं कर्मसडनजनितजीवपरिणामो वा निर्जराभावो नाम। तस्मात् पञ्चैव जीवभावा इति नियमो न युज्यते ?

इसलिए निक्षेप चार प्रकार का ही है, यह बात सिद्ध हुई।

शंका—पूर्वोक्त पाँच भावों में से यहाँ किस भाव से प्रयोजन है ?

समाधान—पाँचों ही भावों से प्रयोजन है।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि, जीवों में पाँचों भाव पाये जाते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि शेष द्रव्यों में तो पाँच भाव नहीं हैं, क्योंकि पुद्गल द्रव्यों में औदयिक और पारिणामिक, इन दोनों ही भावों की उपलब्धि होती है और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्यों में केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ?

तब आचार्यदेव समाधान देते हैं कि ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि भाव नाम जीव परिणाम का है, जो कि तीव्र, मंद निर्जराभाव आदि के रूप से अनेक प्रकार का है। उनमें तीव्र मंदनामक भाव है—

गाथार्थ—सम्यक्त्व की उत्पत्ति में, श्रावक में, विरत में, अनन्तानुबंधी कषाय के विसंयोजन में, दर्शनमोह के क्षपण में, कषायों के उपशामकों में, उपशान्तकषाय में, क्षपक में, क्षीणमोह में और जिनभगवान में नियम से असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। किन्तु उक्त गुणश्रेणी निर्जरा में असंख्यात गुणश्रेणी क्रम की अपेक्षाकाल का प्रमाण विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है।

पुनः कोई शंका करता है—इन सूत्र कथित परिणामों की प्रकर्षता—उत्कृष्टता का नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षता—हीनता का नाम मंदभाव है। इन्हीं परिणामों के द्वारा असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों का झड़ना अथवा कर्म झड़ने से उत्पन्न हुए जीव के परिणामों को निर्जरा भाव कहते हैं। इसीलिए पाँच ही भाव जीव के

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५, पृ. १८६।

एतस्यैव समाधत्ते आचार्यदेवः—

नैष दोषः, यदि जीवादिद्रव्यात् तीव्रमंदादिभावा अभिन्ना भवन्ति, तर्हि न तेषां पंचभावेषु अंतर्भावात्, द्रव्यत्वात्। अथवा भेदोऽवलम्बयेत् तर्हि पंचानामन्यतरो भवेत्, एतैः पृथग्भूतषष्ठभावानुपलंभात्।

भणितं च- **ओदइओ उवसमिओ खइयो तह वि य खओवसमिओ य।**
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाणं[1] तु।।

अधुना निर्देशस्वामित्वादिषडनुयोगद्वारैः भावो निर्णीयते—

भावो नाम किम् ?

द्रव्यपरिणामो भावः, पूर्वापरकोटिव्यतिरिक्तवर्तमानपरिणामोपलक्षितद्रव्यं वा।

कस्य भावः ?

षण्णां द्रव्याणां भावो भवति। अथवा न कस्यापि भावः, परिणामि-परिणामयोः संग्रहनयाद् भेदाभावात्।

केन भावः, भावस्य किं साधनं ?

कर्मणामुदयेन क्षयेण क्षयोपशमेन कर्मणामुपशमेन स्वभावतो वा। तत्र जीवद्रव्यस्य भावाः उक्तपञ्चकारणेभ्यो भवन्ति। पुद्गलद्रव्यभावाः पुनः कर्मोदयेन स्वभावाद् वा उत्पद्यन्ते। शेषाणां चतुर्णां द्रव्याणां भावाः स्वभावात् उत्पद्यन्ते।

कस्मिन् भावः ?

हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ? आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यदि जीवादि द्रव्य से तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पाँच भावों में अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि वे भाव स्वयं द्रव्यरूप हो जाते हैं। अथवा यदि भेद माना जाये तो पाँचों भावों में से कोई एक होगा, क्योंकि इन पाँच भावों से पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है। कहा भी है—

गाथार्थ—औदयिकभाव, औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिक भाव ये पाँच भाव होते हैं। इनमें पुद्गलों के उदय से औदयिकभाव होता है। अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारों से भाव नामक पदार्थ का निर्णय किया जाता है।

शंका—भाव नाम किस वस्तु का है ?

समाधान—द्रव्य के परिणाम को अथवा पूर्वापर कोटि से व्यतिरिक्त वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को भाव कहते हैं।

शंका—भाव किसके होता है ?

समाधान—छहों द्रव्यों के भाव होता है, अर्थात् भावों के स्वामी छहों द्रव्य है। अथवा, किसी भी द्रव्य के भाव नहीं होता है, क्योंकि परिणामी और परिणाम के संग्रहनय से कोई भेद नहीं है।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भाव का साधन क्या है ?

समाधान—भाव, कर्मों के उदय से, क्षय से, क्षयोपशम से अथवा स्वभाव से होता है। उनमें से जीव द्रव्य के भाव उक्त पाँचों ही कारणों से होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्य के भाव कर्मों के उदय से अथवा स्वभाव से उत्पन्न होते हैं तथा शेष चार द्रव्यों के भाव स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

शंका—भाव कहाँ पर होता है अर्थात् भाव का अधिकरण क्या है ?

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५, पृ. १८७।

द्रव्ये चैव, गुणिव्यतिरेकेण गुणानामसंभावात्।

कियत्कालो भावः ?

अनादिः अपर्यवसितः यथा—अभव्यानामसिद्धता, धर्मास्तिकायस्य गमनहेतुत्वं, अधर्मास्तिकायस्य स्थितिहेतुत्वं, आकाशस्य अवगाहनलक्षणत्वं कालद्रव्यस्य परिणामहेतुत्वमित्यादयः।

अनादिः सपर्यवसितः, यथा—भव्यस्य असिद्धता भव्यत्वं मिथ्यात्वमसंयमः इत्यादिः। सादिः अपर्यवसितः यथा—केवलज्ञानं केवलदर्शनमित्यादिः। सादिः सपर्यवसितः यथा—सम्यक्त्वसंयमौ संप्राप्य प्रत्यागतानां जीवानां मिथ्यात्वासंयमाः इत्यादिः।

कतिविधो भावः?

औदयिकः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिकश्चेति पञ्चविधो भावः।

तत्र यः स औदयिको जीवद्रव्यभावः स स्थानतः अष्टविधः, विकल्पतः एकविंशतिविधः।

किं स्थानम् ?

उत्पत्तिहेतुः स्थानं।

उक्तं च—

गदिलिंग कसाया वि य मिच्छादंसणमसिद्धदण्णाणं।
लेस्सा असंजमो चिय होंति उदयस्स ट्ठाणाइं।।

गतिः लिंगं कषायः मिथ्यादर्शनं असिद्धत्वं अज्ञानं लेश्या असंयमश्चेति औदयिकभावस्याष्टस्थानानि सन्ति।

संप्रति एतेषां विकल्पः उच्यते—गतिश्चतुर्विधा नरक-तिर्यग्-मनुष्य-देवगतयश्चेति। लिंगं त्रिविधं—

समाधान—भाव द्रव्य में ही होता है क्योंकि गुणी के बिना गुणों का रहना असंभव है।

शंका—भाव कितने काल तक रहता है ?

समाधान—भाव अनादि-निधन है जैसे—अभव्य जीवों के असिद्धपना, धर्मास्तिकाय के गमनहेतुपना, अधर्मास्तिकाय के स्थितिहेतुपना, आकाशद्रव्य के अवगाहनस्वरूपता और कालद्रव्य के परिणमन हेतुपना इत्यादि।

अनादि—सान्तभाव जैसे—भव्य जीव की असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि। सादि—अनन्तभाव जैसे—केवलज्ञान, केवलदर्शन इत्यादि। सादि—सान्त भाव, जैसे—सम्यक्त्व और संयम धारणकर पीछे आए हुए जीवों के मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि।

शंका—भाव कितने प्रकार का होता है ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक के भेद से भाव पाँच प्रकार का है।

उनमें से जो औदयिक भाव नामक जीवद्रव्य का भाव है, वह स्थान की अपेक्षा आठ प्रकार का और विकल्प की अपेक्षा इक्कीस प्रकार का है।

शंका—स्थान क्या चीज है ?

समाधान—भाव की उत्पत्ति के कारण को स्थान कहते हैं। कहा भी है—

गाथार्थ—गति, लिंग, कषाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेश्या, असंयम ये औदयिक भाव के आठ भेद हैं।

गति, लिंग, कषाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेश्या और असंयम ये औदयिक भाव के आठ स्थान हैं।

अब इन स्थानों के विकल्प कहते हैं।

स्त्रीपुरुषनपुंसकाश्चेति। कषायाश्चतुर्विधाः क्रोधमानमायालोभाश्चेति। मिथ्यादर्शनमेकविधं। असिद्धत्वमेकविधं।

असिद्धत्वं किम् ?

अष्टकर्मोदयसामान्यमसिद्धत्वं।

अज्ञानमेकविधं। लेश्याः षड्विधाः। असंयमः एकविधः। एते सर्वेऽपि एकविंशतिविकल्पाः भवन्ति (२१)।

पंचजाति-षट्संस्थान-षट्संहननादि औदयिका भावाः कुत्रान्तर्भवन्ति ?

गतिषु, किंच—एतेषामुदयस्य गतिउदयाविनाभावित्वात्। अस्यामवस्थायां लिंगादिभिः व्यभिचारो नास्ति, तत्र तथाविधविवक्षाभावात्।

औपशमिको भावः स्थानतो द्विविधः। विकल्पतोऽष्टविधः। उपशमसम्यक्त्वं उपशमचारित्रमिति द्वयोरेव स्थानयोरूपलंभात्। उपशमसम्यक्त्वमेकविधं, औपशमिकं चारित्रं सप्तविधं—तद्यथा—नपुंसकवेदोपशामनकाले एकं चारित्रं, स्त्रीवेदोपशामनकाले द्वितीयं, पुरुषवेद-षण्णोकषायोपशामनकाले तृतीयं, क्रोधोपशामनकाले चतुर्थं, मानोपशामनकाले पंचमं, मायोपशामनकाले षष्ठं, लोभोपशामनकाले सप्तममौपशमिकं चारित्रं। एवं भिन्न कार्यलिंगेन कारणभेदसिद्धेः औपशमिकं चारित्रं सप्तविधमुक्तं। अन्यथा पुनः अनेकप्रकारं, समयं प्रति उपशमश्रेण्यां पृथक् पृथक् असंख्येयगुणश्रेणिनिर्जरानिमित्तपरिणामोपलंभात्।

गति चार प्रकार की है—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। लिंग तीन प्रकार का है—स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग। कषाय चार प्रकार की है—क्रोध, मान, माया और लोभ। मिथ्यादर्शन एक प्रकार का है। असिद्धत्व एक प्रकार का है।

शंका—असिद्धत्व क्या चीज है ?

समाधान—अष्ट कर्मों का सामान्यरूप असिद्धत्व है। अज्ञान एक प्रकार का है। लेश्या छह प्रकार की है। असंयम एक प्रकार का है। इस प्रकार ये सब मिलकर औदयिकभाव के इक्कीस विकल्प होते हैं (२१)।

शंका—पाँच जातियाँ, छह संस्थान, छह संहनन आदि औदयिकभाव में कहाँ अर्थात् किस भाव के अन्तर्गत होते हैं ?

समाधान—उक्त जातियों आदि का गतिनामक औदयिकभाव में अन्तर्भाव होता है, क्योंकि इन संस्थान आदि का उदय गतिनामकर्म के उदय का अविनाभावी है। इस अवस्था में लिंग, कषाय आदि औदयिकभावों से भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि उन भावों में उस प्रकार की विवक्षा का अभाव है। औपशमिकभाव स्थान की अपेक्षा दो प्रकार का और विकल्प की अपेक्षा आठ प्रकार का है। औपशमिक भाव के सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं क्योंकि इनमें से औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं। इनमें से औपशमिकसम्यक्त्व एक प्रकार का है और औपशमिकचारित्र सात प्रकार का है। जैसे—नपुंसकवेद के उपशमनकाल में एक चारित्र, स्त्रीवेद के उपशमनकाल में दूसरा चारित्र, पुरुषवेद और छह नोकषायों के उपशमनकाल में तीसरा चारित्र, क्रोध संज्वलन के उपशमनकाल में चौथा चारित्र, मान संज्वलन के उपशमनकाल में पाँचवां चारित्र, मायासंज्वलन के उपशमनकाल में छठा चारित्र और लोभ संज्वलन के उपशमनकाल में सातवाँ औपशमिक चारित्र होता है। भिन्न-भिन्न कार्यों का सूचक होने के कारणों में भेद की सिद्धि होती है, इसलिए औपशमिकचारित्र सात प्रकार का कहा है। अन्यथा अर्थात् उक्त प्रकार की विवक्षा न की जाये तो वह अनेक प्रकार का है, क्योंकि प्रतिसमय उपशमश्रेणी में पृथक्-पृथक् असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा के निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

क्षायिको भावः स्थानतः पंचविधः। विकल्पतो नवविधः। लब्धिः सम्यक्त्वं चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति पंच स्थानानि। तत्र लब्धिः पंचविधा—दानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदेन। सम्यक्त्वमेकविकल्पं, चारित्रमेकविधं, केवलज्ञानमेकविधं, केवलदर्शनमेकविकल्पं। एवं क्षायिको भावो नवविधः।

क्षायोपशिको भावः स्थानतः सप्तविधः। विकल्पतोऽष्टादशविधः। ज्ञानमज्ञानं दर्शनं लब्धिः सम्यक्त्वं चारित्रं संयमासंयमश्चेति सप्त स्थानानि। तत्र ज्ञानं चतुर्विधं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानभेदेन।

केवलज्ञानं किन्न गृहीतम् ?

नैतत्, किंच-तस्य क्षायिकभावात्।

अज्ञानं त्रिविधं मतिश्रुतविभंगाज्ञानभेदेन। दर्शनं त्रिविधं—चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनं।

केवलदर्शनं किन्न गृहीतं ?

आत्मनो विरोधिकर्मणः क्षयेण समुद्भवात् तस्य क्षायिकभावे गृहीतमस्ति।

लब्धिः पंचविधा—दानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदेन। सम्यक्त्वमेकविधं वेदकसम्यक्त्वव्यतिरेकेण अन्यसम्यक्त्वयोरनुपलंभात्। चारित्रमेकविधं, सामायिक छेदोपस्थापनपरिहारशुद्धिसंयमविवक्षाभावात्। संयमासंयमः एकविधः। एवमेते सर्वेऽपि विकल्पाः अष्टादश भवन्ति (१८)।

क्षायिकभाव स्थान की अपेक्षा पाँच प्रकार का है और विकल्प की अपेक्षा नौ प्रकार का है।

दानादि लब्धियाँ, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदर्शन तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भाव में जिनभाषित पाँच स्थान होते हैं। लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन ये पाँच स्थान क्षायिकभाव में होते हैं। उनमें लब्धि पाँच प्रकार की है—क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिक वीर्य। क्षायिक सम्यक्त्व एक प्रकार का है। क्षायिकचारित्र एक भेदरूप है। केवलज्ञान एक भेदरूप है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है। इस प्रकार से क्षायिकभाव के नौ भेद हैं।

क्षायोपशमिकभाव स्थान की अपेक्षा सात प्रकार का और भेद की अपेक्षा अठारह प्रकार का है।

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ये सात स्थान क्षायोपशमिक भाव के हैं। उनमें मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय के भेद से ज्ञान चार प्रकार का है।

शंका—यहाँ पर ज्ञानों में केवलज्ञान का ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि वह क्षायिकभाव है। कुमति, कुश्रुत और विभंग के भेद से अज्ञान तीन प्रकार का है। चक्षु, अचक्षु और अवधि के भेद से दर्शन तीन प्रकार का है।

प्रश्न—यहाँ पर दर्शनों में केवलदर्शन का ग्रहण क्यों नहीं किया गया है ?

उत्तर—क्योंकि वह अपने विरोधी कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है उसका ग्रहण क्षायिक भाव में किया गया है।

दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य के भेद से क्षायोपशमिक लब्धि पाँच प्रकार की है। सम्यक्त्व एक प्रकार का है, क्योंकि इस क्षायोपशमिक भाव में वेदकसम्यक्त्व को छोड़कर अन्य सम्यक्त्वों का अभाव है। क्षायोपशमिक चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि यहाँ पर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि संयम की विवक्षा का अभाव है अर्थात् ये तीनों चारित्र क्षायोपशमिक हैं। संयमासंयम एक भेदरूप है। इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८)।

परिणामिको भावः स्थानतः एकविधं, विकल्पात् त्रेधा।

उक्तं च-

एयं ठाणं तिण्णि वियप्पा तह पारिणामिए होंति।
भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो चेव बोद्धव्वा[१]।।

एतेषां पूर्वोक्तभावविकल्पानां संग्रहगाथा उच्यते—

इगिवीस अट्ठ तह णव अट्ठारस तिण्णि चेव बोद्धव्वा।
ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए[२]।।

औदयिकादयः पंच भावाः उत्तरापेक्षया आनुपूर्व्या एकविंशति-अष्टनव-अष्टादश-त्रिभेदाः भवन्तीति। अथवा सान्निपातिकं प्रतीत्य षट्त्रिंशद्भेदा भवन्ति भावानाम्। सान्निपातिकेति का संज्ञा ?

एकस्मिन् गुणस्थाने जीवसमासे वा बहवो भावा यस्मिन् सन्निपतन्ति तेषां भावानां सान्निपातिका इति संज्ञा कथ्यते।

अधुना एकद्वित्रिचतुःपंचसंयोगेन भंगाः प्ररूपयिष्यन्ते। एकसंयोगेन यथा—औदायिकः औदयिकः इति 'मिथ्यादृष्टिः असंयतश्च''। दर्शनमोहनीयस्य उदयेन मिथ्यादृष्टिरिति भावः, असंयत इति संयमघातिनां कर्मणामुदयेन। एतेन क्रमेण सर्वे विकल्पाः प्ररूपयितव्या।

उक्तं च तत्त्वार्थवार्तिकमहाशास्त्रे—

अथार्षोक्तः सान्निपातिकभावः कतिविधः इत्यत्रोच्यते—षड्विंशतिविधः षट्त्रिंशद्विधः

पारिणामिक भाव स्थान की अपेक्षा एक प्रकार का है और भेद की अपेक्षा भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व के भेद से तीन प्रकार का है। कहा भी है—

गाथार्थ—पारिणामिक भाव में एक स्थान तथा भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व के भेद से तीन भेद होते हैं। ये विकल्प-भेद आत्मा के असाधारण भाव होने से ग्रहण किये गये जानना चाहिए।।

इन पूर्वोक्त भावों के भेदों को बतलाने वाली यह संग्रह गाथा कहते हैं—

गाथार्थ—इक्कीस, आठ, नौ, अठारह और तीन ये भेद क्रमशः औदयिकादि पाँचों भावों के माने गये हैं।।

औदयिक आदि पाँच भाव उत्तर भेदों की अपेक्षा आनुपूर्वी—क्रम से इक्कीस, आठ, नौ, अठारह और तीन भेद वाले हैं, ऐसा जानना चाहिए। अथवा सान्निपातिक की अपेक्षा भावों के छत्तीस भंग होते हैं।

शंका—सान्निपातिक यह कौन सी संज्ञा है ?

समाधान—एक ही गुणस्थान या जीवसमास में जो बहुत से भाव आकर एकत्रित होते हैं, उन भावों की सान्निपातिक ऐसी संज्ञा है।

अब उपर्युक्त भावों के एक, दो, तीन, चार और पाँच भावों के संयोग से होने वाले भंग कहे जाते हैं। उनमें से एक संयोगी भंग इस प्रकार है—औदयिक-औदयिक भाव, जैसे—यह जीव मिथ्यादृष्टि और असंयत है। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादृष्टि यह भाव उत्पन्न होता है। संयमघाती कर्मों के उदय से 'असंयत' यह भाव उत्पन्न होता है। इसी क्रम से सभी विकल्पों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

तत्त्वार्थवार्तिक नाम के महाशास्त्र में कहा भी है—

अब आर्ष ग्रंथों में सान्निपतिक भाव कितने प्रकार के हैं ? सो बताते हैं—२६, ३६ और ४१ आदि प्रकार के भाव कहे हैं, वहाँ यह गाथा है—

१-२. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५, पृ. १९२।

एकचत्वारिंशद्विधः इत्येवमादिरागमे उक्तः। तत्र—

दुग तिग चदु पंचेव य संयोगा होंति सन्निवादेसु।
दस दस पंच य एक्क य भावा छव्वीस पिंडेण।।

द्विभावसंयोगेन दश-औदयिकं परिगृह्योपशमिकादिचतुष्टयस्य चैकैकत्यागेन प्रथमे द्विभेदभावसंयोगे चत्वारो भंगाः। तत्रैक औदयिकौपशमिकसान्निपातिकजीवभावो नाम मनुष्य उपशान्तक्रोधः। द्वितीय औदयिकक्षायिकसान्निपातिकजीवभावो नाम मनुष्यः क्षीणकषायः। तृतीय औदयिकक्षायिकसान्निपातिक-जीवभावो नाम मनुष्यः पञ्चेन्द्रियः। चतुर्थ औदयिकपारिणामिकसान्निपातिकजीवभावो नाम लोभी जीवः। द्वितीयद्विभावसंयोगे औदयिकं परित्यज्यौपशमिकपरिग्रहात् क्षायिकादिभावत्रयस्यैकैकत्यागेन त्रयो भङ्गाः। तत्रैक औपशमिकक्षायिकसान्निपातिकजीवभावो नाम उपशान्तलोभः क्षीणदर्शनमोहत्वात्क्षायिकसम्यग्दृष्टिः। द्वितीय औपशमिकक्षायोपशमिकसान्निपातिकजीवभावो नाम उपशान्तमान आभिनिबोधिकज्ञानी। तृतीय औपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकजीवभावो नाम उपशान्तमानमायो भव्यः। तृतीयद्विभावसंयोगे औपशमिकं परित्यज्य क्षायिकपरिग्रहात् क्षायोपशमिकपारिणामिकयोरेकैकत्यागाद् द्वौ भङ्गौ। तत्रैकः क्षायिकक्षायोपशमिक-सान्निपातिकजीवभावो नाम क्षायिकसम्यग्दृष्टिः श्रुतज्ञानी। द्वितीयः क्षायिकपारिणामिकसान्निपातिकजीवभावो नाम क्षीणकषायो भव्यः। चतुर्थ-द्विभावसंयोगे क्षायिकपरित्यागादेकः क्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिक-जीवभावो नाम अवधिज्ञानी जीवः। त एते द्विभावसंयोगभङ्गा समुदिताः दश[१]। विस्तरेण एषां भंगाः तत्त्वार्थवार्तिकग्रन्थे द्रष्टव्याः।

गाथार्थ—द्विसंयोगी १०, त्रिसंयोगी १०, चतुःसंयोगी ५ और पंचसंयोगी १, इस प्रकार २६ भाव होते हैं।।

द्विसंयोगी दस में औदयिक के साथ औपशमिक आदि चार का संयोग करने से प्रथम द्विसंयोगी भाव के चार भंग होते हैं—जैसे—१. औदयिक-औपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—मनुष्यगति और उपशांत क्रोध। २. औदयिक-क्षायिक-सान्निपातिक जीव—भाव—मनुष्य और क्षीणकषायी। ३. औदयिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—मनुष्यगति और पंचेन्द्रिय। ४. औदयिक—पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव—लोभकषायी और जीवत्व। द्वितीय द्विसंयोगी सान्निपातिक भाव औदायिक को छोड़कर औपशमिक को ग्रहण करके क्षायिक आदि तीन में से एक-एक के त्याग के साथ तीन भंग होते हैं। उनमें प्रथम १. औपशमिक और क्षायिक के संयोग से होनेवाला सान्निपातिक भाव—उपशांत लोभ-क्षीणदर्शन मोह होने से क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। २. औपशमिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भाव—उपशांत मान और मतिज्ञानी। ३. औपशमिक-पारिणामिक सान्निपातिक भाव—उपशांत मान-माया और भव्यजीव। इसी प्रकार तृतीय द्विभाव संयोगी औपशमिक को छोड़कर क्षायिक को ग्रहण करने से क्षायोपशमिक और पारिणामिक का एक-एक का त्याग करने पर दो भंग होते हैं—जैसे—१. क्षायिक-क्षायोपशमिक सान्निपातिक जीव भाव क्षायिक सम्यग्दृष्टि और श्रुतज्ञानी। २. क्षायिक-पारिणामिक सान्निपातिक जीव भाव क्षीणकषायी और भव्य। चतुर्थ प्रकार से द्विसंयोगी भाव में क्षायिक का परित्याग करने से क्षायोपशमिक और पारिणामिक भाव के संयोग से एक प्रकार का होता है—जैसे—अवधिज्ञानी और जीवत्व। ये द्विसंयोगी भाव सब मिलकर दस होते हैं।

विस्तार से इसके भंग तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में देखना चाहिए।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक अ. २, सूत्र ७, वार्तिक २२।

अत्रैतत् ज्ञातव्यं यत् पारिणामिकभावाः त्रिभेदाः एव तथापि अस्तित्वादयोऽपि साधारणाः भावा अत्रैवान्तर्भवन्ति। इमे सान्निपातिकभावाश्च कथंचिद् गृह्यन्ते।

उक्तं च श्रीभट्टाकलंकदेवेन—

''कण्ठोक्तानि त्रीणि प्रधानानि तदपेक्षया त्रिभेदप्रतिज्ञेति नास्ति विरोधः। अस्तित्वादीनि तु साधारणत्वात् चशब्देन द्योतितानीति तेषां गुणभावः[१]।।

अस्मिन् भावानुगमे औदयिकादयो भावाः पञ्च कथिताः, तेषां उत्तरभेदाः एकोनषष्टिः कथिताः। तत्त्वार्थसूत्रे औपशमिकाद् गृहीताः पंच भावाः, तेषां उत्तरभेदाः त्रिपंचाशत् प्रोक्ताः, तत्र औपशमिकस्य द्वौ भेदौ शेषाणां सदृशाः एव।

इमे जीवस्य भावाः स्वभावाः स्वतत्त्वमिति।

उक्तं च—श्रीमद्भट्टाकलंकदेवेन—''तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमुपदिष्टं। तत्त्वार्थाश्च जीवादयः। तत्रादौ उपदिष्टस्य जीवस्य किं श्रद्धातव्यं यदवधारणप्रतिपत्त्युपासनादिभिस्तन्निष्पद्यते इति ?

उच्यते—तत्त्वमात्मनः स्वभावः श्रद्धेयः।''

तदेव तत्त्वमुच्यते—

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च।।१।।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः यथाक्रमम् ।।२।।

यहाँ यह जानना चाहिए कि पारिणामिक भाव तीन भेदरूप ही होता है फिर भी अस्तित्व आदि साधारण भाव भी इसी में अन्तर्भूत हो जाते हैं और ये सान्निपातिक भाव कथंचित् ग्रहण हो जाते हैं।

श्री भट्टाकलंक देव ने कहा भी है—

सूत्र में कथित जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन भाव प्रधान हैं, इस अपेक्षा से पारिणामिक भाव के तीन भेद होते हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है। 'च' शब्द से साधारण अस्तित्व आदि को ग्रहण किया है। वह गौण है इसलिए मुख्य तीन संख्या का व्याघात नहीं होता है। क्योंकि प्रधान और असाधारण तीन ही पारिणामिक भाव विवक्षित हैं।

इस भावानुगम में औदयिक आदि पाँच भाव कहे हैं, उनके उत्तर भेद उनसठ (५९) हैं। तत्त्वार्थसूत्र में औपशमिक से लेकर के पाँच भाव कहे हैं, उनके उत्तर भेद त्रेपन (५३) हैं, उनमें औपशमिक के दो भेद हैं, शेष के एक समान भेद हैं।

जीव के ये भाव स्वभाव नाम से या स्वतत्त्व नाम से जाने जाते हैं। श्री भट्टाकलंक देव ने भी कहा है—

''तत्त्व और पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीवादि पदार्थ तत्त्वार्थ कहलाते हैं। उनमें सर्वप्रथम उपदिष्ट जीव का क्या श्रद्धान करना चाहिए, जिससे जीवादि की अवधारणा की प्रतिपत्ति व उपासना आदि के द्वारा उसकी निष्पत्ति हो जाए ?

आत्मा का स्वभाव तत्त्व है, उसका श्रद्धान करना चाहिए।''

उसी तत्त्व को अब कहते हैं—

''औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्त्व हैं।।१।।

''इन भावों के क्रम से दो, नौ, अट्ठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।।२।।''

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक अ. २, सूत्र ७, वार्तिक २०।

अत्र कश्चिदाशंकते — यदि जीवस्य भावा इमे, तर्हि जीवं कदाचिदपि न परित्यन्ति पुनः औदयिकादिस्वभावानामभावे जीवस्य कथमपि मोक्षो न भविष्यति इति महान् दोष आपद्येत ?

अस्योत्तरं दीयते — अत्र श्रीभट्टाकलंकदेवस्य प्रश्नोत्तर-वचनैरेव —

''आत्मा औपशमिकादिभावपरित्यागी वा स्यात्, अपरित्यागी वा ? किञ्च, अतो यदि तावत् परित्यजति, शून्यता प्राप्नोति आत्मनः, स्वभावाभावाद् आनेरौष्ण्यस्वभावपरित्यागेऽभाववत्। अथापरित्यागी, क्रोधादिस्वभावापरित्यागादात्मनोऽनिर्मोक्षः प्राप्नोतीति ?

तन्न, किं कारणं ? आदेशवचनात्। अनादिपारिणामिकचैतन्यद्रव्यार्थादेशात् स्यात् स्वभावापरित्यागी, आदिमदौदयिकादिपर्यायार्थादेशात् स्यात् स्वभावपरित्यागी सप्तभंगी पूर्ववत्। यस्यैकान्तेन स्वभावपरित्यागः स्यादपरित्यागी वा, तस्य यथोक्तदोषः स्यात् नानेकान्तवादिनः।

अप्रतिज्ञानात् ।२४। नैतत्प्रतिजानीमहे — 'स्वभावपरित्यागादपरित्यागाद्वा मोक्षः' इति। किं तर्हि ? अष्टतयकर्मपरिणामवशीकृतस्यात्मनः द्रव्यादिबाह्यनिमित्तसन्निधाने सत्याभ्यन्तरसम्यग्दर्शनादिमोक्ष-मार्गप्रकर्षावाप्तौ कृत्स्नकर्मसंक्षयात् मोक्षो विवक्षितस्ततो न दोषः।

'कर्मनिमित्तानामौदयिकादीनामभावेऽपि क्षायिकभावसन्निधानादात्मनो नाभावो विशेषोपलब्धेरिति[१]।''

यहाँ कोई शंका करता है कि यदि ये भाव जीवात्मा के हैं तो जीव कभी भी उन्हें छोड़ नहीं सकता है, पुनः औदयिक आदि स्वभावों का अभाव होने पर जीव को मोक्ष कभी भी नहीं होगा, तब तो यह महान दोष हो जाएगा ?

इस शंका का उत्तर श्री भट्टाकलंकदेव ने प्रश्नोत्तर के रूप में दिया है, जो कि यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

प्रश्न — ''आत्मा औपशमिकादि भावों का त्याग करता है कि नहीं, यदि त्याग करता है तो शून्यता का प्रसंग आयेगा आत्मा के स्वभाव का अभाव हो जाने से, जैसे — अग्नि की स्वभावरूप उष्णता के अभाव में अग्नि का अभाव हो जाता है और यदि आत्मा औपशमिकादि भावों को नहीं छोड़ता है तो क्रोधादिरूप औदयिक आदि भावों के बने रहने पर मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ?

उत्तर — ऐसा नहीं कहना चाहिए। किस कारण से नहीं कहना चाहिए ? आदेश वचन होने से। अनेकान्तवाद में अनादि पारिणामिक चैतन्य द्रव्य की दृष्टि से स्वभाव का अपरित्याग और आदिमान् औदयिक आदि पर्यायों की दृष्टि से स्वभाव का त्याग ये दोनों ही पक्ष स्याद्वाद से पूर्ववत् सप्तभंगीरूप में बन जाते हैं —

जिसके यहाँ एकान्त से स्वभाव का परित्याग अथवा एकान्त से स्वभाव का अपरित्याग होता है, उसके यहाँ ये दूषण आते हैं किन्तु अनेकान्तवादियों के यहाँ ये दूषण नहीं आते हैं।

अथवा शंकाकार ने आचार्यों के अभिप्राय को नहीं जाना। क्योंकि आचार्य ऐसा नहीं कहते हैं कि स्वभाव के त्याग से या अत्याग से मोक्ष होता है।

प्रश्न — तो आचार्य का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर — ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार के कर्मों से बद्ध आत्मा के द्रव्य, क्षेत्रादि बाह्य निमित्त के सन्निधान होने पर अन्तरंग में सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग की प्रकर्षता की प्राप्ति होने पर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाने से मोक्ष होता है-यह आचार्य का अभिप्राय है इसलिए स्वभाव का त्याग या अत्याग में दिये गये उपर्युक्त दोष नहीं आते। ''कर्म निमित्तजन्य औदयिक आदि भावों का अभाव हो जाने पर भी क्षायिक भावों का सन्निधान

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक अ. २, सूत्र १, वार्तिक २३-२४-२५।

अत्र सिद्धान्तग्रंथे करणानुयोगे इमे भावाः जीवस्य स्वभावाः स्वतत्त्वं वा परिगीयन्ते तथापि द्रव्यानुयोगे अध्यात्मग्रंथे नियमसारप्राभृते अमीः केचिदपि भावा जीवस्य न सन्तीति कथ्यते। तथाहि—

णो खइयभावठाणा णो खइउवसमसहावठाणा वा।।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।

ननु क्षायिकभावः सिद्धस्यापि, तर्हि जीवस्य क्षायिकभावो नेति गाथायां कथं कथ्यते ? युक्तमुक्तं भवद्भिः, परमत्र जीवस्य त्रिकालनिरूपाधिस्वरूपस्य विवक्षास्ति। किञ्च, शुद्धनिश्चयनयेन कदाचिदपि जीवस्य कर्मसंबंधो नास्ति, पुनः कर्मणां क्षयात् क्षायिकभावोऽपि कथं भवेत् ? अतो नास्ति एष भावः। किंच—यदि जीवस्य बंधनं नास्ति तर्हि मोक्षणमपि कथं सिद्धयेत् ? अतोऽत्र टंकोत्कीर्णज्ञायकैक भावस्य विवक्षितत्वात् क्षायिकभावोऽपि जीवस्य नास्तीति आख्यायते श्रीकुंदकुंददेवैः[१]।

पंचास्तिकायग्रन्थे एवमेव वर्तते, तथाहि—

'कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं।।५८।।

अस्या व्याख्यायां श्रीअमृतचन्द्रसूरिभिः कथितम्—

'क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनन्तोऽपि कर्मणः क्षयेनोत्पद्यमानत्वात् सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः[२]।'

होने से आत्मा के अभाव या निर्मोक्ष का प्रसंग नहीं आता, क्योंकि विशेष स्वभाव की उपलब्धि होती है अर्थात् कर्मजन्य विभाव भाव के अभाव में आत्मा की विशिष्ट अवस्था उत्पन्न होती है।"

इस करणानुयोग के सिद्धांत ग्रंथ में ये भाव जीव के स्वभाव अथवा स्वतत्त्व माने गये हैं, तथापि द्रव्यानुयोग के अध्यात्म ग्रंथ नियमसार प्राभृत में ये कोई भी भाव जीव के नहीं है ऐसा कहा गया है। उसे यहाँ कहते हैं—

गाथार्थ—जीव के क्षायिकभाव स्थान नहीं है, क्षयोपशमभावस्थान नहीं है, औदयिकभाव स्थान नहीं है और उपशमस्वभावस्थान भी नहीं हैं।।४१।।

शंका—ये क्षायिक भाव जब सिद्धों में भी हैं तो पुनः जीव के क्षायिक भाव नहीं है ऐसा गाथा में कैसे कहा है ?

समाधान—आपने ठीक कहा है, किन्तु यहाँ जीव के त्रैकालिक उपाधिरहित स्वरूप की विवक्षा है। दूसरी बात यह है कि शुद्ध निश्चयनय से कदाचित् भी जीव के कर्म का संबंध नहीं है। पुनः कर्मों के क्षय से क्षायिक भाव भी कैसे होगा ? इसलिए क्षायिक भाव नहीं है तथा च, यदि जीव के बंधन नहीं है तो छूटना भी कैसे होगा ? अतः यहाँ पर टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक भाव ही विवक्षित होने से "जीव के क्षायिक भाव भी नहीं है" ऐसा श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा है।

पंचास्तिकाय ग्रंथ में भी ऐसा ही कहा है उसी को कहते हैं—

गाथार्थ—जीव में कर्म के बिना उदय, उपशम, क्षायिक या क्षायोपशमिक भाव नहीं होते हैं। इसलिए ये चारों भाव कर्मकृत है।।५८।।

इसी की व्याख्या (टीका) में श्री अमृतचन्द्रसूरि ने भी कहा है—क्षायिकभाव यद्यपि स्वभावों की प्रकटतारूप होने से अनंत हैं, फिर भी कर्म क्षय से उत्पन्न हुआ होने से सादि है इसलिए कर्मकृत ही कहा गया है।

---

१. नियमसार प्राभृत पृ. १३३ (स्याद्वादचन्द्रिकाटीका)। २. पंचास्तिकाय गा. ५८।

तात्पर्यमेतत्—अत्र षट्खण्डागमग्रंथे व्यवहारनयस्यैव प्राधान्यं न तु निश्चयनयस्य अतो इमे भावा जीवस्य स्वभावाः भवन्तीति ज्ञातव्यं तथापि निश्चयनयमवलम्ब्य निजशुद्धपरमात्मतत्त्वं यत् सदाशिवरूपेण सदैवास्ति तस्य श्रद्धानं कृत्वा तस्योपलब्धये एव प्रयत्नः कर्तव्यः।

एवं प्रथमस्थले भावानुगमकथनस्य प्रतिज्ञासूत्रकत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना मिथ्यादृष्टेः भावनिश्चयार्थं सूत्रमवतरति—

ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो? ओदइओ भावो।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**'अर्थशब्दप्रत्ययाः तुल्यनामधेया भवन्ति' इति न्यायात् हेतुवाचक इतिशब्दसहितः मिथ्यादृष्टिशब्दो मिथ्यात्वभावं कथयति।'' पंचसु भावेसु एसो को भावो त्ति पुच्छिदे ओदइओ भावो त्ति तित्थयरवयणादो दिव्वझुणी विणिग्गया[१]।''**

मिथ्यात्वकर्मणः उदयेन उत्पन्नमिथ्यात्वपरिणामः कर्मोदयजनितः इति औदयिको भवति।

ननु मिथ्यादृष्टेः अन्येऽपि भावा सन्ति, ज्ञानदर्शनगतिलिंगकषायभव्याभव्यत्वादयः संसारिणो जीवस्य, तर्हि कथमेक एव भावः?

उक्तं च—

मिच्छत्ते दस भंगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा।
तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव।।

तात्पर्य यह है कि यहाँ षट्खण्डागम ग्रंथ में व्यवहारनय की ही प्रधानता है, न कि निश्चयनय की। अतः ये भाव जीव के स्वभाव होते हैं ऐसा जानना चाहिए, फिर भी निश्चयनय का अवलम्बन लेकर सदाशिवरूप और सदैव विद्यमान रहने वाले निज शुद्ध परमात्मतत्त्व की श्रद्धा करके उसी को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भावानुगम के कथन की प्रतिज्ञा को सूचित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब मिथ्यादृष्टि जीव के भावों का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

ओघ निर्देश की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"अर्थ, शब्द और प्रत्यय तुल्य नाम वाले होते हैं" इस न्याय से हेतुवाचक 'इति' शब्द आया है। ऐसा "मिथ्यादृष्टि" यह शब्द मिथ्यात्व के भाव को कहता है। पाँचों भावों में से यह कौन सा भाव है ? ऐसा पूछने पर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थंकर के मुख से दिव्यध्वनि निकली है। मिथ्यात्वकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला मिथ्यात्व परिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है।

शंका—मिथ्यादृष्टि के अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कषाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावों के अभाव मानने पर संसारी जीव के होते हैं, तो उसमें केवल एक ही भाव क्यों होगा। कहा भी है—

गाथार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में उक्त भावों संबंधी दश भंग होते हैं। सासादन और मिश्रगुणस्थान में भी इसी प्रकार दश भंग जानना चाहिए। अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वे ही भंग त्रिगुणित और चतुर्हीन

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका), पु. ५, पृ. १९४।

देसे खओवसमिए विरदे खवगाण ऊणवीसं तु।
ओसामगेसु पुध पुध पणतीसं भावदो भंगा।।[१]

ततो मिथ्यादृष्टिजीवस्य औदयिकश्चैव भावोऽस्ति, अन्ये भावा न सन्तीति न घटते ?

नैष दोषः, मिथ्यादृष्टेरन्ये भावाः न सन्तीति सूत्रे प्रतिषेधो नास्ति, किन्तु मिथ्यात्वं मुक्त्वा येऽन्ये गतिलिंगादयः साधारणभावास्ते मिथ्यादृष्टित्वस्य कारणं न भवन्ति। मिथ्यात्वोदयः एकश्चैव मिथ्यात्वस्य कारणं, तेन 'मिथ्यादृष्टिः' इति भावः औदयिक इति प्ररूपितः।

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिभावकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना सासादनसम्यग्दृष्टेः भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**सासादनगुणस्थाने पारिणामिकभावो भवति। कश्चिदाशंकते—भावः पारिणामिको न घटते ? अन्येभ्योऽनुत्पन्नस्य परिणामस्य अस्तित्वविरोधात्। यदि अन्येभ्यः उत्पत्तिरिष्येत, तर्हि न स पारिणामिकः, निष्कारणस्य सकारणत्वविरोधात् ?**

आचार्यदेवः परिहरति—यः कर्मणां उदयोपशमक्षयक्षयोपशमैः विना अन्येभ्यः उत्पन्नः परिणामः

अर्थात् (१०×३-४=२६) छब्बीस होते हैं। इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थान में भी होते हैं। क्षपक श्रेणी वाले चारों क्षपकों के उन्नीस भंग होते हैं। उपशमश्रेणी वाले चारों उपशामकों में पृथक् पैंतीस भंग भाव की अपेक्षा होते हैं।।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव के केवल एक औदयिक भाव ही होता है और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के औदयिक भाव के अतिरिक्त अन्यभाव नहीं होते हैं, इस प्रकार का सूत्र में प्रतिषेध नहीं किया गया है। किन्तु मिथ्यात्व को छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्यादृष्टित्व के कारण नहीं होते हैं। एक मिथ्यात्व का उदय ही मिथ्यादृष्टित्व का कारण है इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीव का भाव कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीव का भाव प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? पारिणामिक भाव है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सासादनगुणस्थान में पारिणामिक भाव होता है।

यहाँ पर कोई शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि दूसरों से नहीं उत्पन्न होने वाले परिणाम के अस्तित्व का विरोध है। यदि अन्य से उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता, क्योंकि निष्कारण वस्तु के सकारणत्व का विरोध है ?

उक्त शंका का परिहार करते हुए आचार्यदेव कहते हैं—जो कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के बिना अन्य कारणों से उत्पन्न हुआ परिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है, न कि निष्कारण

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका), पु. ५, पृ. १९४।

सः पारिणामिको भण्यते। न च निष्कारणो भावः पारिणामिकः, कारणमंतरेणोत्पन्नपरिणामाभावात्।

सत्त्वप्रमेयत्वादयो भावा निष्कारणा उपलभ्यन्ते इति चेत् ?

न, विशेषसत्त्वादिस्वरूपेण अपरिणमद्-सत्त्वादि सामान्यानुपलंभात्। सासादनसम्यग्दृष्टित्वमपि सम्यक्त्व-चारित्रोभयविरोधि-अनंतानुबंधिचतुष्कस्योदयमन्तरेण न भवति अतः औदायिकमिति किन्नेष्यते ?

सत्यमेतत्, किंतु नात्र तथा विवक्षास्ति, किंच आदिमचतुर्गुणस्थानभावप्ररूपणायां दर्शनमोहनीयव्यतिरिक्तशेषकर्मणां उदयस्य विवक्षाभावात्। ततः विवक्षितस्य दर्शनमोहनीयस्य कर्मणः उदयेन उपशमेन क्षयेण क्षयोपशमेण वा न भवतीति निष्कारणं सासादनसम्यक्त्वं, अत एव पारिणामिकत्वमिति कथ्यते।

एवं तृतीयस्थले सासादनसम्यग्दृष्टिभावप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति सम्यग्मिथ्यादृष्टि भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सम्यग्मिथ्यात्वोदये सति श्रद्धानाश्रद्धानात्मकः शबलितः जीवपरिणामः उत्पद्यते। तत्र यः श्रद्धानांशः सः सम्यक्त्वावयवः। तं सम्यग्मिथ्यात्वोदयो न विनाशयति इति सम्यग्मिथ्यात्वं क्षायोपशमिकं ज्ञातव्यं।**

एवं चतुर्थस्थले सम्यग्मिथ्यात्वभावकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

भाव को पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि कारण के बिना उत्पन्न होने वाले परिणाम का अभाव है।

शंका—सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारण के बिना भी उत्पन्न होने वाले पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशेष सत्व आदि के स्वरूप से नहीं परिणत होने वाले सत्त्वादि सामान्य नहीं पाये जाते हैं।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनों के विरोधी अनन्तानुबंधी चतुष्क के उदय के बिना नहीं होता है, इसलिए इसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है, क्योंकि आदि के चार गुणस्थानों संबंधी भावों की प्ररूपणा में दर्शनमोहनीय कर्म के सिवाय शेष कर्मों के उदय की विवक्षा का अभाव है। इसलिए विवक्षित सासादन सम्यक्त्व दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से, उपशम से, क्षय से अथवा क्षयोपशम से नहीं होता है अतः यह सासादनसम्यक्त्व निष्कारण है और इसलिए इसके पारिणामिकपना भी है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के भाव बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने पर श्रद्धान और अश्रद्धानरूप जो जीव के मिश्रित परिणाम उत्पन्न होते हैं वह सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान की अवस्था कही जाती है। उनमें जो श्रद्धानरूप अंश है वह सम्यक्त्व का अवयव है। वह सम्यग्मिथ्यात्व के उदय होने पर नष्ट नहीं होता है ऐसा जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्व को क्षायोपशमिक भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सम्यग्मिथ्यात्व भाव का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

संप्रति असंयतसम्यग्दृष्टीनां भावकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

असंजदसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।।५।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वसर्वघातिस्पर्धकानां सम्यक्त्वदेशघातिस्पर्धकानां च उदयाभावलक्षणेन उपशमेन उपशमसम्यक्त्वमुत्पद्यते अतः स असंयतसम्यग्दृष्टिः औपशमिकभावः। एतासा तिसृणां प्रकृतीनां क्षयेण उत्पन्नः क्षायिको भावः। सम्यक्त्वप्रकृतेः देशघातिस्पर्धकानामुदयेन सह वर्तमानः सम्यक्त्वपरिणामः क्षायोपशमिकः। यथास्थितार्थश्रद्धानघातनशक्तिः सम्यक्त्वप्रकृतिस्पर्धकेषु यदा क्षीणा भवति तदा तेषां क्षयसंज्ञा। क्षयंप्राप्तस्पर्धकानां उपशमः प्रसन्नता क्षयोपशमः। तत्रोत्पन्नत्वात् वेदकसम्यक्त्वं क्षायोपशमिकमिति भण्यते। एवं सम्यक्त्वे त्रयो भावाः सन्ति न चान्ये।**

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने गतिलिंगादयः भावा उपलभ्यन्ते तेषां कथनमत्र कथं नास्ति ?

भवतु नाम तेषां भावानामस्तित्वं किंतु तेभ्यः सम्यक्त्वं नोत्पद्यते। ततः सम्यग्दृष्टिः अपि औदयिकादिव्यपदेशं न लभते इति गृहीतव्यं।

सम्यग्दृष्टेः त्रीन् भावान् कथयित्वा असंयतस्य यत् असंयतत्वं अपेक्ष्य भावः स औदयिकः कथ्यते। किंच—संयमघातिनां कर्मणामुदयेन येनासौ असंयतस्तेन 'असंयतः' अयं औदयिको भावः भवति।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के भावों का कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।५।।

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि का असंयतत्व औदयिक भाव से है।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के सर्वघाती स्पर्धकों के तथा सम्यक्त्व प्रकृति के देशघाति स्पर्धकों के उदयाभावरूप लक्षण वाले उपशम से उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है। इन्हीं तीनों प्रकृतियों के क्षय से उत्पन्न होने वाले भाव को क्षायिक कहते हैं। सम्यक्त्व प्रकृति के देशघाती स्पर्धकों के उदय के साथ रहने वाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है। यथास्थित अर्थ के श्रद्धान को घात करने वाली शक्ति जब सम्यक्त्वप्रकृति के स्पर्धकों में क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षयसंज्ञा है। क्षय को प्राप्त हुए स्पर्धकों के उपशम को अर्थात् स्वच्छता को क्षयोपशम कहते हैं। उसमें उत्पन्न होने से वेदक सम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्व में तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि में गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहाँ क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टि में भले ही गति, लिंग आदि भावों का अस्तित्व रहे, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावों के व्यपदेश को नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि के तीनों भाव कहकर असंयत के जो असंयतत्व की अपेक्षा भाव होता है, वह औदयिक

अधस्तनगुणस्थानानामौदयिकमसंयतत्वं किन्न प्ररूपितं ?

नैष दोषः, एतेनैव अधस्तनगुणस्थानानां औदयिकासंयतभावोपलब्धेः।

येन इदं षष्ठं सूत्रमन्तदीपकः तेन अतीतगुणस्थानानां सर्वेषां औदयिकः असंयमभावोऽस्ति इति सिद्धं। पुनः अनेनैव एतदपि ज्ञायते यदुपरिमाणां गुणस्थानानां असंयमभावप्रतिषेधोऽपि कथितो भवति।

एवं पंचमस्थले असंयतसम्यग्दृष्टिभावप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो? खओवसमिओ भावो।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**क्षयोपशमसंज्ञिते चारित्रमोहनीयकर्मोदये सति यतः संयतासंयत-प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयतत्वं च उत्पद्यते, तेन इमे त्रयोऽपि भावाः क्षायोपशमिकाः भवन्ति। प्रत्याख्यानावरण-चतुःसंज्वलन-नवनोकषायाणामुदयस्य सर्वात्मना चारित्रविनाशनशक्तेः अभावात् तस्य क्षयसंज्ञा। तासां चैव उत्पन्नचारित्रं श्रेण्याः अनावरणस्य वा उपशमसंज्ञा। ताभ्यां क्षयेण उपशमेण—द्वाभ्यां उत्पन्ना एते त्रयोऽपि भावाः क्षायोपशमिकाः जाताः।**

कश्चिदाह—दर्शनमोहनीयकर्मणः उपशम-क्षय-क्षयोपशमान् आश्रित्य संयतासंयतादीनामौपशमिकादयो

कहलाता है। चूँकि संयम के घात करने वाले कर्मों के उदय से यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह औदयिकभाव होता है।

शंका—नीचे के गुणस्थानों में असंयतपने को औदयिक क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इसी सूत्र से उन अधस्तन गुणस्थानों के औदयिक असंयतभाव की उपलब्धि होती है। चूँकि यह छठा सूत्र अन्तदीपक है, इसलिए सभी अतीत गुणस्थानों का असंयमभाव औदयिक होता है यह बात सिद्ध हुई। यहाँ तक के गुणस्थानों के असंयमभाव की अन्तिम सीमा बताने के लिए पुनः इसी सूत्र से जाना जाता है कि ऊपर के गुणस्थानों के असंयमभाव का प्रतिषेध भी कहा गया है।

इस प्रकार से पंचम स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के भावों का प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि क्षयोपशम नाम वाले चारित्रमोहनीयकर्म का उदय होने पर संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव क्षायोपशमिक हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क के उदय में तथा संज्वलनचतुष्क एवं नव नोकषायों के उदय में सभी प्रकार से चारित्र विनाश करने की शक्ति का अभाव है, इसलिए उनके उदय की क्षय संज्ञा है। उन्हीं प्रकृतियों की उत्पन्न हुए चारित्र को अथवा श्रेणी को आवरण नहीं करने के कारण उपशम संज्ञा है। क्षय और उपशम, इन दोनों के द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी क्षायोपशमिक हो जाते हैं।

शंका—दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय और क्षयोपशम का आश्रय करके संयतासंयतादिकों के

भावाः किन्न प्ररूपिताः ?

न, ततः संयमासंयमादिभावानां उत्पत्तेरभावात्। न चात्र सम्यक्त्वविषया पृच्छा अस्ति, येन दर्शनमोहनिबंधनौपशमिकादिभावैः संयतासंयतादीनां व्यपदेशो भवेत्। न चैवं, तथानुपलम्भात्।

एवं षष्ठस्थले संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां भावकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति उपशामकानां भावनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? ओवसमिओ भावो।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चारित्रमोहनीयस्य एकविंशतिप्रकृतीः उपशामयति अतः चतुर्णां औपशमिको भावः।**

भवतु नाम, उपशान्तकषायस्य औपशमिको भावः, उपशमिताशेषकषायत्वात् न शेषाणां, तत्राशेषमोहस्योपशमाभावात् ?

नैतद् वक्तव्यं, अनिवृत्तिबादरसांपरायिक-सूक्ष्मसांपरायिकयोः उपशमितस्तोककषायजनितोपशम-परिणामानां औपशमिकभावस्य अस्तित्वाविरोधात्।

अनुपशान्ताशेषकषायस्य अपूर्वकरणस्य कथमौपशमिको भावः ?

औपशमिकादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्म के उपशमादिक से संयमासंयमादि भावों की उत्पत्ति नहीं होती। दूसरे, यहाँ पर सम्यक्त्वविषयक पृच्छा (प्रश्न) भी नहीं है, जिससे कि दर्शनमोहनीयनिमित्तक औपशमिकादि भावों की अपेक्षा संयतासंयतादिक के औपशमिकादि भावों का व्यपदेश हो सके। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उस प्रकार की व्यवस्था नहीं पाई जाती है।

इस प्रकार छठे स्थल में संयतासंयत-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतों के भावों का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब उपशामकों के भाव निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव है।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वे चारित्रमोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का उपशमन करते हैं, इसलिए चारों गुणस्थानवर्ती जीवों के औपशमिक भाव माना जाता है।

शंका—समस्त कषाय और नोकषायों के उपशमन करने से उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव के औपशमिक भाव भले ही रहे, किन्तु अपूर्वकरणादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवों के औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि उन गुणस्थानों में समस्त मोहनीय कर्म के उपशम का अभाव है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि कुछ कषायों के उपशमन किये जाने से उत्पन्न हुआ है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण, बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्परायसंयत के उपशमभाव का अस्तित्व मानने में कोई विरोध नहीं है।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कषाय का जिसने, ऐसे अपूर्वकरणसंयत के औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

नैतत्, तस्यापि अपूर्वकरणपरिणामैः प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्याः कर्मखंडान् निर्जरयतः स्थिति-अनुभागखण्डानि घातयित्वा क्रमेण स्थिति-अनुभागौ संख्यातानंतगुणहीनौ कुर्वतः प्रारब्धोपशमनक्रियस्य तदविरोधात्।

कर्मणामुपशमेणोत्पन्नो भाव औपशमिको भण्यते। अपूर्वकरणस्य तदभावात् नौपशमिको भावः इति चेत् ?

न, उपशमनशक्तिसमन्वितापूर्वकरणस्य तदस्तित्वाविरोधात्। तथा च उपशमे जातः उपशमिकः, कर्मणामुपशमनार्थं जातोऽपि औपशमिको भाव इति सिद्धं। अथवा भाविकाले भूतोपचारादपूर्वकरणस्य औपशमिको भावः, सकलासंयमे प्रवृत्तचक्रधरस्य तीर्थकरस्य तीर्थकरव्यपदेश इव ज्ञातव्यं।

एवं सप्तमस्थले उपशामकानां भावकथनमुख्यत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना क्षपकाणां सयोगि-अयोगिनोश्च भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवली त्ति को भावो ? खइओ भावो।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्णां क्षपकाणां सयोगिकेवलिनां अयोगिकेवलिनां च क्षायिको भावः कथ्यते।**

कश्चिदाह—सयोगि-अयोगिकेवलिनां क्षपितघातिकर्मणां भवतु नाम क्षायिको भावः, क्षीणकषायस्यापि

समाधान—नहीं, क्योंकि अपूर्वकरण परिणामों के द्वारा प्रतिसमय असंख्यातगुणश्रेणीरूप से कर्मस्कंधों की निर्जरा करने वाले तथा स्थिति और अनुभाग कांडकों को घात करके कषायों की स्थिति और अनुभाग को क्रम से संख्यात और अनन्तगुणित हीन करने वाले तथा उपशमन क्रिया का प्रारंभ करने वाले ऐसे अपूर्वकरणसंयत के उपशमभाव मानने में कोई विरोध नहीं है।

शंका—कर्मों के उपशम से उत्पन्न होने वाला भाव औपशमिक कहलाता है। किन्तु अपूर्वकरणसंयत के कर्मों के उपशम का अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमनशक्ति से समन्वित अपूर्वकरणसंयत के औपशमिकभाव के अस्तित्व को मानने में कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार उपशम होने पर उत्पन्न होने वाला औपशमिक कहलाता है और कर्मों के उपशमन हेतु उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई। अथवा, भविष्य में होने वाले उपशमभाव में भूतकाल का उपचार करने से अपूर्वकरण के औपशमिक भाव बन जाता है, जैसे कि सर्व प्रकार के असंयम में प्रवृत्त हुए धर्मचक्र को धारण करने वाले के 'तीर्थंकर' यह व्यपदेश बन जाता है।

इस प्रकार सातवें स्थल में उपशामकों का भाव कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब क्षपकों का, सयोगिकेवलियों का और अयोगिकेवलियों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौन सा भाव है ? क्षायिकभाव है।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले चारों गुणस्थानवर्ती क्षपकों के, सयोगिकेवलियों के और अयोगिकेवलियों के क्षायिकभाव कहा गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि घातिकर्मों के क्षय करने वाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवली के क्षायिक

भवतु, क्षपितमोहनीयत्वात्। न शेषाणां तत्र कर्मक्षयानुपलंभात् ?

न, बादर-सूक्ष्मसांपरायिकानां अपि क्षपिकमोहैकदेशानां कर्मक्षयजनितभावोपलंभात्।

अविनष्टकर्मणः अपूर्वकरणस्य कथं क्षायिको भावः ?

नैतत्, तस्यापि कर्मक्षयनिमित्तपरिणामोपलंभात्। अत्रापि कर्मणां क्षये जातः क्षायिकः, क्षयार्थं जातो वा क्षायिको भावः कथ्यते। अत्र द्विविधा शब्दव्युत्पत्तिर्ज्ञातव्या। उपचारेण वा अपूर्वकरणस्य क्षायिको भावः।

उपचारमाश्रित्य कथ्यमाने अतिप्रसंगः किन्न भवतीति चेत् ?

न, प्रत्यासत्तेः — समीपवर्त्तिअर्थप्रसंगात् अतिप्रसंगदोषप्रतिषेधात्।

तात्पर्यमेतत् — ये केचिद् साधवः श्रेणिमारूढाः सन्ति कर्मक्षयार्थं पुरुषार्थं कुर्वन्तः प्रयतन्ते ते यद्यपि कर्मक्षयं न कुर्वन्ति तथापि तेषां भावः क्षायिकः उच्यते भाविनि कार्ये भूतोपचारात्, एवं ज्ञात्वा वयमपि कर्मक्षयार्थं भावयामः। यावत्तादृशी शक्तिर्नो भवेत् तावद् यथाशक्ति चारित्रं पालयामः, अनेनैव प्रयत्नेन कस्मिंश्चिद् दिवसे नियमेन कर्मक्षयो भविष्यत्येव।

एवं अष्टमस्थले क्षपकसयोग्ययोगिकेवलिनां भावप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

भाव भले ही होवे। क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ के भी क्षायिक भाव भले ही रहे, क्योंकि उनके भी मोहनीयकर्म का क्षय हो गया है। किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष तीन क्षपकों के क्षायिक भाव मानना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि उनमें किसी भी कर्म का क्षय नहीं पाया जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि मोहनीयकर्म के एकदेश के क्षपण करने वाले बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकों के भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है।

शंका — किसी भी कर्म के नष्ट नहीं करने वाले अपूर्वकरणसंयत के क्षायिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि उनके भी कर्मक्षय के निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं। यहाँ पर भी कर्मों के क्षय होने पर उत्पन्न होने वाला भाव क्षायिक है तथा कर्मों के क्षय के लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकार की शब्द-व्युत्पत्ति ग्रहण करना चाहिए। अथवा उपचार से अपूर्वकरण संयत के क्षायिक भाव मानना चाहिए।

शंका — इस प्रकार सर्वत्र उपचार के आश्रय करने पर अतिप्रसंग दोष क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थ के प्रसंग के अतिप्रसंग दोष का प्रतिषेध हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि जो कोई भी साधु — दिगम्बर मुनि क्षपक श्रेणी में आरोहण कर रहे हैं, कर्मों को नष्ट करने का पुरुषार्थ करते हुए वे प्रयत्न में लगे रहते हैं। वे यद्यपि सम्पूर्ण कर्मों का वहाँ पर क्षय नहीं कर पाते हैं, फिर भी वहाँ उनके क्षायिक भाव कहे जाते हैं। क्योंकि भविष्यकालीन कार्य में भूतकाल का उपचार हो जाता है ऐसा जानकर हम सबको भी कर्मक्षय करने की भावना भानी चाहिए। जब तक वैसी कर्मक्षय की शक्ति नहीं है तब तक अपनी शक्ति के अनुसार चारित्र का पालन करें, इसी प्रयत्न के द्वारा किसी न किसी दिन नियम से कर्मों का क्षय होगा ही होगा।

इस प्रकार आठवें स्थल में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली क्षपक के भावों का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

संप्रति नवग्रहशान्त्यर्थं क्रमेण पद्मप्रभ-चन्द्रप्रभ-वासुपूज्य-मल्लिनाथ-वर्द्धमान-पुष्पदन्त-मुनिसुव्रत-नेमिनाथ-पार्श्वनाथतीर्थंकरेभ्यो नमो नमः। येषां चरणकमलयुगलानि अत्र मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे स्थाप्यन्ते तानि चरणयुग्मान्यपि सर्वकालं जयन्तुतराम्।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रन्थे श्रीभूतबलिसूरिकृत-भावानुगमे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण रचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यस्य चारित्रचक्रवर्ति श्रीशांतिसागरस्य शिष्यवीरसागराचार्यस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गुणस्थाने भावप्ररूपकः तृतीयो महाधिकारः समाप्तः।

अब नवग्रहों की शांति के लिए क्रम से श्री पद्मप्रभ भगवान (सूर्यग्रहारिष्टनिवारक), श्री चन्द्रप्रभ भगवान (सोमग्रहारिष्टनिवारक), श्री वासुपूज्य भगवान (मंगलग्रहारिष्टनिवारक), श्री मल्लिनाथ भगवान (बुधग्रहारिष्टनिवारक), श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र (गुरुग्रहारिष्ट निवारक), श्री पुष्पदंत भगवान (शुक्रग्रहारिष्टनिवारक), श्री मुनिसुव्रतभगवान (शनिग्रहारिष्टनिवारक), श्री नेमिनाथ भगवान (राहुग्रहारिष्टनिवारक) एवं श्री पार्श्वनाथभगवान (केतुग्रहारिष्टनिवारक) को मेरा बारम्बार नमस्कार है। जिनके चरणकमल युगल इस मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में मैंने स्थापित किये हैं, वे चरणकमल भी सदैव जयशील होवें।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में श्री भूतबलीसूरि रचित भावानुगम प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्यकृत धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित, बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के शिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना निर्माण की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांत-चिंतामणि नाम की टीका में गुणस्थानों में भावों का निरूपण करने वाला तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।

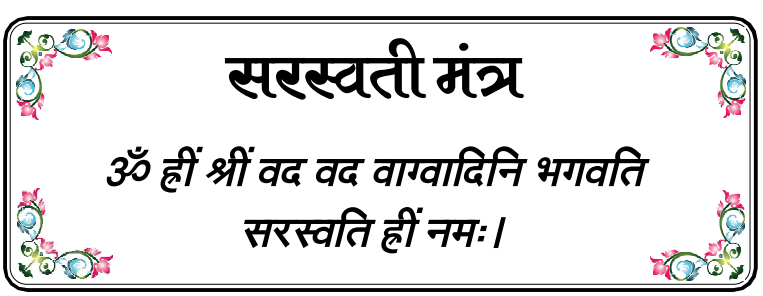

चतुर्थो महाधिकारः
अथ मार्गणाधिकारः

अथ येषां देवाधिदेवानां प्रथमतीर्थकरादिब्रह्मणां विशालकायमूर्त्तिं निर्मापयितुं घोषणा कृता तेभ्यः श्रीऋषभदेवेभ्योऽस्माकं पुनः पुनः नमोऽस्तु सर्वविघ्नपरिहारार्थमिति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिरन्तरस्थलैः विंशतिसूत्रैः भावानुगमे गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले नरकगतौ भावप्रतिपादनत्वेन 'आदेसेण' इत्यादि नवसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ भावनिरूपणत्वेन ''तिरिक्ख'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले भावकथनमुख्यत्वेन मनुष्यगतौ ''मणुसगदीए'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनंतरं देवगतौ भावप्रतिपादनत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिसप्तसूत्राणि

चतुर्थ महाधिकार
अथ मार्गणा अधिकार प्रारंभ

जिन देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर आदिब्रह्मा की विशालकाय मूर्ति के निर्माण की मैंने प्रेरणा प्रदान की है, उन श्री ऋषभदेव भगवान को समस्त विघ्नों के परिहार हेतु मेरा पुनः-पुनः नमस्कार होवे।

भावार्थ—मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर सन् १९९६ में जब पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने संघ सहित वर्षायोग सम्पन्न किया था। उसी के मध्य शरदपूर्णिमा—२६ अक्टूबर को उनके ध्यान एवं चिंतन में भावना उत्पन्न हुई कि यहाँ पर्वत पर अखण्ड शिला में भगवान ऋषभदेव की १०८ फुट उत्तुंग प्रतिमा का निर्माण किया जावे, पुनः कार्तिक कृ. एकम्—२७ अक्टूबर को उनके द्वारा ज्यों ही घोषणा की गई, भक्तों में हर्ष की लहर दौड़ गई। पुनः मूर्ति निर्माण की सम्पूर्ण योजना बनकर वहाँ कार्य का शुभारंभ हुआ। इसीलिए वीर निर्वाण संवत् २५२२ में कार्तिक कृ. षष्ठी, १ नवम्बर १९९६ को इस पंचम पुस्तक के चतुर्थ अधिकार का गद्यरूप मंगलाचरण लिखते हुए पूज्य माताजी ने उन भविष्य में प्रगट होने वाली भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा को नमन करके अध्याय लेखन का शुभारंभ किया है।

उनकी भावनानुसार देश की सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के आर्थिक सहयोग से मांगीतुंगी के पर्वत पर प्रतिमा निर्माण का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। पूज्य ज्ञानमती माताजी के सुयोग्य शिष्य कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन की अध्यक्षता में हो रहा यह विश्व का अप्रतिम कार्य शीघ्र सम्पन्न हो, यही भगवान जिनेन्द्र से मेरी प्रार्थना है।

अब गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है—

अब यहाँ चार अन्तरस्थलों में बीस सूत्रों के द्वारा भावानुगम में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में नरकगति में भावों का प्रतिपादन करने वाले ''आदेसेण'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तिर्यंचगति में भावनिरूपण करने हेतु ''तिरिक्ख'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में मनुष्यगति के अन्दर भावों का निरूपण करने वाला ''मणुसगदीए'' इत्यादि एक सूत्र है। तदनंतर देवगति में भावों का प्रतिपादन करने वाले ''देवगदीए'' इत्यादि सात सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह

इति समुदायपातनिका।

संप्रति नरकगतिप्राप्तनारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो।।१०।।

सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।।११।।

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।१२।।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा, खइओ वा, खओवसमिओ वा भावो।।१३।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्टीनां नारकाणां मिथ्यात्वोदयजनिताश्रद्धानपरिणामोपलंभात् औदयिको भावः कथ्यते। किंच मिथ्यादृष्टेः मिथ्यात्वोदयः एव कारणं, तेन विना तदनुत्पत्तेः।**

विवक्षितदर्शनमोहनीयस्य उदयेन उपशमेन क्षयेण क्षयोपशमेन वा सासादनसम्यग्दृष्टिर्न भवति इति तस्य पारिणामिको भावः कथ्यते। अनंतानुबंधिनां उदयेनैव सासादनसम्यग्दृष्टिर्भवति ततस्तस्यौदयिको

समुदायपातनिका कही गई है।

मार्गणा नाम के इस चतुर्थ महाधिकार में चौदह अधिकार विभक्त किये गये हैं। उनमें से यह पहला गतिमार्गणा अधिकार है।

अब नरकगति में जन्मे नारकी जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयत गुणस्थानपर्यंत चार गुणस्थानवर्ती नारकियों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आदेश की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकियों में मिथ्यादृष्टि यह कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है।।१०।।

नारकी सासादनसम्यगदृष्टि यह कौन सा भाव है ? पारिणामिक भाव है।।११।।

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।१२।।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।१३।।

किन्तु नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि का असंयतत्व औदयिक भाव से है।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टि नारकियों के मिथ्यात्व के उदय से होने वाले अश्रद्धानरूप परिणाम होने के कारण औदयिक भाव कहा गया है। दूसरी बात यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व का उदय ही कारण है, क्योंकि उसके बिना अश्रद्धानरूप परिणाम की उत्पत्ति नहीं होती है।

विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम के कारण वह सासादनसम्यग्दृष्टि

भावः किन्नेष्यते ?

नैतत्, आदिमचतुःषु अपि गुणस्थानेषु चारित्रावरणतीव्रोदयेन प्राप्तासंयमेषु दर्शनमोहनिबंधनेषु चारित्रमोहविवक्षाभावात्।

तृतीयगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यात्वोदये सत्यपि सम्यग्दर्शनैकदेशोपलंभात् तत्र क्षायोपशमिको भावः इष्यते।

कश्चिदाह — सम्यग्मिथ्यात्वभावे प्राप्तजात्यन्तरे अंशांशीभावो नास्तीति न तत्र सम्यग्दर्शनस्य एकदेशः इति चेत् ?

भवतु नाम, अभेदविवक्षातः जात्यन्तरत्वं। भेदे पुनः विवक्षिते सम्यग्दर्शनभागोऽस्ति चैव, अन्यथा जात्यन्तरत्वविरोधात्। न च सम्यग्मिथ्यात्वस्य सर्वघातित्वं एवं सति विरुध्यते, प्राप्तजात्यन्तरे सम्यग्दर्शनांशाभावात् तस्य सर्वघातित्वाविरोधात्।

सम्यग्दृष्टेः त्रयोऽपि भावाः सन्ति। तदेवोच्यते — त्रीण्यपि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपन्नजीवानां औपशमिको भावः, दर्शनमोहनीयस्य तत्रोदयाभावात्। क्षपितदर्शनमोहनीयानां सम्यग्दृष्टीनां क्षायिको भावः। प्रतिपक्षकर्मक्षयेणोत्पन्नत्वात्। इतरेषां सम्यग्दृष्टीनां क्षायोपशमिको भावः प्रतिपक्षकर्मोदयेन सह लब्धात्मस्वरूपत्वात्।

नहीं बनता है इसलिए उसके पारिणामिक भाव माना जाता है।

शंका — अनंतानुबंधी चारों कषायों के उदय से ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है, इसलिए उसे औदयिक भाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीय का बंध करने वाले आदि के चारों ही गुणस्थानों में चारित्र को आवरण करने वाले मोहकर्म के तीव्र उदय से असंयम भाव के प्राप्त होने पर भी चारित्रमोहनीय की विवक्षा नहीं की गई है। तृतीय गुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय होने पर भी सम्यग्दर्शन का एक देश पाया जाता है इसलिए वहाँ क्षायोपशमिक भाव होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि जात्यन्तरत्व (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्व भाव में अंशांशी (अवयव-अवयवी) भाव नहीं है, इसलिए उसमें सम्यग्दर्शन का एक देश नहीं है ?

उसका समाधान देते हैं कि अभेद की विवक्षा में सम्यग्मिथ्यात्व के भिन्न जातीयता भले ही रही आवे, किन्तु भेद की विवक्षा करने पर उसमें सम्यग्दर्शन का एक भाग (अंश) है ही। यदि ऐसा न माना जाये, तो इसके जात्यन्तर के मानने में विरोध आता है और ऐसा मानने पर सम्यग्मिथ्यात्व के सर्वघातिपना भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व को भिन्न जातीयता प्राप्त होने पर सम्यग्दर्शन के एक देश का अभाव है, इसलिए उसके सर्वघातिपना मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

सम्यग्दृष्टि के तीनों भाव होते हैं, उसी को बताते हैं — तीनों ही करणों को करके सम्यक्त्व को प्राप्त हुए जीवों के औपशमिक भाव होता है, क्योंकि वहाँ दर्शनमोहनीय के उदय का अभाव पाया जाता है। दर्शनमोहनीय का क्षय करने वाले सम्यग्दृष्टियों के क्षायिकभाव होता है, क्योंकि वह क्षायिकभाव उसके प्रतिपक्षी — मिथ्यात्व के क्षय से उत्पन्न होता है। इनसे अतिरिक्त सम्यग्दृष्टियों के क्षायोपशमिक भाव होता है, क्योंकि यह भाव प्रतिपक्षी कर्म के उदय के साथ उत्पन्न होकर अपने आत्मस्वरूप में नाम के अनुरूप उपलब्ध होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां नारकाणां असंयतत्वं औदयिकेन भावेन। संयमघातिनां कर्मणामुदयेन असंयमो भवति, ततः 'असंयतः' इति औदयिको भावः। एतेन अंतदीपकेन सूत्रेण अतिक्रान्तसर्वगुणस्थानेषु असंयतत्वमौदयिकमिति भणितं भवति।

एवं चतुर्गुणस्थानवर्तिनां नारकाणां सामान्येन भावः कथितः।

संप्रति प्रथमादिपृथिवीगतनारकाणां गुणस्थानापेक्षया भावप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं।।१५।।

विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमोघं।।१६।।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।।१७।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमपृथिव्यां नारकाणां पूर्वोक्तभावाः चतुर्गुणस्थानेषु भवन्ति। द्वितीयपृथिव्याः आरभ्य सप्तमपृथिवीपर्यंतं नारकाणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भावाः पूर्ववत् ज्ञातव्यं।**

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों के औदयिक भाव के साथ असंयतपना पाया जाता है। संयम का घात करने वाले जीवों के कर्मों के उदय से असंयम होता है, इसलिए "असंयत" यह औदयिक भाव है। इस 'अन्त्यदीपक' न्याय वाले सूत्र से अतिक्रान्त—पीछे के सभी चारों गुणस्थानों में "असंयतत्व" नाम का औदयिक भाव होता है। अर्थात् चतुर्थगुणस्थान का नाम तो असंयत है ही, किन्तु उससे पूर्व के तीनों गुणस्थानों को भी असंयतपना रहता है यह बात स्वयंसिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार चार गुणस्थानवर्ती नारकियों के सामान्यरूप से भाव कहे गये ।

अब प्रथम आदि पृथिवी को प्राप्त नारकियों के गुणस्थान की अपेक्षा भावों का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

इस प्रकार प्रथम पृथिवी में नारकियों के सभी गुणस्थानों संबंधी भाव होते हैं।।१५।।

द्वितीय पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक के नारकियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के भाव गुणस्थान के समान है।।१६।।

उक्त नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।१७।।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियों का असंयतपना औदयिक भाव से है।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथम पृथ्वी के नारकियों के पूर्वोक्त भाव चार गुणस्थानों में होते हैं। द्वितीय पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक के नारकियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि

असंयतसम्यग्दृष्टीनां औपशमिकः क्षायोपशमिको वा द्वौ एव भावौ स्तः। न च क्षायिकः, क्षायिकसम्यग्दृष्टेरभावात् अधस्तननारकाणामिति।

उक्तं च—''विदियादिसु पुढवीसु खइयसम्मादिट्ठीणमुप्पत्तीए अभावा[1]।''

अत्रापि संयमघातिचारित्रमोहनीयकर्मोदयसमुत्पन्नत्वात् असंयतभावः औदयिकः। अतीतगुणस्थानेषु असंयतभावस्यास्तित्वं एतेन सूत्रेण प्ररूपितं भवति।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां चतुर्गुणस्थानवर्तिनां भावकथनमुख्यत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

संप्रति तिर्यग्गतौ भावप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदाणमोघं।।१९।।

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।।२०।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यग्गतौ सामान्यतिरश्चां पंचेन्द्रियतिरश्चां पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तानां पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीनां च चतुर्विधतिरश्चां मिथ्यादृष्टिरिति औदयिकः, सासादनस्य पारिणामिकः,

---

जीवों के भाव पूर्ववत् जानना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों के औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक ये दो भाव ही होते हैं, उनके क्षायिकभाव नहीं होता है, क्योंकि अधस्तन नरक के नारकियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अभाव पाया जाता है।

कहा भी है—द्वितीयादि पृथिवियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति का अभाव है।

यहाँ भी संयम का घात करने वाले चारित्रमोहनीयकर्म के उदय से उत्पन्न होने के कारण असंयतभाव औदयिक समझना चाहिए। अतीत के गुणस्थानों में—प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थानों में असंयतभाव इस सूत्र से प्ररूपित हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चारों गुणस्थानवर्ती नारकियों के भावों का वर्णन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचगति में भावों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनीजीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयतगुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।१९।।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव है और क्षायोपशमिक भाव है।।२०।।

किन्तु तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियों का असंयत्व औदयिक भाव से है।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंचगति में सामान्य तिर्यंचों में, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक

---

१. धवला पुस्तक ५, पृ. २११।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिकः, सम्यग्दृष्टेः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिको वा। औदयिकेन भावेन पुनः असंयतोभावः, संयतासंयतः इति क्षायोपशमिको भावः। अस्ति किञ्चिद्विशेषः—पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु असंयतसम्यग्दृष्टिषु औपशमिकः क्षायोपशमिको वा न च क्षायिकः, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां बद्धायुष्कानां स्त्रीवेदेषु उत्पत्तेरभावात्, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तशेषगतिषु दर्शनमोहनीयक्षपणाभावाच्च।

पंचेन्द्रियापर्याप्ततिरश्चां मिथ्यात्वमेकमेव गुणस्थानं तत्र औदयिकोभावः इति ज्ञातव्यं।

एवं तिर्यग्गतौ भावकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

मनुष्यगतौ भावकथनाय सूत्रमवतरति—

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधमनुष्याणां सकलगुणस्थानेषु ओघसकलगुणस्थानेभ्यो भेदाभावात्। लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामपि मिथ्यात्वमेकमेव गुणस्थानं अतः औदयिक एव भावो ज्ञातव्यः।**

एवं तृतीयस्थले मनुष्यभावप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति सामान्यदेवानां भवनत्रिकाणां सौधर्मैशानदेवीनां च भावप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

तिर्यंचों में और स्त्रीवेदी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में चारों प्रकार के तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टि के औदयिक भाव होता है, सासादन के पारिणामिक भाव होता है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि के क्षायोपशमिक भाव होता है, सम्यग्दृष्टि के औपशमिक-क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक में से कोई भी भाव होता है। औदयिक भाव से युक्त असंयतभाव, संयतासंयत भाव ये क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

यहाँ कुछ विशेष कथन करते हैं—पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों में औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक भाव होता है, क्षायिक भाव नहीं होता है, क्योंकि बद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का स्त्रीवेदियों में उत्पत्ति का अभाव पाया जाता है और मनुष्यगति को छोड़कर शेष गतियों में दर्शनमोहनीय के क्षपण का अभाव देखा जाता है।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है, वहाँ एक औदयिक भाव ही होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार तिर्यंचगति में भावों का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यगति में भाव बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थानों के समान हैं।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों प्रकार के मनुष्यों के सभी गुणस्थानों में सभी व्यवस्था गुणस्थानों के समान है, क्योंकि सभी गुणस्थानों की अपेक्षा उनमें भेद का अभाव पाया जाता है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के भी एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है अतः वहाँ एक औदयिक भाव ही समझना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यों के भावों का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सामान्य देवों में भवनत्रिक देव और सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।।२३।।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवीओ च मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।२४।।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।।२५।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्यदेवानां चतुर्गुणस्थानवर्तिनां गुणस्थानवद् भावाः भवन्ति। भवनत्रिकाणां देवानां देवीनां च सौधर्मैशानदेवीनां च मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानेषु ओघवद् भावाः सन्ति। एतेषां एतासां च असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने औपशमिकः क्षायोपशमिको वा भावः।**

क्षायिकभावोऽत्र किन्न प्ररूपितः?

न, भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्क-द्वितीयादिषट्पृथिवीगतनारक-सर्वविकलेन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्तक-स्त्रीवेदेषु सम्यग्दृष्टीनामुत्पादाभावात्, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तान्यगतिषु दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावाच्च।

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।२३।।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियाँ तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवियाँ, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि ये भाव गुणस्थान के समान है।।२४।।

असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियों के कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।२५।।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियों का असंयतत्व औदयिक भाव से है।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चारों गुणस्थानवर्ती सामान्य देवों के गुणस्थान के समान भाव होते हैं। भवनत्रिक में जन्मे देव और देवियों के तथा सौधर्म-ईशान स्वर्गों में जन्मी देवियों के मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में ओघ—गुणस्थान के समान भाव होते हैं। इन देव और देवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक भाव होता है।

शंका—उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियों में क्षायिक भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्कदेव, द्वितीयादि छह पृथिवियों के नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व लब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियों में सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है तथा मनुष्यगति के अतिरिक्त अन्य गतियों में दर्शनमोहनीय कर्म की क्षपणा का अभाव है, इसलिए उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियों में क्षायिक भाव नहीं बतलाया गया है।

औदयिकेन भावेन पुनः असंयतत्वं सर्वेषां सर्वासां चेति।

संप्रति सौधर्मैशानादि-सर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवानां भावकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।।२७।।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।।२८।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमसूत्रार्थः सुगमोऽस्ति। अनुदिशादिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवेषु वेदकसम्यग्दृष्टीनां क्षायोपशमिको भावः, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकः, उपशमसम्यग्दृष्टीनां औपशमिको भावः। तत्र मिथ्यादृष्टीनामभावे सति कथं उपशमसम्यग्दृष्टीनां संभवः, कारणाभावे कार्यस्य उत्पत्तिविरोधात् ? नैष दोषः, उपशमसम्यक्त्वेन सह उपशमश्रेणिं चटत्-अवतरतां संयतानां कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नानामुपशम-सम्यक्त्वोपलंभात्।**

त्रिषु स्थानेषु प्रयुक्तः वाशब्दः सूत्रेषु अनर्थकः, एकेनैवेष्टकार्यसिद्धेः ?

औदयिक भाव से पुनः समझना कि सभी देव और देवियों में औदयिक भाव की अपेक्षा असंयतत्व है।

अब सौधर्म-ईशान स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक के देवों के भाव बतलाने हेतु तीन सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

सौधर्म-ईशानकल्प से लेकर नव ग्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।२७।।

अनुदिश आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।२८।।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का असंयतत्व औदयिक भाव से है।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथम सूत्र का अर्थ सुगम है। अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यन्त देवों में वेदकसम्यग्दृष्टि देवों के क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवों के क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवों के औपशमिक भाव होता है।

शंका—अनुदिश आदि विमानों में मिथ्यादृष्टि जीवों का अभाव होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टियों का होना कैसे संभव है, क्योंकि कारण के अभाव होने पर कार्य की उत्पत्ति का विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी पर चढ़ते और उतरते हुए संयतों के मरणकर देवों में उत्पन्न होने वाले देवों के उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है।

शंका—सूत्र में तीन स्थानों पर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि एक ही 'वा' शब्द से इष्ट कार्य की सिद्धि हो जाती है ?

न, मंदबुद्धिसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्।

औदयिकेन भावेन पुनः सर्वेषां असंयतत्वमिति ज्ञातव्यम्। एवं चतुर्थस्थले देवगतिभावप्रतिपादनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रन्थे भावानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

समाधान—नहीं, क्योंकि मंदबुद्धि जीवों के अनुग्रहार्थ सूत्र में तीन स्थानों पर 'वा' शब्द का प्रयोग किया गया है।

औदयिकभाव के द्वारा पुनः सभी देवों के असंयतपना होता है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में देवगति के भाव प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

स्वाध्याय का माहात्म्य

निरस्त सर्वाक्षकषायवृत्तिर्विधीयते येन शरीरिवर्गः।
प्ररूढजन्मांकुरशोषपूषा स्वाध्यायतोऽन्योस्ति ततो न योगः।।
गुणाः पवित्राः शमसंयमाय्य विबोधहीनाः क्षणतश्चलन्ति।
कालं कियन्तं तलपुष्पपूर्णास्तिष्ठन्ति वृक्षाः क्षतमूल बंधाः।।

अर्थ—जिस स्वाध्याय के द्वारा प्राणीवर्ग की समस्त इन्द्रियों और कषायों को प्रवृत्ति से रहित किया जाता है और जो बढ़ते हुए भावांकुर के सुखाने के लिए सूर्य सदृश है, ऐसे स्वाध्याय से बढ़कर अन्य कोई योग—ध्यान नहीं है अर्थात् स्वाध्याय करते समय पाँचों इन्द्रियों का अशुभ व्यापार छूट जाता है और कषायों की प्रवृत्ति भी नहीं दिखती है, मन केवल अर्थ के चिन्तन में शांत रहता है तथा संसार की परम्परा घट जाती है। आज के युग में इस स्वाध्याय के अतिरिक्त और ध्यान क्या किया जा सकता है?

कषायों की मंदतारूप प्रशम भाव और संयम आदि जितने भी पवित्र गुण हैं वे सब यदि ज्ञान से रहित हैं तो क्षणमात्र में चलायमान हो जाते हैं। जिन वृक्षों का मूल जड़—बंधन विनष्ट हो गया है, ऐसे पत्र, पुष्पों से परिपूर्ण भी वृक्ष कितने समय तक खड़े रह सकते हैं? अर्थात् जैसे जड़ के उखड़ जाने से हरे-भरे वृक्ष भी गिर जाते हैं वैसे ही ज्ञान के बिना शम-संयम आदि गुण अधिक काल नहीं टिक पाते हैं। इसलिए सतत ही जैन आगम का स्वाध्याय करना चाहिए।

—श्री अमितगतिसूरि

अथ इंद्रियमार्गणाधिकारः

अथ एकेन सूत्रेण इंद्रियमार्गणानामद्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते।
संप्रति इन्द्रियमार्गणायां भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचेन्द्रियाणां पर्याप्तपंचेन्द्रियाणां च गुणस्थानवत् भावः कथयितव्यः। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियापर्याप्तमिथ्यादृष्टीनां औदयिको भावः कथ्यते।**

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां गणिनीज्ञानमतीकृतायां इंद्रिय-मार्गणानामद्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब एक सूत्र के द्वारा इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है।
अब इन्द्रियमार्गणा में भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुवाद से पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पंचेन्द्रिय सामान्य एवं पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों के भाव गुणस्थान के समान कहना चाहिए। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवों के औदयिक भाव कहा गया है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ एकेन सूत्रेण कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति कायमार्गणायां भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वपृथिवी-सर्वजल-सर्वतेजः-सर्ववायु-सर्ववनस्पति-त्रसापर्याप्तमिथ्यादृष्टीनां भावप्ररूपणा न कृता, अपगतप्ररूपणायाः फलाभावात्। त्रसकायिक-त्रसपर्याप्तानां मिथ्यादृष्ट्यादि-अयोगिकेवलिपर्यंतानि गुणस्थानानि भवन्ति। अतः ओघवत् भावो ज्ञातव्यः।**

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम
तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब एक सूत्र के द्वारा कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है।

पुनः अब कायमार्गणा में भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुवाद से त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान है।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सर्वपृथिवीकायिक, सर्वजलकायिक, सर्व तेजस्कायिक, सर्व वायुकायिक, सर्ववनस्पतिकायिक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवों की भावप्ररूपणा सूत्र में नहीं की गई है, क्योंकि जाने हुए भावों की प्ररूपणा करने में कोई फल नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवों के मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त सभी गुणस्थान होते हैं। इसलिए उनके गुणस्थान के समान ही भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में
गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में
कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां नवसूत्रै योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले योगमार्गणायां मनोवचनयोगि-औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां भावकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि पंचसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले वैक्रियिक-आहारककार्मणयोगिनां भावप्रतिपादनत्वेन ''वेउव्विय-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति पातनिका।

संप्रति मनोयोगि-वचनयोगि-औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-कायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३२।।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं।।३३।।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।।३४।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।३५।।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में योगमार्गणा में मनोयोगी, वचनयोगी तथा औदारिक काययोग-औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों के भाव कथन करने हेतु "जोगाणुवादेण" इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी-आहारककाययोगी एवं कार्मणकाययोगी जीवों के भावों का प्रतिपादन करने वाले "वेउव्विय" इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब मनोयोगी-वचनयोगी-औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान है।।३२।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों के भाव गुणस्थान के समान है।।३३।।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? क्षायिक भाव है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।३४।।

किन्तु औदारिक मिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि का असंयत्व औदयिक भाव से है।।३५।।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**औदारिकमिश्रकाययोगिषु असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने क्षायिकः क्षायोपशमिको वा भावः कथ्यते। क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टीनां देवनारक-मनुष्याणां तिर्यग्मनुष्ययोः उत्पद्यमानानां उपलंभात्।**

औपशमिको भावोऽत्र किन्न प्ररूपितः ?

न, चतुर्गतिउपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणाभावात् औदारिकमिश्रयोगे उपशमसम्यक्त्वस्योपलंभाभावात्।

उपशमश्रेणिं आरोहदवतरत्संयतानां उपशमसम्यक्त्वेन मरणमस्ति इति चेत् ?

सत्यमेतत्, किंतु न ते उपशमसम्यक्त्वेन औदारिकमिश्रकाययोगिनो भवन्ति, देवगतिं मुक्त्वा तेषामन्यत्र उत्पत्तेरभावात्।

औदयिकेन भावेन पुनः असंयतभावो विद्यते। सयोगिकेवलिनां क्षायिको भाव एव।

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनां भावकथनत्वेन सूत्राणि पंच गतानि।

संप्रति वैक्रियिक-आहारक-कार्मणकाययोगिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो।।३७।।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौन सा भाव है? क्षायिक भाव है।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव कहा गया है। क्षायिक और वेदक सम्यग्दृष्टि देव-नारकी, मनुष्य जो तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले हैं उनमें ये क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

शंका—यहाँ अर्थात् औदारिक मिश्रकाययोगी जीवों में औपशमिक भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चारों गतियों के उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का मरण नहीं होने से औदारिकमिश्रकाययोग में उपशमसम्यक्त्व का सद्भाव नहीं पाया जाता।

शंका—उपशमश्रेणी पर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवों का उपशमसम्यक्त्व के साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणी में मरने वाले ये जीव उपशमसम्यक्त्व के साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि देवगति को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति का अभाव है।

औदयिक भाव के साथ पुनः असंयतभाव जाना जाता है। सयोगिकेवलियों के क्षायिकभाव ही होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी-वचनयोगी-औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों के भाव बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिक-आहारक एवं कार्मणकाययोगी जीवों के भावों का कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।३७।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी ओघं।।३८।।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदो त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।३९।।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं।।४०।।

सिद्धांतचिंतामणि टीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। प्रमत्तानां संयतानां आहारआहारमिश्रयोगिनां क्षायोपशमिको भावः। चारित्रावरणचतुःसंज्वलन-सप्तनोकषायाणामुदये सत्यपि प्रमादानुविद्धसंयमोपलंभात्।**

कथमत्र क्षयोपशमः?

अत्राहारक-आहारकमिश्रकाययोगिनां क्षायोपशमिकभावस्य एष हेतुः, प्राप्तोदयैकादशचारित्रमोहनीय-प्रकृतिदेशघातिस्पर्धकानां उपशमसंज्ञा, निरवशेषेण चारित्रघातनशक्तेः तत्रोपशमोपलंभात्। तेषां चैव सर्वघातिस्पर्धकानां क्षयसंज्ञा, नष्टोदयभावत्वात्। ताभ्यां द्वाभ्यां उत्पन्नः संयमः क्षायोपशमिकः। अथवा एकादशकर्मणामुदयस्यैव क्षयोपशमसंज्ञा।

कुतः ?

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि ये भाव गुणस्थान के समान हैं।।३८।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।३९।।

कार्मणकाययोगियों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली इनके भाव गुणस्थान के समान हैं।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। प्रमत्तसंयतों में आहारक और आहारकमिश्र काययोगियों के क्षायोपशमिक भाव होते हैं। यथाख्यात चारित्र के आवरण करने हेतु चारों संज्वलन और सात नोकषायों के उदय होने पर भी प्रमाद संयुक्त संयम पाया जाता है।

शंका—यहाँ पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—यहाँ आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों में क्षायोपशमिकभाव होने का कारण यह है कि उदय को प्राप्त संज्वलन और सात नोकषाय, इन ग्यारह चारित्रमोहनीय प्रकृतियों के देशघाती स्पर्धकों की उपशमसंज्ञा है, क्योंकि संपूर्णरूप से चारित्र घातने की शक्ति का वहाँ पर उपशम पाया जाता है तथा उन्हीं ग्यारह चारित्रमोहनीय प्रकृतियों के सर्वघाती स्पर्धकों की क्षयसंज्ञा है क्योंकि वहाँ पर उनका उदय में आना नष्ट हो चुका है। इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनों से उत्पन्न होने वाला संयम क्षायोपशमिक कहलाता है। अथवा चारित्रमोहसंबंधी उक्त ग्यारह कर्मप्रकृतियों के उदय की ही क्षयोपशमसंज्ञा है।

प्रश्न—कैसे ?

चारित्रघातनशक्तेरभावस्यैव तद्व्यपदेशात्। तेनोत्पन्नः इति क्षायोपशमिकः प्रमादानुविद्धसंयमः। कार्मणकाययोगिषु ओघवत् ज्ञातव्यमिति।

एवं द्वितीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र-आहार-आहारमिश्र-कार्मणकाययोगिनां भावकथनमुख्यत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

उत्तर—चारित्र के घातने की शक्ति के अभाव की ही क्षयोपशमसंज्ञा है। इस प्रकार के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोपशमिक है।

कार्मणकाययोगियों में सारी व्यवस्था गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र आहारक-आहारकमिश्र और कार्मणकाययोगी जीवों के भावों का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

चारित्र के बिना मात्रज्ञान सिद्धिदायक नहीं है

सव्वं पिहि सुदणाणं सट्ठु सुगुणिदं पि सुट्ठु पढिदं पि।
समणं भट्ठचरित्तं णहु सक्को सुग्गइं णेदुं।।14।।
जडि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।
जदि सिक्खिऊण अयणं करेदि किं तस्स सिक्ख फलं।।15।।

अर्थ—संपूर्ण भी श्रुतज्ञान कालादि शुद्धिपूर्वक प्राप्त किया गया है तथा परिणामों की विशुद्धि से बारम्बार उसका अभ्यास भी किया गया है उसका व्याख्यान करने से तथा हृदय से सम्यक्धारण करने पर भी वह ज्ञान भ्रष्ट-चारित्र यति को अथवा चारित्र रहित को सद्गति में पहुँचाने के लिए समर्थ नहीं है। अतः चारित्र ही प्रधान है।

यदि दीपक हाथ में होते हुए भी कोई गड्ढे या कुएं में गिरता है तो दीपक उसका क्या करेगा? यदि ज्ञान प्राप्त करके भी कोई अनय-चरित्र का विनाश करता है तो उसकी शिक्षा का क्या फल है? अर्थात् श्रुतज्ञान का फल चारित्र धारण करना है यदि पढ़कर भी चारित्र से विमुख रहा तो वह ज्ञान के फल को नहीं प्राप्त कर सकता है।

—श्री कुन्दकुन्द देव

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां सूत्राभ्यां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः कथ्यते।

संप्रति त्रिविधवेदानां अपगतवेदानां च भावप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।४१।।

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति।**

अत्र कश्चिदाह—योनिमेहनादिभिः समन्वितं शरीरं वेदः, न तस्य विनाशोऽस्ति, संयतानां मरणप्रसंगात्। न भाववेदविनाशोऽप्यस्ति, शरीरे अविनष्टे तद्भावस्य विनाशविरोधात्। ततो नापगतवेदत्वं युज्यते ?

अस्य परिहारो निगद्यते—न शरीरं स्त्रीपुरुषवेदः, नामकर्मजनितस्य शरीरस्य मोहनीयत्वविरोधात्। न मोहनीयजनितमपि शरीरं, जीवविपाकिनो मोहनीयस्य पुद्गलविपाकित्वविरोधात्। न शरीरभावोऽपि वेदः,

---

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पाँचवाँ अधिकार प्रारंभ होता है।

अब तीन प्रकार के वेद वाले तथा अपगतवेदी जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।४१।।

अपगतवेदियों में अनिवृत्तिकरण से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

यहाँ पर कोई शंकाकार करता है कि योनि और लिंग आदि से संयुक्त शरीर वेद कहलाता है। सो अपगतवेदियों के इस प्रकार के वेद का विनाश नहीं होता है, क्योंकि यदि योनि, लिंग आदि से समन्वित शरीर का विनाश माना जाये तो अपगतवेदी संयतों के मरण का प्रसंग प्राप्त होगा। इसी प्रकार अपगतवेदी जीवों के भाववेद का विनाश भी नहीं है, क्योंकि जब तक शरीर का विनाश नहीं होता, तब तक शरीर के धर्म का विनाश मानने में विरोध आता है। इसलिए अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है ?

अब यहाँ उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं—न तो शरीर, स्त्री या पुरुषवेद है, क्योंकि नामकर्म से उत्पन्न होने वाले शरीर के मोहनीयपने का विरोध है और न शरीर मोहनीयकर्म से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि जीव विपाकी मोहनीय कर्म के पुद्गलविपाकी होने का विरोध है। न शरीर का धर्म ही वेद है, क्योंकि शरीर से पृथग्भूत वेद पाया जाता है। पारिशेष न्याय से मोहनीय के द्रव्यकर्मस्कंध को अथवा मोहनीयकर्म से उत्पन्न

तस्य ततः पृथग्भूतस्य उपलंभात्। पारिशेषन्यायात् मोहनीयद्रव्यकर्मस्कंधः तज्जनितजीवपरिणामो वा वेदः। तत्र तज्जनितजीवपरिणामस्य वा परिणामेन सह कर्मस्कंधस्य वा अभावेनापगतवेदो भवतीति तेन नैष दोष इति सिद्धम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

होने वाले जीव के परिणाम को वेद कहते हैं। उनमें वेदजनित जीव के परिणाम का अथवा परिणाम के साथ मोहकर्मस्कंध का अभाव होने से जीव अपगतवेदी होता है। इसलिए अपगतवेदपना मानने में उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

मनरूपी वृक्ष को मोहरूपी जल से मत सींचो

णिल्लूरह मणवच्छो खंडह साहाउ रायदोसा जे।
अहलो करेइ पच्छा मा सिंचह मोहसलिलेण।।68।।

(श्री देवसेन सूरि)

यहाँ मन को वृक्ष की उपमा दी है। जिस प्रकार वृक्ष में दो बड़ी शाखाएं होती हैं उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष में रागद्वेषरूपी दो बड़ी शाखाएं हैं। जिस प्रकार वृक्ष की बड़ी शाखाओं से उपशाखाएं निकलकर वृक्ष को विस्तृत करती हैं उसी प्रकार रागद्वेषरूपी दो बड़ी शाखाओं से विषयेच्छा रूप अनेक उपशाखाएं निकलकर मनरूपी वृक्ष को विस्तृत करती हैं। जिस प्रकार वृक्ष में फल निकलते हैं उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष में भी संकल्प-विकल्परूप अनेक फल लगते हैं और जिस प्रकार वृक्ष को जल से सींचकर हरा-भरा किया जाता है उसी प्रकार मनरूपी वृक्ष को मोहरूपी जल से हरा-भरा रखा जाता है। आचार्य क्षपक को उपदेश देते हैं कि-हे क्षपक! तू इस मनरूपी वृक्ष को निर्मूल कर दे, इसकी उपशाखाएं काटकर इसे विस्तार से रहित कर दे, यही नहीं इनकी रागद्वेषरूपी शाखाओं को काट डाल, ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे अब इसमें संकल्प-विकल्परूपी फल न लगें तथा इसे अब मोहरूपी जल से सींचना बंद कर दे। ऐसा करने से यह मनरूपी वृक्ष स्वयं उखड़ जायेगा।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ सूत्रद्वयेन कषायमार्गणानामषष्ठोऽधिकारः कथ्यते।

संप्रति—चतुर्विधकषायसहितानां दशगुणस्थानानां अकषायिणां च भावप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।।४३।।

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमगुणस्थानादारभ्य दशमगुणस्थानपर्यंता कषायाः सन्ति अतो गुणस्थानवत् ज्ञातव्या भावाः।**

कश्चिदाह—कषायो नाम जीवगुणः, न तस्य विनाशोऽस्ति ज्ञानदर्शनगुणयोरिव। विनाशे वा जीवस्यापि विनाशेन भवितव्यं, ज्ञानदर्शनविनाशेन इव। ततो न अकषायत्वं घटते ?

आचार्यदेवः परिहरति—भवतु ज्ञानदर्शनयोर्विनाशे जीवविनाशः, तयोस्तल्लक्षणत्वात्। न कषायो जीवस्य लक्षणं, कर्मजनितस्य तल्लक्षणत्वविरोधात्। न कषायाणां कर्मजनितत्वमसिद्धं, कषायवृद्ध्या

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ होता है।

यहाँ चार प्रकार की कषाय से सहित दश गुणस्थान तक के जीवों का तथा अकषायी भगवन्तों के भावों का कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक भाव गुणस्थानों के समान होते हैं।।४३।।

अकषायी जीवों में उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती जीवों के भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथम गुणस्थान से प्रारंभ करके दशवें गुणस्थान पर्यंत कषाय पाई जाती हैं, अतः भावों की सारी व्यवस्था गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि कषाय नाम जीवगुण का है इसलिए उसका विनाश नहीं होता। जैसे— ज्ञान और दर्शन गुणों का विनाश नहीं होता उसी प्रकार उसका विनाश नहीं होता। यदि जीवगुणों का विनाश माना जाये तो ज्ञान और दर्शन के विनाश के समान जीव का भी विनाश हो जाना चाहिए। इसलिए सूत्र में कही गई अकषायता घटित नहीं होती है ?

तब आचार्यदेव समाधान देते हैं कि ज्ञान और दर्शन के विनाश होने पर जीव का विनाश भले ही हो जावे, क्योंकि वे जीव के लक्षण हैं। किन्तु कषाय तो जीव का लक्षण नहीं है, क्योंकि कर्मजनित कषाय को

जीवलक्षणज्ञानहानेरन्यथानुपपत्तेः तस्य कर्मजनितत्वसिद्धेः। न च गुणो गुणान्तरविरोधी, अन्यत्र तथानुपलंभात्। एतज्ज्ञात्वा कषायकृशीकरणाय प्रयत्नो विधेयोऽस्माभिरिति।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

जीव का लक्षण मानने में विरोध आता है और न कषायों का कर्म से उत्पन्न होना असिद्ध ही है, क्योंकि कषायों की वृद्धि होने पर जीव के लक्षणभूत ज्ञान की हानि अन्यथा बन नहीं सकती है। इसलिए कषाय का कर्म से उत्पन्न होना सिद्ध है तथा गुण-गुणान्तर का विरोधी नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा देखा नहीं जाता है।

ऐसा जानकर हम सभी को कषायों को कृश करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

गृहस्थ धर्म भी मुक्ति का कारण है

दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ ण वि पुज्जिउ जिण-णाहु।
पंच ण वंदिय परम-गुरु किमु होसइ सिव-लाहु।।168।।

(परमात्मप्रकाश)

आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान ये चार प्रकार के दान भक्तिपूर्वक पात्रों को नहीं दिये अर्थात् निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय के आराधक जो यति आदिक चार प्रकार का संघ उनको चार प्रकार का दान भक्ति कर नहीं दिया और भूखे जीवों को करुणाभाव से दान नहीं दिया। इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदिकर पूज्य केवलज्ञानादि अनन्तगुणों कर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की। जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से पूजा नहीं की और तीन लोक कर वंदन योग्य ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों की आराधना नहीं की। सो हे जीव! इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के ये ही उपाय हैं। जिनपूजा, पंचपरमेष्ठी की वंदना और चार संघ को चार प्रकार दान इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। ऐसा व्याख्यान जानकर सातवें उपासकाध्ययन अंग में कही गई जो दान-पूजा वंदनादिक की विधि वही करने योग्य है। शुभ विधि से न्यायकर उपार्जन किया अच्छा द्रव्य वह दातार के अच्छे गुणों को धारण कर विधि से पात्र को देना, जिनराज की पूजा करना और पंचपरमेष्ठी की वंदना करना ये ही व्यवहारनय कर कल्याण के उपाय हैं।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुःसूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनां भावकथनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले पंचविधज्ञानसहितानां भावनिरूपणत्वेन ''आभिणि'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति पातनिका।

संप्रति त्रिविधाज्ञानिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासण-सम्मादिट्ठी ओघं।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधाज्ञानिनां द्वे गुणस्थाने स्तः। तृतीयगुणस्थाने त्रिविधं अपि मिश्रज्ञानमिति।**

मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानस्याज्ञानत्वं कथं ?

ज्ञानकार्यकरणात् अज्ञानत्वं भवति।

ज्ञानकार्यं किं इति चेत् ?

ज्ञातार्थश्रद्धानं ज्ञानकार्यं भवति, तत्कार्यं मिथ्यादृष्टौ नास्ति। ततो ज्ञानमेवाज्ञानं, अन्यथा जीवविनाशप्रसंगात्।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों प्रकार के अज्ञानी जीवों के भाव कथन करने हेतु ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में पाँच प्रकार के ज्ञान से सहित जीवों के भाव निरूपण करने हेतु ''आभिणि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव गुणस्थानों के भाव समान होते हैं।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों प्रकार के अज्ञानी—मिथ्याज्ञानी जीवों के दो गुणस्थान होते हैं। तृतीय गुणस्थान में तीनों ही ज्ञान मिश्रज्ञानरूप से रहते हैं।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवों के ज्ञान को अज्ञानपना कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि, उनका ज्ञान ज्ञान का कार्य नहीं करता है।

शंका—ज्ञान का कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थ का श्रद्धान करना ज्ञान का कार्य है। किन्तु वह ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीव में पाया नहीं जाता। इसीलिए उनका ज्ञान ही अज्ञान है अन्यथा जीव के विनाश का प्रसंग प्राप्त होगा।

शंका—दयाधर्म को जानने वाले जीवों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तो श्रद्धान पाया जाता है। फिर उसके ज्ञान को अज्ञान क्यों माना जाये ?

दयाधर्मज्ञातृषु मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने श्रद्धानमुपलभ्यते इति चेत् ?

नैतत्, आप्तागमपदार्थश्रद्धान-विरहितस्य दयाधर्मज्ञातृषु यथार्थश्रद्धानविरोधात्। न च एष व्यवहारो लोकेऽप्रसिद्धः, पुत्रकार्यमकुर्वति पुत्रेऽपि लोके अपुत्रव्यवहारदर्शनात्।

त्रिषु अज्ञानेषु निरुद्धेषु सम्यग्मिथ्यादिष्टिभावः किन्न प्ररुपितः?

नैतत्, तस्य श्रद्धानाश्रद्धानाभ्यां द्वाभ्यामपि अक्रमेण अुनबिद्धस्य संयतासंयत इव प्राप्तजात्यन्तरस्य सम्यग्मिथ्यात्वस्य ज्ञानेषु अज्ञानेषु वा अस्तित्वविरोधात्।

एवं प्रथमस्थले त्रिषु अज्ञानिषु भावप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति पंचविधज्ञानिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।।४६।।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।।४७।।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।।४८।।

समाधान—नहीं, क्योंकि दयाधर्म के ज्ञाताओं में भी आप्त, आगम और पदार्थ के श्रद्धान से रहित जीव के यथार्थ श्रद्धान के होने का विरोध देखा जाता है। अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है। ज्ञान का कार्य नहीं करने पर ज्ञान में अज्ञान का व्यवहार लोक में अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि पुत्रकार्य को नहीं करने वाले पुत्र में भी लोक के भीतर अपुत्र कहने का व्यवहार देखा जाता है।

शंका—तीनों अज्ञानों को निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का भाव क्यों नहीं बतलाया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनों से एक साथ अनुबिद्ध होने के कारण संयतासंयत के समान भिन्नजातीयता को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्व का पाँचों ज्ञानों में अथवा तीनों अज्ञानों में अस्तित्व होने का विरोध पाया जाता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में तीनों अज्ञानी जीवों में भावों का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब पाँच प्रकार के ज्ञानी जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियों में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।४६।।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।४७।।

केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवन्तों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमः। केवलज्ञानिषु सयोगिकेवलि-अयोगिकेवलिनोः क्षायिको भावः।**

सयोगः इति को भावः?

अनादिपारिणामिको भावः। नायं औपशमिको भावः, मोहनीयस्य अनुपशान्तेऽपि योगोपलंभात्। न क्षायिकः, अनात्मस्वरूपस्य कर्मणां क्षयेण उत्पत्तिविरोधात्। न घातिकर्मोदयजनितः, नष्टेऽपि घातिकर्मोदये केवलिनि योगोपलंभात्। नाघातिकर्मोदयजनितोऽपि, सत्यपि अघातिकर्मोदये अयोगिनि योगानुपलंभात्। न शरीरनामकर्मोदयजनितोऽपि, पुद्गलविपाकिनां जीवपरिस्पंदनहेतुत्व विरोधात्।

कार्मणशरीरं न पुद्गलविपाकि, ततः पुद्गलानां वर्णरसगंधस्पर्श-संस्थान गमनादीनामनुपलंभात् अतः कार्मणशरीरेण उत्पादितो योगो भवतु इति चेत् ?

नैतत्, कार्मणशरीरमपि पुद्गलविपाकि चैव, सर्वकर्मणामाश्रयत्वात् कार्मणशरीरोदयविनष्टसमये एव योगविनाशदर्शनात् कार्मणशरीरजनितो योगश्चेत् ?

न, अघातिकर्मोदयविनाशानंतरं विनश्यत् भव्यत्वस्य पारिणामिकस्य औदयिकत्वप्रसंगात्। ततः सिद्धं योगस्य पारिणामिकत्वं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली दोनों के क्षायिक भाव होता है।

शंका—'सयोग' यह कौन सा भाव है ?

समाधान—'सयोग' यह अनादि पारिणामिक भाव है। इसका कारण यह है कि यह योग न तो औपशमिक भाव है, क्योंकि मोहनीय कर्म के उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है। न वह क्षायिक भाव है, क्योंकि आत्मस्वरूप से रहित योग की कर्मों के क्षय से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। योग घातिकर्मोदयजनित भी नहीं है। क्योंकि घातिकर्मोदय के नष्ट होने पर भी सयोगिकेवली में योग का सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदयजनित भी है, क्योंकि अघातिकर्मोदय के रहने पर भी अयोगिकेवली में योग नहीं पाया जाता है। योग शरीर नामकर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि पुद्गलविपाकी प्रकृतियों के जीव परिस्पंदन का कारण होने में विरोध है।

शंका—कार्मण शरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि उससे पुद्गलों के वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और संस्थान आदि का आगमन आदि नहीं पाया जाता है। इसलिए योग को कार्मण शरीर से उत्पन्न होने वाला मान लेना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सर्वकर्मों का आश्रय होने से कार्मण शरीर भी पुद्गलविपाकी ही है। इसका कारण यह है कि वह सभी कर्मों का आश्रय या आधार माना जाता है।

शंका—कार्मण शरीर के उदय का नाश होने के समय में ही योग का विनाश देखा जाता है। इसीलिए योग कार्मणशरीरजनित है, ऐसा मानना चाहिए।

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि ऐसा माना जाये तो अघातिया कर्मोदय के विनाश होने के अनन्तर ही विनष्ट होने वाले पारिणामिक भव्यत्व भाव के भी औदयिकपने का प्रसंग प्राप्त होगा। इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से योग के पारिणामिकपना सिद्ध हुआ। अथवा 'योग' यह औदयिक भाव है, क्योंकि शरीरनामकर्म

अथवा औदयिको योगः, शरीरनामकर्मोदयविनाशानंतरं योगविनाशोपलंभात्। न च भव्यत्वेन व्यभिचारः, कर्मसंबंधविरोधिनस्तस्य कर्मजनितत्वविरोधात्। शेषं सुगमं वर्तते।

एतज्ज्ञात्वा औपशमिकेन क्षायोपशमिकेन वा भावेन क्रमेण क्षायिको भावः प्राप्तव्योऽस्माभिरिति। एवं द्वितीयस्थले मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां भावनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

के उदय का विनाश होने के पश्चात् ही योग का विनाश देखा जाता है और ऐसा मानने पर भव्यत्वभाव के साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि कर्मसंबंध के विरोधी भव्यत्व पारिणामिक भाव की कर्म से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। शेष सुगम है।

ऐसा जानकर औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक भावों के द्वारा हमें और आपको क्रम से क्षायिक भाव प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय और केवलज्ञानी जीवों के भाव बतलाने वाले तीन सूत्र समाप्त हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

गुरु के बिना संसार समुद्र नहीं तर सकते

न विना यानपात्रेण तरितुं शक्यतेऽर्णवः।
नर्ते गुरूपदेशाच्च सुतरोऽयं भवार्णवः।।
बन्धवो गुरवश्चेति द्वये संप्रीतये नृणाम्।
बन्धवोऽत्रैव संप्रीत्यै गुरवोऽमुत्र चात्र च।।

जिस प्रकार जहाज के बिना समुद्र नहीं तिरा जा सकता है उसी प्रकार गुरु के उपदेश के बिना यह संसाररूपी समुद्र नहीं तिरा जा सकता है। इस संसार में भाई और पुत्र दोनों ही मनुष्यों की प्रीति के लिए होते हैं, किन्तु भाई तो इस लोक में ही प्रीति उत्पन्न करते हैं और गुरु इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकों में विशेषरूप से प्रीति के लिए होते हैं। अर्थात् भाई से इस लोक में ही सुख मिलता है तथा गुरु से इस भव और परभव में भी सर्वत्र सुख, कल्याण और मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। अतः सदैव गुरु के चरणों की सेवा करते रहना चाहिए।

–भगवज्जिनसेनाचार्य

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सप्तसूत्रैः संयमामार्गणानामाष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचसंयमसहितानां भावकथनत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनु द्वितीयस्थले संयतासंयत-असंयतजीवानां भावनिरूपणत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिसूत्रद्वयं, इति पातनिका।

अधुना सामान्यसंयम-पंचविधसंयमिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।।४९।।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।५०।।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं।।५१।।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं।।५२।।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।।५३।।

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा नाम का आठवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच संयम से सहित संयमियों के भावों का कथन करने हेतु ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयतजीवों के भाव निरूपण करने हेतु ''संजदासंजदा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब सामान्यसंयमधारी जीवों के एवं पाँच प्रकार के संयमियों के भाव बतलाने हेतु पाँच सूत्रों का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।४९।।

सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।५०।।

परिहारशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव गुणस्थान के समान हैं।।५१।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भाव गुणस्थान के समान हैं।।५२।।

यथाख्यातविहारशुद्धि संयतों में उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव गुणस्थान के समान हैं।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमयोः क्षायोपशमिको भावः, अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरणयोः उपशमश्रेण्यपेक्षया औपशमिको भावः, क्षपकश्रेण्यपेक्षया क्षायिको भावः। परिहारशुद्धिसंयतयोः प्रमत्ताप्रमत्तयोः क्षायोपशमिको भावः। सूक्ष्मसांपरायिकयोः उपशामक-क्षपकयोः औपशमिकः क्षायिकः वा भावः। यथाख्यातशुद्धिसंयतेषु चतुःस्थानेषु क्षायिकभावः एव।**

एवं प्रथमस्थले पंचविधसंयमिनां भावकथनत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

संप्रति संयतासंयत-असंयतानां भावप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

संजदासंजदा ओघं।।५४।।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संयतासंयतानां क्षायोपशमिको भावः, असंयतेषु मिथ्यात्वगुणस्थाने औदयिकः, सासादने पारिणामिकः, मिश्रगुणस्थाने क्षायोपशमिकः, चतुर्थगुणस्थाने औपशमिकः क्षायोपशमिकः क्षायिको वा। दर्शनमोहं आश्रित्य एते भावाः ज्ञातव्याः इति।**

एवं द्वितीयस्थले संयतासंयतासंयतानां भावप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे भावानुगमे पंचमग्रंथे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी के क्षायोपशमिक भाव होता है अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में उपशमश्रेणी की अपेक्षा औपशमिक भाव होता है, क्षपक श्रेणी की अपेक्षा क्षायिक भाव होता है। परिहारविशुद्धि संयम धारण करने वाले प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनियों के क्षायोपशमिक भाव होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयमधारी उपशामक और क्षपक महामुनियों के औपशमिक अथवा क्षायिक भाव होता है। यथाख्यातशुद्धि संयतों के चारों गुणस्थानों में क्षायिक भाव ही पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पाँच प्रकार के संयमियों के भाव कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत और असंयत जीवों के भावों का कथन करने हेतु दो सूत्र प्रगट होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत भाव गुणस्थान के समान है।।५४।।

असंयतों में मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संयतासंयत जीवों के क्षायोपशमिक भाव होता है, असंयतों में मिथ्यात्व गुणस्थान में औदयिक भाव, सासादनगुणस्थान में पारिणामिक भाव, मिश्र गुणस्थान में क्षायोपशमिक भाव एवं चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक में से कोई भी भाव रह सकता है। दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा ये भाव जानना चाहिए अर्थात् दर्शनमोहनीय के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से ही ये भाव बनते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयतों के भावों को बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नामक आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः सूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति दर्शनमार्गणायां चतुर्विधदर्शनिनां भावप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।५६।।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।।५७।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**चक्षुर्दर्शनवतां अचक्षुर्दर्शनवतां च मिथ्यात्वगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषाय-गुणस्थानपर्यंतानां गुणस्थानवद् भावाः कथयितव्याः। अवधिदर्शनिनां अवधिज्ञानिनामिव। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिनामिव ज्ञातव्यं।**

उक्तं चान्यत्र—चक्षुर्दर्शने अचक्षुर्दर्शने च क्षायिकसम्यक्त्वं क्षायिकचारित्रं च भवन्ति, शेषाःसप्त क्षायिकभावाः न भवन्ति। अवधिदर्शनेऽपि शेषाः सप्त क्षायिकाः भावाः मिथ्यात्वं अभव्यत्वं त्रीण्यज्ञानानि च न सन्ति। एवमेव केवलिनां भगवतां ओघवत् भावाः भवन्ति।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नामका नवमाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। सर्वप्रथम यहाँ दर्शनमार्गणा में चारों प्रकार के दर्शन वाले जीवों के भाव बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।५६।।

अवधिदर्शनी जीवों के भाव अवधिज्ञानियों के भावों के समान हैं।।५७।।

केवलदर्शनी जीवों के भाव केवलज्ञानियों के भावों के समान हैं।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चक्षुदर्शन वाले तथा अचक्षुदर्शन वाले जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान से प्रारंभ करके क्षीणकषाय गुणस्थान तक के मुनियों के भाव उन-उन गुणस्थानों के समान जानना चाहिए। अवधिदर्शन वाले जीवों में अवधिज्ञानियों के समान भाव होते हैं और केवलदर्शनी भगवन्तों के भाव केवलज्ञानियों के समान जानना चाहिए।

अन्यत्र भी कहा है—चक्षुदर्शन में और अचक्षुदर्शन में क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र होता है तथा शेष सात क्षायिक भाव नहीं होते हैं। अवधिदर्शन में भी शेष सात क्षायिक भाव, मिथ्यात्व, अभव्यत्व और तीनों अज्ञान नहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार केवली भगवन्तों के भाव गुणस्थान के समान होते हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनामार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अत्र त्रिभिः सूत्रैः लेश्यामार्गणाधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति लेश्यामार्गणायां गुणस्थानापेक्षया भावप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदुट्ठाणी ओघं।।५९।।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।।६०।।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।।६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यात्वादिचतुर्गुणस्थानेषु कृष्णनीलकापोतलेश्यासु गुणस्थानवद् भावाः ज्ञातव्याः। पीत-पद्मलेश्ययोः मिथ्यादि-अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्तानां गुणस्थानवद् भावाः सन्ति। शुक्ल प्रथमगुणस्थानादारभ्य सयोगिकेवलिपर्यन्तानां भावाश्च गुणस्थानवदेव। एवं ज्ञात्वा शुभलेश्याभिः सम्यक्त्वसहितशुभभावान् कृत्वा शुक्ललेश्याबलेन शुक्लध्यानमवलंब्य घातिकर्मणां क्षयं कृत्वा क्षायिकलब्धयः प्राप्तव्याः।**

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानामदशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा अधिकार कहा जा रहा है।

सर्वप्रथम लेश्यामार्गणा में गुणस्थान की अपेक्षा भावों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वालों में आदि के चार गुणस्थानवर्ती जीवों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।५९।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रत्तमसंयत गुणस्थान तक के जीवों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।६०।।

शुक्ललेश्या वालों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— मिथ्यात्व आदि चारों गुणस्थानों में कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में गुणस्थान के समान भाव जानना चाहिए। पीत और पद्म लेश्या में मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक के समान भाव होते हैं। शुक्ल लेश्या वाले प्रथम गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों के भाव गुणस्थान के समान ही होते हैं। ऐसा जानकर शुभलेश्यारूप परिणामों के द्वारा सम्यक्त्व सहित शुभ भाव प्रगट करके शुक्ललेश्या बे बल से शुक्लध्यान का अवलंबन लेकर घातिया कर्मों को नष्ट करके क्षायिक लब्धियाँ प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ सूत्रद्वयेन भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति भव्यत्वाभव्यत्वयोः भावप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।६२।।

अभवसिद्धिय त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।।६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**भव्यत्वमार्गणायां भव्यसिद्धिकेषु मिथ्यादृष्ट्यादि-अयोगिकेवलिपर्यंतानां गुणस्थानवद् भावाः ज्ञातव्याः। अभव्यजीवेषु पारिणामिको भावः। कर्मणामुदयेन उपशमेन क्षयेण क्षयोपशमेन वा अभव्यत्वानुपपत्तेः। भव्यत्वस्यापि पारिणामिको भावः, कर्मणामुदय-उपशम-क्षय-क्षयोपशमैः भव्यत्वानुपपत्तेः।**

अत्र गुणस्थानस्य भावमकथयित्वा मार्गणास्थानभावं प्ररूपयतः कोऽभिप्रायः?

समाधानं आह—गुणस्थानभावोऽनुक्तोऽपि ज्ञायते। अभव्यत्वं पुनः उपदेशमपेक्ष्यते पूर्वं अप्ररूपितस्वरूपत्वात्। तेन मार्गणाभावः उक्तोऽस्ति।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है।

यहाँ भव्य और अभव्य दोनों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्रों को अवतरित किया जाता है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्य सिद्धिकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थानों के समान होते हैं।।६२।।

अभव्यसिद्धिक यह कौन सा भाव है ? पारिणामिक भाव है।।६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—भव्यत्वमार्गणा में भव्यसिद्धिक जीवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त जीवों के भाव गुणस्थानों के समान जानना चाहिए। अभव्य जीवों में पारिणामिक भाव होता है, क्योंकि अभव्य जीवों में कर्मों के उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमजनित भावों का अभाव पाया जाता है।

कर्मों के उदय से, उपशम से, क्षय से अथवा क्षयोपशम से अभव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता है। इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता है।

शंका—यहाँ पर गुणस्थान के भाव को न कहकर मार्गणास्थानसंबंधी भाव का प्ररूपण करते हुए आचार्य का क्या अभिप्राय है ?

समाधान—गुणस्थान संबंधी भाव तो बिना कहे भी जाना जाता है किन्तु अभव्यत्व कौन सा भाव है यह, जो कि उपदेश की अपेक्षा रखता है, उसके स्वरूप का पहले प्ररूपण नहीं किया गया है, इसलिए यहाँ पर गुणस्थान का भाव न कहकर मार्गणा संबंधी भाव कहा है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यत्वमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ चतुःस्थलैः पंचविंशतिसूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणाधिकारो निगद्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां च भावकथनमुख्यत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिसूत्रदशकं। तदनु द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां भावकथनत्वेन ''वेदय-'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां भावप्रतिपादनत्वेन ''उवसम-'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनां भावनिरूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति सम्यक्त्वमार्गणायां सामान्यसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां च भावप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।६४।।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खइओ भावो।।६५।।

खइयं सम्मत्तं।।६६।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।६७।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में पच्चीस सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टि एवं क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के भाव कथन की मुख्यता वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के भाव बतलाने वाले ''वेदय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के भाव को कहने वाले ''उवसम'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवों के भाव निरूपण करने वाले ''सासण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों के भाव बतलाने हेतु दश सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।६४।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? क्षायिक भाव है।।६५।।

उक्त जीवों के क्षायिक सम्यक्त्व होता है।।६६।।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि का असंयतपना औदयिक भाव से है।।६७।।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।६८।।

खइयं सम्मत्तं।।६९।।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? ओवसमिओ भावो।।७०।।

खइयं सम्मत्तं।।७१।।

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।।७२।।

खइयं सम्मत्तं।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्यसम्यग्दृष्टीनां चतुर्थगुणस्थानादारभ्यायोगिकेवलिपर्यन्तानां भावाः गुणस्थानवद् ज्ञातव्याः। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः, दर्शनमोहनीयस्य निर्मूलक्षयेणोत्पन्नसम्यक्त्वात्।**

क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सम्यक्त्वं क्षायिकं चैव भवतीति अनुक्तसिद्धेः नेदं 'खइयं सम्मत्तं' सूत्रं आरभनीयं ?

नैष दोषः, न तावत् क्षायिकसम्यग्दृष्टिः संज्ञा क्षायिकस्य सम्यक्त्वस्यास्तित्वं गमयति, तपनभास्करादिनाम्नः अनन्वर्थस्यापि उपलंभात्। न चान्यत् किञ्चित् क्षायिकसम्यक्त्वस्यास्तित्वे चिन्हमस्ति।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।६८।।

उक्त जीवों के सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है।।६९।।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानों के क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव है।।७०।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकों के सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है।।७१।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानों के क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली यह कौन सा भाव है ? क्षायिक भाव है।।७२।।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली के सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्यसम्यग्दृष्टि जीवों के चतुर्थ गुणस्थान से शुरू करके अयोगिकेवली गुणस्थान तक के जीवों के भाव गुणस्थान के समान जानना चाहिए। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि के क्षायिक भाव होता है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व दर्शन मोहनीय कर्म के निर्मूल—पूर्ण क्षय से उत्पन्न होता है।

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक्त सिद्ध है, इसीलिए "खइयं सम्मत्तं" इस सूत्र का आरंभ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक सम्यक्त्व के अस्तित्व का ज्ञान नहीं कराती है। इसका कारण यह है कि लोक में तपन, भास्कर आदि अनन्वर्थ (अर्थ शून्य

ततः क्षायिकसम्यग्दृष्टे क्षायिकं सम्यक्त्वं चैव भवतीति ज्ञापितं।

अपरं च न सर्वे शिष्याः व्युत्पन्नाश्चैव, किंतु अव्युत्पन्ना अपि संति। तैः क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां किमुपशमसम्यक्त्वं किं क्षायिकसम्यक्त्वं, किं वेदकसम्यक्त्वं भवतीति पृच्छिते एतस्य सूत्रस्य अवतारो जातः, अतः क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकं चैव सम्यक्त्वं भवति न शेषे द्वे सम्यक्त्वे इति ज्ञापनार्थं। अथवा क्षायिकभावानां अपूर्वकरणक्षपकाणां क्षायिकचारित्रस्य इव दर्शनमोहक्षपकाणामपि क्षायिकभावानां तत्संबंधेन वेदकसम्यक्त्वोदये सति अपि क्षायिकसम्यक्त्वस्य अस्तित्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थं अस्य सूत्रस्यावतारः क्रियते।

औदयिकभावापेक्षया पुनः असंयतः भवति।

चारित्रावरणकर्मोदये सत्यपि जीवस्वभावचारित्रैकदेशस्य संयमासंयम-प्रमत्त-अप्रमत्तसंयमस्य आविर्भावस्योपलंभात्।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां उपशमश्रेण्यपेक्षया मोहनीयस्योपशमेन उत्पन्नचारित्रत्वात् मोहोपशमचारित्र-समन्वितत्वाच्च औपशमिको भावः। पुनः प्रारब्धदर्शनमोहनीयक्षपणः कृतकरणीयो वा उपशमश्रेणिं नारोहति इति ज्ञापनार्थं 'खइयं सम्मत्तं' इदं सूत्रं भणितं।

अनंतरं कथ्यते—क्षपकाणां क्षायिको भावः मोहनीयक्षपणहेतु-अपूर्वसंज्ञितचारित्रसमन्वितत्वात् मोहक्षयेणोत्पन्नचारित्रत्वात् सयोगि-अयोगिनोः घातिकर्मक्षयेण उत्पन्ननवकेवललब्धिभ्यश्च एतेषां क्षायिकसम्यक्त्वमेव।

या रूढ़) नाम भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्व के अस्तित्व का है नहीं। इसलिए क्षायिक सम्यग्दृष्टि के क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्र से ज्ञापित की गई है।

दूसरी बात यह भी है कि सभी शिष्य व्युत्पन्नमति नहीं होते, किन्तु कुछ अव्युत्पन्न भी होते हैं। उनके द्वारा क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के क्या उपशमसम्यक्त्व है, अथवा क्षायिकसम्यक्त्व है, अथवा वेदकसम्यक्त्व होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बात को बतलाने के लिए अथवा क्षायिकभाव वाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपकों के क्षायिक चारित्र के समान क्षायिक भाव वाले भी जीवों के दर्शन मोहनीय का क्षपण करते हुए उसके संबंध से वेदक सम्यक्त्व प्रकृति के उदय रहने पर भी क्षायिक सम्यक्त्व के अस्तित्व का प्रसंग प्राप्त होने पर उसका प्रतिषेध करने के लिए सूत्र का अवतार हुआ है।

औदयिक भाव की अपेक्षा जीव असंयत भी होता है।

चारित्रावरण कर्म के उदय होने पर भी जीव के स्वभाव भूत चारित्र के एकदेशरूप संयमासंयम, प्रमत्तसंयम और अप्रमत्तसंयम का आविर्भाव पाया जाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशम श्रेणी की अपेक्षा मोहनीयकर्म के उपशम से उत्पन्न हुआ चारित्र पाया जाने से और शेष तीन उपशामकों के मोहोपशम के कारणभूत चारित्र से समन्वित होने से औपशमिक भाव पाया जाता है। पुनः दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण का प्रारंभ करने वाला जीव अथवा कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टी जीव उपशमश्रेणी पर नहीं चढ़ता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए क्षायिक सम्यक्त्व यह सूत्र कहा गया है।

इसके अनंतर कहते हैं—अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकों के क्षायिकभाव है, क्योंकि उनके मोहनीयकर्म के क्षपण के कारणभूत अपूर्वसंज्ञा वाले चारित्र से समन्वित होने के कारण, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ के मोहक्षय से उत्पन्न हुआ चारित्र होने के कारण तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवली के घातिया कर्मों का क्षय हो जाने से उत्पन्न नव केवललब्धियों की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है।

एवं प्रथमस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां गुणस्थानापेक्षया भावनिरूपणत्वेन दश सूत्राणि गतानि। संप्रति वेदकसम्यग्दृष्टीनां भावप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

वेदयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।७४।।

खओवसमियं सम्मत्तं।।७५।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।७६।।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।७७।।

खओवसमियं सम्मत्तं।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**ओघे असंयतसम्यग्दृष्टेः त्रयो भावाः सामान्येन प्ररूपिताः, इदं सम्यक्त्वं औपशमिकं क्षायिकं क्षायोपशमिकं वा इति न प्ररूपितं। संप्रति सम्यक्त्वमार्गणायां इदं सम्यक्त्वं औपशमिकं क्षायिकं क्षायोपशमिकं वा इत्येतैः सूत्रैः ज्ञापितं भवति।**

इस प्रकार प्रथम स्थल में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का गुणस्थान की अपेक्षा भाव निरूपण करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टियों के भाव प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।७४।।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है।।७५।।

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि का असंयतपना औदयिक भाव से है।।७६।।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।७७।।

उक्त जीवों के सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ओघप्ररूपणा में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के सामान्य से तीन भाव कहे हैं किन्तु उनका यह सम्यग्दर्शन औपशमिक है या क्षायिक है अथवा क्षायोपशमिक है, यह प्ररूपित नहीं किया है। अब सम्यक्त्वमार्गणा में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का यह सम्यग्दर्शन औपशमिक सम्यक्त्वियों के औपशमिक होता है, क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के क्षायिक होता है और वेदकसम्यग्दृष्टियों के क्षायोपशमिक होता है, यह बात इन सूत्रों में सूचित की गई है।

क्योंकि दर्शनमोहनीय के (अंगभूत सम्यक्त्व प्रकृति के) उदय रहने पर भी जीव के गुणस्वरूप, श्रद्धान की उत्पत्ति क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में पाई जाती है।

क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं दर्शनमोहोदये सत्यपि जीवगुणीभूतश्रद्धानस्य उत्पत्तेरूपलंभात्।
एवं द्वितीयस्थले क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टेः भावप्ररूपणत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।
अधुना औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां गुणस्थानापेक्षया भावप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी त्ति को भावो ? उवसमिओ भावो।।७९।।

उवसमियं सम्मत्तं।।८०।।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।।८१।।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।।८२।।

उवसमियं सम्मत्तं।।८३।।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? उवसमिओ भावो।।८४।।

उवसमियं सम्मत्तं।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**दर्शनमोहोपशमेन उत्पन्नसम्यक्त्वात् चतुर्थगुणस्थाने औपशमिको भावः।**

इस प्रकार द्वितीय स्थल में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के भाव निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब औपशमिकसम्यग्दृष्टि जीवों के गुणस्थान की अपेक्षा भाव प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव है।।७९।।

उक्त जीवों के सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है।।८०।।

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का असंयतत्व औदयिक भाव से है।।८१।।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौन सा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है।।८२।।

उक्त जीवों के सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है।।८३।।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानों के उपशमसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौन सा भाव है ? औपशमिक भाव है।।८४।।

उक्त जीवों के सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होने के कारण

शेषकथनं सुगमं वर्तते।

एवं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां भावकथनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनां भावनिरूपणाय सूत्रत्रयं अवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठी ओघं।।८६।।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।।८७।।

मिच्छादिट्ठी ओघं।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रयाणां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उत्तरभावस्य त्रिपंचाशद्भावापेक्षया मिथ्यात्वगुणस्थाने चतुस्त्रिंशद्भावाः सन्ति। तथाहि—औदयिकस्य एकविंशतिः, चक्षुरचक्षुर्दर्शने द्वे, त्रीण्यज्ञानानि, दानादिक्षयोपशमलब्धयः पंच, पारिणामिकस्य त्रयो भेदाः इति। शेषाः एकोनविंशति भेदाः न सन्ति। तथा चास्मिन् गुणस्थाने मिथ्यात्वाभव्यत्वभावयोः व्युच्छित्तिर्भवति। एवमेव भावत्रिभंगीग्रन्थे उत्तरभेदानां वर्णना ज्ञातव्या भवति।**

एवं चतुर्थस्थले मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानभावनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानामद्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक भाव होता है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टियों के भावों का कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन आदि तीन गुणस्थानवर्तियों के भावनिरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।८६।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।८७।।

मिथ्यादृष्टि जीवों के भाव गुणस्थान के समान हैं।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों ही सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्तर भाव के त्रेपन भावों की अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थान में चौंतीस भाव होते हैं। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—औदयिक के इक्कीस भेद, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, तीन अज्ञान, दानादि पाँच क्षयोपशम लब्धियाँ और पारिणामिक के तीन भेद इस प्रकार ३४ भेद होते हैं। उनके शेष इक्कीस भेद नहीं होते हैं तथा इस मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व और अभव्यत्व इन दो भावों की व्युच्छित्ति हो जाती है। इसी प्रकार से भावत्रिभंगी ग्रंथ से भावों के उत्तर भेदों का वर्णन जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानवर्तियों के भाव निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सम्यक्त्व मार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ सूत्रद्वयेन संज्ञिमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति संज्ञि-असंज्ञिनोः भावप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।८९।।

असण्णि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संज्ञिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां गुणस्थानवद् भावाः कथयितव्याः। असंज्ञिनां—एकेन्द्रियादारभ्य अमनस्कपंचेन्द्रियान्तानां औदयिको भाव एव। नोइंद्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्शकानामुदयेन असंज्ञित्वोत्पत्तेः। एतज्ज्ञात्वा हेयोपादेयज्ञानस्योपयोगं कृत्वा मनःस्थिरीकृत्य धर्मध्यानमवलम्बनीयमिति।**

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम-त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संज्ञी मार्गणा अधिकार प्रारंभ

यहाँ दो सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा अधिकार प्रारंभ किया जा रहा है।

अब संज्ञी और असंज्ञी जीवों के भाव प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

संज्ञिमार्गणा के अनुवाद से संज्ञियों में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।८९।।

असंज्ञी यह कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के संज्ञी जीवों के भाव गुणस्थान के समान जानना चाहिए। एकेन्द्रिय से लेकर मनरहित पंचेन्द्रिय तक सभी असंज्ञी जीवों के औदयिक भाव ही होता है। नो इंद्रियावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय होने से असंज्ञीपने की उत्पत्ति होती है, ऐसा जानकर अपने हेय-उपादेय ज्ञान का सदुपयोग करते हुए मन को स्थिर करके धर्मध्यान का अवलंबन लेना चाहिए। ऐसा इस असंज्ञीमार्गणा का सार है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः सूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते।
संप्रति आहारानाहारमार्गणयोः भावप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली त्ति ओघं।।९१।।

अणाहाराणं कम्मइयभंगो।।९२।।

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणां अर्थः सुगमो वर्तते। अनाहाराणां मनःपर्ययज्ञानं उपशमचारित्रं सरागचारित्रं देशसंयमः विभंगावधिज्ञानं च इमे पंच भावाः न सन्ति, अतोऽष्टचत्वारिंशद् भावा एव। गुणस्थानापेक्षया एषां भावाः ज्ञातव्याः।**

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम-
चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है।

यहाँ आहारक और अनाहारक जीवों के भावों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।९१।।

अनाहारक जीवों के भाव कार्मणकाययोगियों के समान हैं।।९२।।

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवली यह कौन सा भाव है ? क्षायिक भाव है।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। अनाहारक जीवों के मनःपर्ययज्ञान उपशम चारित्र, सरागचारित्र, देशसंयम और विभंगावधिज्ञान ये पाँच भाव नहीं होते हैं, अतः शेष अड़तालीस भाव ही होते हैं। गुणस्थान की अपेक्षा इनके भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के भावानुगम प्रकरण में
गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में
आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

मांगीतुंग्यद्रितः सिद्धाः, कोट्यः नवनवतिश्चये।
श्रीपद्मादियतीन्द्रास्तान्, शुद्धभावाप्तये नुमः।।१।।
एवं आहारमार्गणा समाप्ता।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे भावानुगमनाम्नि सप्तमप्रकरणे धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीशांतिसागरस्तस्यप्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीप-रचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां मार्गणायां भावानुगम प्ररूपकः चतुर्थो महाधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ—मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से जो निन्यानवे करोड़ मुनि सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, उन श्रीपद्म—श्री रामचन्द्र आदि महामुनिराजों को शुद्ध भावों की प्राप्ति हेतु हम नमस्कार करते हैं।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में भावानुगम नाम के सातवें प्रकरण में धवलाटीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्रीशांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या, जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांत-चिंतामणिटीका में मार्गणाओं में भावों का निरूपण करने वाला भावानुगम नाम का चतुर्थ महाधिकार समाप्त हुआ।

विश्वशांति मंत्र

ॐ ह्रीं विश्वशांतिकराय श्री शांतिनाथाय नमः।

स्वास्थ्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं आरोग्य लाभं कुरु कुरु स्वाहा।

अथ अल्पबहुत्वानुगमः

अथ पंचमो महाधिकारः

अद्यतनात् चतुर्दिवसोन-द्वाविंशत्यधिक-पंचविंशतिशतानि वर्षाणि पूर्वं पावापुरीसरोवरमध्यात् यः सिद्धिपदमाप, तदैव तन्निमित्तेन इन्द्रादिभिः तस्यामेव निशि दीपमालिकाः प्रज्ज्वाल्य सर्वदिक्षु उद्योतं चकार तस्मै अंतिमतीर्थकराय श्रीमहावीरस्वामिने नमो नमः।

अथ अल्पबहुत्वानुगम प्रारंभ

पंचम महाधिकार

आज से चार दिन कम पच्चीस सौ बाईस वर्ष पूर्व जिन्होंने पावापुरी सरोवर के मध्य से सिद्धपद को प्राप्त किया है, उस निमित्त से उसी समय इन्द्रादिकों ने उसी रात्रि में दीपमालिका जलाकर सभी दिशाओं में प्रकाश फैला दिया था, उन अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

भावार्थ—ईसवी सन् १९९६ (वीर निर्वाणसंवत् २५२२) में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर वर्षायोग समापन से चार दिन पूर्व कार्तिक कृ. एकादशी (६-११-१९९६) को इस अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में सिद्धान्त चिन्तामणि टीका का लेखन प्रारंभ करते समय पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान महावीर के निर्वाण से पवित्र पावापुरी सिद्धक्षेत्र का स्मरण किया है तथा तीर्थंकर के श्रीचरणों में बारम्बार नमन करते हुए मानसिक रूप से टीका की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलभावना प्रगट की है।

मैंने सन् १९६९ से पूज्य माताजी के चरणों में रहकर यह अनुभव किया है कि तीर्थंकर भगवन्तों के पंचकल्याणक तीर्थों के प्रति इनके हृदय में तीव्र भक्ति के साथ यह भावना रहती है कि इन तीर्थों का प्रमुखरूप से भारी विकास होना चाहिए। क्योंकि ये पावन तीर्थ हमारी भारतीय संस्कृति के उद्गम स्थल हैं। इनकी भक्ति से हर प्राणी संसार समुद्र से तिर सकता है। इसी भक्ति के प्रतीक में इन्होंने भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ के चार-चार कल्याणक की भूमि हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर उस तीर्थ को विश्व के क्षितिज पर पहुँचा दिया। पुनः तीर्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या को कृतयुग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि के रूप में विकसित करने की प्रेरणा देकर संसार को स्मरण करा दिया कि सूर्यवंशी राजा रामचन्द्र के पूर्वज भगवान ऋषभदेव का इक्ष्वाकुवंश सर्वप्रथम अयोध्या का प्राणवंश रहा है। ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग तीर्थ की निर्माण प्रेरणा ने इलाहाबाद के त्रिवेणी संगम के प्राचीन इतिहास का स्मरण कराया है कि युग की आदि में सर्वप्रथम अध्यात्म की त्रिवेणी प्रयाग में ही प्रवाहित हुई थी, जब ऋषभदेव ने वटवृक्ष के नीचे प्रथम जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय को धारणकर वहाँ से अप्रतिम त्याग का प्रथम संदेश प्रसारित किया था। इसके पश्चात् रामचन्द्र आदि ९९ करोड़ मुनियों की निर्वाणभूमि मांगीतुंगी आदि अनेक तीर्थों के विकास की प्रेरणा देकर जहाँ ज्ञानमती माताजी ने अपने नाम को सार्थक किया, वहीं भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर-नालंदा-बिहार में अभूतपूर्व विकास उनकी संप्रेरणा का प्रतिफल है, भगवान मुनिसुव्रत की गर्भ-जन्म आदि चार कल्याणक भूमि राजगृही-नालंदा (बिहार), भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी, गौतम गणधर की निर्वाणभूमि गुणावां-बिहार, भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी, पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमो नामाष्टमं प्रकरणं प्रारभ्यते। तस्मिन् ग्रन्थे ओघादेशाभ्यां पंचमषष्ठनामधेयौ द्वौ महाधिकारौ स्तः। तत्रापि पंचममहाधिकारे षड्विंशतिसूत्राणि। षष्ठमहाधिकारे षट्पंचाशदधिकत्रिशतसूत्राणि वक्ष्यन्ते।

अधुना पंचममहाधिकारे नवभिः स्थलैः षड्विंशतिसूत्रैः प्रस्तावना प्रस्तूयते। तत्र प्रथमस्थले अल्पबहुत्वकथनप्रतिज्ञारूपेण ''अप्पाबहुआणुगमेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले उपशामकानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''ओघेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले क्षपकाणां सयोगि-अयोगिकेवलिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''खवा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले अप्रमत्तप्रमत्त-संयतासंयतानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''अप्पमत्त'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनः पंचमस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः षष्ठस्थले असंयतसम्यग्दृष्टि-मिच्छादृष्टिजीवयोः अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं सप्तमस्थले उपशमादित्रिकसम्यग्दृष्टीनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं अष्टमस्थले संयतासंयतानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''संजदासंजद'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् नवमस्थले प्रमत्ताप्रमत्तादिसाधूनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''पमत्तापमत्त'' इत्यादिषट्सूत्राणि इति समुदायपातनिका कथ्यते।

अहिच्छत्र एवं निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर शाश्वत सिद्धक्षेत्र, भगवान श्रेयांसनाथ जन्मभूमि सिंहपुरी (सारनाथ), भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी आदि अनेक कल्याणक तीर्थों के जीर्णोद्धार-विकास एवं प्रचार-प्रसार करने में जो भूमिका ज्ञानमती माताजी ने निभाई है वह इनकी दर्शनविशुद्धि भावना का प्रतीक है, अतः शीघ्रमोक्षगामी आत्माओं में इनकी गणना हो जाना कोई अतिशयोक्ति वाली बात नहीं है।

हम सभी को ऐसे गुरुओं के आदर्श जीवन से प्रेरणा प्राप्त करके आत्मा को तीर्थ बनाने का पुरुषार्थ अवश्यमेव करना चाहिए।

इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में अल्पबहुत्वानुगम नामक आठवाँ प्रकरण प्रारंभ होता है। उसमें ओघ और आदेश नाम वाले पंचम और षष्ठम दो महाधिकार हैं। उसमें भी पाँचवें महाधिकार में छब्बीस सूत्र हैं और छठे महाधिकार में तीन सौ छप्पन सूत्र हैं।

अब पंचम महाधिकार में नौ स्थलों में छब्बीस सूत्रों के द्वारा प्रस्तावना प्रस्तुत की जा रही है।

उनमें से प्रथम स्थल में अल्पबहुत्व के कथन की प्रतिज्ञारूप से "अप्पाबहुआणुगमेण" इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीयस्थल में उपशामकों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु "ओघेण" इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में क्षपकों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवन्तों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले "खवा" इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में अप्रमत्त, प्रमत्त और संयतासंयत जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले "अप्पमत्त" इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः पंचम स्थल में सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले "सासण" इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद छठे स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व कहने वाले "असंजद" इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे सातवें स्थल में उपशम आदि तीन सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले "असंजद" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर आठवें स्थल में संयतासंयत जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु "संजदासंजद" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् नवमें स्थल में प्रमत्त और अप्रमत्त साधुओं का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले "पमत्तापमत्त" इत्यादि छह सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

संप्रति अल्पबहुत्वानुगमप्रतिपादनाय प्रतिज्ञारूपेण प्रथमसूत्रमवतरति—

अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अल्पं च बहुत्वं च अल्पबहुत्वे, तयोरनुगमः अल्पबहुत्वानुगमः तेन निर्देशो द्विविधः भवति ओघः आदेशश्चेति। संगृहीतवचनकलापः द्रव्यार्थिकनिबंधनः ओघो नाम। असंगृहीतवचनकलापः पूर्वोक्तार्थावयवनिबंधः पर्यायार्थिकनिबंधनः आदेशो नाम।**

तत्र नामस्थापनाद्रव्यभावभेदेन अल्पबहुत्वं चतुर्विधं। अल्पबहुत्वशब्दो नामाल्पबहुत्वं। एतस्मात् एतस्य बहुत्वं अल्पत्वं वा इदमिति एकत्वाध्यारोपेण स्थापितं स्थापनाल्पबहुत्वं। द्रव्याल्पबहुत्वं द्विविधं—आगम-नोआगमभेदेन। अल्पबहुत्वप्राभृतज्ञायकः अनुपयुक्तः आगमद्रव्यअल्पबहुत्वं। नोआगमद्रव्य-अल्पबहुत्वं त्रिविधं—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदात्। तत्र ज्ञायकशरीरं—भावि-वर्तमान-समुत्यक्तमिति त्रिविधमपि अपगतार्थं। भावि—भविष्यत्काले अल्पबहुत्वप्राभृतज्ञायकः। तद्व्यतिरिक्ताल्पबहुत्वं त्रिविधं—सचित्तमचित्तं मिश्रमिति। जीवद्रव्य-अल्पबहुत्वं सचित्तं। शेषद्रव्याल्पबहुत्वमचित्तं। द्वयोरपि अल्पबहुत्वं मिश्रं।

भावाल्पबहुत्वं द्विविधं—आगम-नोआगमभेदेन। अल्पबहुत्व—प्राभृतज्ञायकः उपयुक्तः आगमभावाल्प-बहुत्वं। आत्मनः ज्ञानदर्शनविषयं पुद्गलानां अनुभागविषयं योगादिविषयं च नोआगमभाव-अल्पबहुत्वमिति।

अब अल्पबहुत्वानुगम के प्रतिपादन हेतु प्रतिज्ञारूप से प्रथम सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्वानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अल्प और बहुत्व ये दोनों शब्द मिलकर अल्पबहुत्व—हीनाधिकतारूप दो चीजें कही गई हैं। दोनों को मिलाकर अनुयोगद्वार के कथन को अल्पबहुत्वानुगम कहा गया है। उसके दो प्रकार का निर्देश—कथन किया जाता है—१. ओघ-गुणस्थान के रूप में निर्देश, २. आदेश-मार्गणा के रूप में निर्देश। जिसमें वचनकलाप संग्रहीत हैं तथा जो द्रव्यार्थिकनय की निमित्तक है वह ओघनिर्देश है। जिसमें संपूर्ण वचन कलाप संग्रहीत नहीं हैं, जो पूर्वोक्त अर्थावयव में बताये गये भेदों के आश्रित हैं और जो पर्यायार्थिकनय निमित्तक है, वह आदेश निर्देश है।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से अल्पबहुत्व चार प्रकार का है। उनमें से अल्पबहुत्व शब्द नाम अल्पबहुत्व है। यह इससे बहुत है अथवा यह इससे अल्प है, इस प्रकार एकत्व के अध्यारोप से स्थापना करना स्थापना अल्पबहुत्व है। द्रव्य अल्पबहुत्व आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। जो अल्पबहुत्व विषयक प्राभृत को जानने वाला है,परन्तु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व कहते हैं। नो आगमद्रव्य अल्पबहुत्व ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें से भावी, वर्तमान और अतीत, इन तीनों ही प्रकार के ज्ञायक शरीर का अर्थ जाना जा चुका है। जो भविष्यत्काल में अल्पबहुत्वप्राभृत का जानने वाला होगा, उसे भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्व निक्षेप कहते हैं। तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकार का है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। जीवद्रव्यविषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व अचित्त है और इन दोनों का अल्पबहुत्व मिश्र है।

आगम और नोआगम के भेद से भाव अल्पबहुत्व दो प्रकार का है। जो अल्पबहुत्व प्राभृत का जानने वाला है और वर्तमान में उसके उपयोग से युक्त है उसे आगम भाव अल्पबहुत्व कहते हैं। आत्मा के ज्ञान और दर्शन को तथा पुद्गलकर्मों के अनुभाग और योगादि को विषय करने वाला नोआगम भाव अल्पबहुत्व है।

एतेषु अल्पबहुत्वेषु केन प्रकृतमत्र ?

सचित्तद्रव्य-अल्पबहुत्वेन प्रकृतं-प्रयोजनं।

संप्रति निर्देशस्वामित्वादिप्रसिद्धषडनुयोगद्वारैः अल्पबहुत्वं निर्णीयते।

किमल्पबहुत्वं ?

संख्याधर्मोऽल्पबहुत्वं, एतस्मात् इदं त्रिगुणं चतुर्गुणमिति बुद्धिग्राह्यः।

कस्याल्पबहुत्वं ?

जीवद्रव्यस्य, किंच — धर्मिव्यतिरिक्तसंख्याधर्मस्य पृथगनुपलंभात्।

केनाल्पबहुत्वं ?

पारिणामिकेन भावेन भवति।

कुत्राल्पबहुत्वं ?

जीवद्रव्ये भवति।

कियच्चिरं अल्पबहुत्वं ?

अनादि-अपर्यवसितं। सर्वेषां गुणस्थानानामेतेनैव प्रमाणेन सर्वकालमवस्थानात्।

कतिविधं अल्पबहुत्वं ?

मार्गणाभेदभिन्नगुणस्थानमात्रं अल्पबहुत्वमिति।

तात्पर्यमेतत् — अल्पबहुत्वं-हीनाधिकत्वं गुणस्थानेषु जीवानां मार्गणासु च ज्ञात्वा आत्मनोऽनन्तगुणमन्वेष्य

शंका — इन अल्पबहुत्वों में से प्रकृत में किससे प्रयोजन है ?

समाधान — प्रकृत में सचित्त द्रव्य के अल्पबहुत्व से प्रयोजन है।

अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारों से अल्पबहुत्व का निर्णय किया जाता है।

शंका — अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान — संख्या के धर्म को अल्पबहुत्व कहते हैं। यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है इस प्रकार बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने योग्य है।

शंका — अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्व का स्वामी कौन है ?

समाधान — जीवद्रव्य के अल्पबहुत्व होता है अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है। क्योंकि धर्मी को छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता है।

शंका — अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान — अल्पबहुत्व पारिणामिक भाव से होता है।

शंका — अल्पबहुत्व किसमें होता है अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान — जीवद्रव्य में अर्थात् जीवद्रव्य अल्पबहुत्व का अधिकरण है।

शंका — अल्पबहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान — अल्पबहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि सभी गुणस्थानों का इसी प्रमाण से सर्वकाल अवस्थान रहता है।

शंका — अल्पबहुत्व कितने प्रकार का है ?

समाधान — मार्गणाओं के भेद से गुणस्थानों के जितने भेद होते हैं, उतने प्रकार का अल्पबहुत्व होता है।

तात्पर्य यह है कि गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों की हीनाधिकता जानकर अपनी आत्मा के अनंत

ज्ञानगुणमहत्त्वेन शुद्धात्मस्वरूपं भावयित्वा निजपरमात्मपदं प्राप्तव्यमिति।

एवं प्रथमस्थले अल्पबहुत्वकथनप्रतिज्ञारूपेण एकं सूत्रं गतम्।

अधुना उपशामकानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

ओघेण तिसु अद्धासु उवसमा पवेसेण तुल्ला थोवा।।२।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— **श्रेणिसंबंधित्रिगुणस्थानेषु उपशामकाः साधवः प्रवेशेन तुल्याः, एकादिचतुःपंचाशत्मात्रजीवानां प्रवेशं प्रति प्रतिषेधाभावात्। न च सर्वकालं त्रिषु उपशामकेषु प्रतिशत्जीवैः सदृशत्वनियमः, संभावनां प्रतीत्य सदृशत्वोक्तेः।**

उपशान्तकषायस्य तावन्मात्रा संख्या, पुनः पृथक्सूत्रं किमर्थं ?

उपशान्तकषायस्य कषायोपशामकानां च प्रत्यासत्तेः अभावस्य संदर्शनफलः। येषां प्रत्यासत्तिरस्ति तेषामेकयोगः, इतरेषां भिन्नयोगः भवति इति एतेन ज्ञापितं अस्ति।

उक्तं चान्यत्रापि—''सामान्येन तावत् सर्वतः स्तोकाः त्रय उपशमकाः, अष्टसु समयेषु क्रमात् प्रवेशे एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादि जघन्याः। उत्कृष्टास्तु १६/२४/३०/३६/४२/४८/५४/५४।

गुणों का अन्वेषण करके ज्ञानगुण की महिमा से शुद्धात्मस्वरूप की भावना करते हुए निज परमात्मपद को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अल्पबहुत्वानुगम के कथन की प्रतिज्ञारूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब उपशामकों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

ओघनिर्देश से अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रदेश की अपेक्षा एक समान हैं तथा अन्य सब गुणस्थानों के प्रमाण से अल्प हैं।।२।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— श्रेणीसंबंधी आदि के तीन गुणस्थानों में उपशामक साधु प्रवेश की अपेक्षा एक सदृश होते हैं, क्योंकि एक से लेकर चौवन मात्र जीवों के प्रवेश के प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है। किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकों में प्रवेश करने वाले जीवों की अपेक्षा सदृशता का नियम नहीं है, क्योंकि संभावना की अपेक्षा सदृशता का कथन किया गया है।

शंका— उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों की उतनी मात्र संख्या निश्चित है पुनः पृथक् से सूत्र कथन क्यों किया गया ?

समाधान— उपशांतकषाय का और कषाय के उपशमन करने वाले उपशामकों की परस्पर प्रत्यासत्ति का अभाव दिखना इसका फल है। जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है उनका ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरों का भिन्न योग होता है, यह बात इस सूत्र से सूचित की गई है।

अन्यत्र—तत्त्वार्थवृत्ति में भी कहा है—

सामान्य से तीनों उपशामक जीव सबसे कम होते हैं, क्रम से आठों समयों में प्रवेश करने पर एक अथवा दो अथवा तीन आदि जघन्य संख्या है और उत्कृष्टरूप से सोलह, चौबीस, तीस, छत्तिस, बयालीस,

स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः। उपशान्तकषायास्तावन्त एव संख्याकथनावसरे प्रोक्ताः। उपशामकानां इतरगुणस्थानवर्त्तिभ्योऽल्पत्वात् प्रथमतः कथनम्। तत्रापि त्रय उपशमकाः सकषायत्वात् उपशान्तकषायेभ्यो भेदेन निर्दिष्टाः प्रवेशेन तुल्यसंख्याः। सर्वेऽप्येते षोडशादिसंख्याः[१]।'' ज्ञातव्या भवन्ति।

संप्रति क्षपकाणां सयोग्ययोगिकेवलिनोश्चाल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

खवा संखेज्जगुणा।।४।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।५।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।६।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपशामकगुणस्थाने उत्कर्षेण प्रविश्यमानचतुःपंचाशद्जीवेभ्यः क्षपकैकगुणस्थाने उत्कर्षेण प्रविश्यमानाष्टोत्तरशतजीवानां द्विगुणत्वोपलंभात्। संचयमपेक्ष्य उपशामकस्य एकगुणस्थाने उत्कर्षेण पंचोन-चतुरुत्तरत्रिशतमात्रस्यापि क्षपकैकगुणस्थाने उत्कृष्टसंचयस्य द्व्यूनषट्शतमात्रस्य द्विगुणत्वदर्शनात्। क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव ज्ञातव्याः।**

अड़तालिस, चौवन, चौवन प्रमाण संख्या होती है। अपने गुणस्थान कालों में प्रवेश की अपेक्षा संख्या एक समान रहती है। उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों की यह मात्रा संख्या कथन के प्रसंग में कही गई है। उपशामक जीवों की संख्या उनसे अन्य गुणस्थानों की अपेक्षा कम होने के कारण प्राथमिक रूप से उनका कथन किया गया है। उसमें भी तीन उपशामक जीव कषाय सहित होने के कारण उपशांतकषाय गुणस्थान-वर्तियों से भेद के द्वारा प्रवेश में उनकी तुल्यसंख्या बतलाई गई है। ये सभी सोलह संख्या प्रमाण हैं ऐसा जानना चाहिए।

अब क्षपक महामुनियों का, सयोगिकेवलियों का एवं अयोगिकेवलियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थों से क्षपक संख्यातगुणित हैं।।४।।

क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।५।।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेश की अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण हैं।।६।।

सयोगिकेवली काल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशामक के गुणस्थान में उत्कृष्ट से प्रवेश करने वाले चौवन (५४) जीवों की अपेक्षा क्षपक के एक गुणस्थान में उत्कृष्ट से प्रवेश करने वाले एक सौ आठ जीवों की संख्या दो गुनी पाई जाती है। एक गुणस्थान में उत्कृष्ट से कम से पाँच कम तीन सौ चार अर्थात् दो सौ निन्यानवे (२९९) संचय से भी क्षपक के एक गुणस्थान के दो कम छह सौ (५९८) रूप संचय की दुगुणता देखी जाती है।

क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ महामुनियों की संख्या इतनी ही जानना चाहिए।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

घातिकर्मघातिनां सयोगिनामयोगिनां च छद्मस्थजीवैः प्रत्यासत्तेरभावात् पृथक्सूत्रारंभो जातः। इमे सयोगिनः अयोगिनश्च प्रवेशापेक्षया अष्टोत्तरशतप्रमाणाः। अतः द्वौ अपि तुल्यौ कथ्येते। संचयापेक्षया द्व्यूनषट्शतप्रमाणाः अयोगिकेवलिनः। सयोगिकेवलिनस्तु अष्टलक्ष-अष्टानवतिसहस्र-द्व्यधिकपंचशतमात्राः भवन्ति, अतः संख्यातगुणाः उच्यन्ते।

उक्तं च सर्वार्थसिद्धौ—सयोगिकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः[1] ८९८५०२।

एवं तृतीयस्थले क्षपकाणां सयोग्ययोगिनां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति अप्रमत्त-प्रमत्तसंयतासंयतानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।८।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।९।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अप्रमत्तसंयताः द्विकोटि-षण्णवतिलक्षनवनवतिसहस्र-त्र्युत्तरशतप्रमाणाः भवन्ति। अप्रमत्तसंयतापेक्षया प्रमत्तसंयताः द्विगुणा भवन्ति।**

घातिया कर्मों का घात करने वाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवली की छद्मस्थ जीवों के साथ प्रत्यासत्ति का अभाव होने से पृथक् सूत्र बनाया गया है। ये सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेश की अपेक्षा एक सौ आठ प्रमाण हैं अतः दोनों ही एक समान कहे गये हैं। संचय की अपेक्षा दो कम छह सौ अर्थात् पाँच सौ अट्ठानवे संख्या प्रमाण अयोगिकेवली हैं। सयोगिकेवली आठ लाख, अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो संख्या प्रमाण होते हैं अतः संख्यातगुणे कहे जाते हैं।

सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में भी कहा है—

सयोगिकेवली स्वकाल से समुदित-संख्यातगुणे प्रमाण हैं। ८९८५०२ संख्या प्रमाण उनकी गिनती होती है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में क्षपकों का, सयोगिकेवलियों का और अयोगिकेवलियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और संयतासंयत जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवलियों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।८।।

अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।९।।

प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अप्रमत्तसंयत दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या प्रमाण होते हैं। अप्रमत्तसंयत की अपेक्षा प्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या दो गुनी अधिक है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परा के द्वारा आये हुए उपदेश से यह बात जानी जाती है। अतः पाँच करोड़

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. १, सूत्र ८।

एतत्कथं ज्ञायते ?

आइरियपरंपरागदुवदेसादो[1]।

अतो इमे पंचकोटि-त्रिनवतिलक्ष-अष्टानवतिसहस्र-षडधिकद्विशतप्रमाणाः सन्ति। संयतासंयताः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रत्वात् पूर्वोक्तराशेः असंख्यातगुणाः कथ्यन्ते।

अत्र कश्चिदाह—

मानुषक्षेत्रस्याभ्यन्तरे एव संयतासंयता भवन्ति न च बहिर्भागे, तत्रापि भोगभूमिषु संयमासंयम-भावविरोधात्। न च मानुषक्षेत्रस्याभ्यंतरे असंख्यातानां संयतासंयतानां अस्तित्वसंभवः, तावन्मात्राणामत्रा-वस्थानविरोधात्। ततः संयतासंयतैः संख्यातगुणैर्भवितव्यमिति चेत् ?

आचार्यदेवःपरिहरति—

नैतत्, स्वयंप्रभपर्वतपरभागे असंख्यातयोजनविस्तृते कर्मभूमिप्रतिभागे असंख्यातानां तिरश्चां संयमासंयमगुणस्थानसहितानामुपलंभात्।

एवं चतुर्थस्थले अप्रमत्त-प्रमत्त-देशसंयतगुणस्थानवर्तिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-अल्पबहुत्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।११।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधसम्यक्त्वेषु स्थित-संयतासंयतेभ्यः एकोपशमसम्यक्त्वात् सासादनगुणस्थानं**

तिरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह संख्या प्रमाण हैं। संयतासंयत जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र होने से पूर्वोक्त राशि से असंख्यातगुणे कहे गये हैं।

यहाँ कोई शंकाकार कहता है—संयतासंयत जीव मनुष्यक्षेत्र के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं क्योंकि भोगभूमि में संयमासंयम के उत्पन्न होने का विरोध है तथा मनुष्य क्षेत्र के भीतर असंख्यात संयतासंयतों का पाया जाना संभव नहीं है, क्योंकि उतने संयतासंयतों का यहाँ मनुष्य क्षेत्र के भीतर अवस्थान मानने में विरोध आता है। इसलिए प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत संख्यातगुणित होना चाहिए ?

तब आचार्यदेव समाधान देते हैं—नहीं, क्योंकि असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमि के प्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में संयमासंयम गुणस्थानसहित असंख्यात तिर्यंच पाये जाते हैं।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में अप्रमत्त, प्रमत्त और देशसंयत गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र प्रगट होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।११।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीन प्रकार के सम्यक्त्व में स्थित संयतासंयतों की अपेक्षा एक

---

१. षट्खण्डागम, पुस्तक ५, पृ. २४७।

प्रतिपद्य षडावलिकासु संचितजीवानां असंख्यातगुणत्वोपदेशात्।

एतत्कथं ज्ञायते ?

एकसमये संयमासंयमं प्रतिपद्यमानजीवेभ्यः एकसमये चैव सासादनगुणस्थानं प्रतिपद्यमान-जीवानामसंख्यातगुणत्वदर्शनात्।

तदपि कुतो बोध्यते ?

अनंतसंसारविच्छेदहेतुसंयमासंयमोपलब्धेः अतिदुर्लभत्वात्[१]।

सासादनसम्यग्दृष्टिकालं षडावलिमात्रं, सम्यग्मिथ्यादृष्टेः कालमन्तर्मुहूर्त्तमात्रं। अतः सासादन-सम्यग्दृष्टिकालात् सम्यग्मिथ्यादृष्टिकालः संख्यातगुणः। अस्मात् हेतोः सासादनेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः भवन्ति। तथा च सासादनगुणस्थानं उपशमसम्यग्दृष्टय एव प्राप्नुवन्ति, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानं पुनः वेदकसम्यग्दृष्टयः उपशमसम्यग्दृष्टयः अष्टाविंशतिसत्कर्मिमिथ्यादृष्टयश्चापि प्रतिपद्यन्ते। तेन सासादनप्रतिपद्यमानराशिभ्यः सम्यग्मिथ्यात्वप्रतिपद्यमानराशयः संख्यातगुणाः भवन्ति। अत्रैतद्विशेषः ज्ञातव्यः। वेदकसम्यग्दृष्टयो मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं च प्रतिपद्यन्ते, एषु अपि सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानेभ्यः मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमान वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः सन्ति।

एवं पंचमस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योरल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति असंयतसम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टिजीवाल्पबहुत्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

उपशमसम्यक्त्व से सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर छह आवलियों से संचित जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक समय में संयमासंयम को प्राप्त होने वाले जीवों से एक समय में ही सासादन गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव असंख्यातगुणित देखे जाते हैं।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि अनन्त संसार के विच्छेद का कारणभूत संयमासंयम का पाना अतिदुर्लभ है।

सासादनसम्यग्दृष्टियों का काल छह आवली मात्र है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है अतः सासादनसम्यग्दृष्टियों के काल से सम्यग्मिथ्यादृष्टि का काल संख्यातगुणित है, इसी हेतु से सासादन गुणस्थानवर्तियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणे होते हैं तथा सासादनगुणस्थान को उपशमसम्यग्दृष्टि ही प्राप्त करते हैं। परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि जीव प्राप्त होते हैं, इसलिए सासादनगुणस्थान को प्राप्त होने वाली राशि से सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाली राशि संख्यातगुणी होती है। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि वेदकसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं तथा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले वेदकसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।

इस प्रकार पंचम स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार हो रहा है—

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. ५, पृ. २४९।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।१४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सम्यग्मिथ्यादृष्टिभ्यः असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। किंच—सम्यग्मिथ्यादृष्टिराशिः अन्तर्मुहूर्तसंचितः, असंयतसम्यग्दृष्टिराशिः पुनः द्विसागरोपमसंचितः।**

असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यो मिथ्यादृष्टिजीवा अनंतगुणाः सन्ति, आनन्त्यात्। अभव्यसिद्धजीवेभ्योऽनन्तगुणः, सिद्धराशिभ्योऽपि अनंतगुणः गुणकारो वर्तते, नि तु अनन्तानि सर्वजीवराशिप्रथमवर्गमूलानि इति।

एवं षष्ठस्थले असंयतसम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टिजीवाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

उपशमसम्यग्दृष्ट्यादि-त्रिविधसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१५।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१६।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्थगुणस्थाने उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः सन्ति।**

कश्चिदाह—

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३।।

असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। दूसरी बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि अन्तर्मुहूर्त संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं, क्योंकि वे संख्या में अनंत होते हैं। अभव्यसिद्धों से अनंतगुणा और सिद्धों से भी अनंतगुणा गुणकार हैं, जो संपूर्ण जीवराशि के अनंत प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।

इस प्रकार छठे स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमसम्यग्दृष्टि आदि तीन प्रकार के सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।१५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१६।।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदक सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चतुर्थ गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

उपशमसम्यक्त्वात् क्षायिकसम्यक्त्वमतिदुर्लभं, दर्शनमोहनीयक्षयेण उत्कर्षेण षण्मासस्य अन्तरं कृत्वा उत्कृष्टेन अष्टोत्तरशतमात्राणां चैव उत्पद्यमानत्वात्। क्षायिकसम्यक्त्वात् उपशमसम्यक्त्वमतिसुलभं, सप्तरात्रिंदिवान्तरं कृत्वा एकसमयेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रजीवेषु तदुत्पत्तिदर्शनात्। ततः क्षायिकसम्यग्दृष्टिभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टिभिः असंख्यातगुणैः भवितव्यमिति चेत् ?

आचार्यः परिहरति—सत्यमेतत्, किन्तु संचयकालमाहात्म्येन उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणा जाताः। तद्यथा—उपशमसम्यक्त्वकालः उत्कृष्टोऽपि अन्तर्मुहूर्तमात्र एव। क्षायिकसम्यक्त्वकालः पुनः जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण द्वि पूर्वकोटि-अभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रंतत्र मध्यमकालो सार्धैकपल्योपममात्रमिति।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने क्षायिकसम्यग्दृष्टिभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः सन्ति, किंच—दर्शनमोहनीयक्षयेण उत्पन्नक्षायिकसम्यक्त्वात् क्षायोपशमिकवेदकसम्यक्त्वस्य सुष्ठु सुलभत्वोपलंभात्। ओघसौधर्म-असंयतसम्यग्दृष्टिभागहारस्य आवलिकायाः असंख्यातभागप्रमाणत्वात्, एषां गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागो भवति।

एवं सप्तमस्थले असंयतसम्यग्दृष्टिस्थाने त्रिविधसम्यक्त्वानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्। संप्रति पंचमगुणस्थाने त्रिविधसम्यक्त्वानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१८।।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१९।।

उपशमसम्यक्त्व से क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि दर्शनमोहनीय के क्षय द्वारा उत्कृष्ट छह मास के अंतराल से अधिक से अधिक एक सौ आठ जीवों की ही उत्पत्ति होती है। परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व से उपशमसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि सात रात-दिन के अंतराल से एक समय में पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमित जीवों में उपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

तब आचार्यदेव इसका परिहार करते हैं—यह कहना सत्य है, किन्तु संचय काल के माहात्म्य से उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं। वह इस प्रकार है—उपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। परन्तु क्षायिकसम्यक्त्व का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल दो पूर्वकोटि से अधिक तेंतीस सागरोपमप्रमाण है। उसमें मध्यमकाल डेढ़ पल्योपम प्रमाण है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। क्योंकि दर्शनमोहनीयकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्व का पाना अति सुलभ है। सामान्य से सौधर्म स्वर्ग के असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का भागहार आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। इनका गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण होता है।

इस प्रकार सातवें स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में तीन प्रकार के सम्यक्त्वों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचमगुणस्थान में तीन प्रकार के सम्यक्त्वों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१८।।

संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं।।१९।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचमगुणस्थाने अणुव्रतसहितक्षायिकसम्यग्दृष्टीनामतिदुर्लभत्वात् क्षायिकसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः भवन्ति। न च तिर्यक्षु क्षायिकसम्यक्त्वेन सह संयमासंयमो लभ्यते, तत्र दर्शनमोहनीयक्षपणाभावात्।**

तदपि कुतो ज्ञायते ?

तदेव आह— **''दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु।**
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ[१]।।

अस्मादेव गाथासूत्राद् ज्ञायते।

येऽपि पूर्वं बद्धतिर्यगायुष्काः मनुष्याः तिर्यक्षु क्षायिकसम्यक्त्वेन उत्पद्यन्ते, तेषां न संयमासंयमोऽस्ति, भोगभूमिं मुक्त्वा तेषां अन्यत्रोत्पत्तेरसंभवात्। तेन क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः संख्याताश्चैव, तत्रापि मनुष्येष्वपि मनुष्यपर्याप्तान् मुक्त्वा अन्यत्राभावात्। अत्र एव भविष्यमाणासंख्यातराशिभ्यः स्तोकाः उच्यन्ते।

अस्मिन् संयतासंयतगुणस्थाने क्षायिकसम्यग्दृष्टिभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः। तथैव प्रतिभागोऽपिक्षायिकसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतमात्रसंख्यातरूप अस्ति।

कुत एतत् ?

संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पंचमगुणस्थान में अणुव्रत सहित क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों की अतिदुर्लभता होने के कारण क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम होते हैं। तिर्यंचों में क्षायिक सम्यक्त्व के साथ संयमासंयम नहीं पाया जाता है, क्योंकि वहाँ दर्शनमोहनीय के क्षपण का अभाव पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस विषय में कषायप्राभृत ग्रंथ की गाथा में कहा है—

गाथार्थ—दर्शनमोहनीय की क्षपणा के लिए प्रतिष्ठापना नियम से कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य ही करते हैं तथा निष्ठापना सभी जगह होती है।।

इसी गाथासूत्र से जाना जाता है।

जिन्होंने तिर्यंच आयु का बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिकसम्यक्त्व के साथ तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि भोगभूमि को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है। इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव असंख्यात ही होते हैं, क्योंकि संयमासंयम के साथ क्षायिकसम्यक्त्व पर्याप्त मनुष्यों को छोड़कर दूसरी गति में नहीं पाया जाता है और इसीलिए संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि आगे कही जाने वाली असंख्यात राशियों से कम होते हैं।

इस संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। उसी प्रकार प्रतिभाग भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों की जितनी संख्या है तत्प्रमाण मात्र संख्यातरूप है।

प्रश्न—ऐसा कैसे है ?

---

१. कसायपाहुड़ खवणाहियारे।

असंख्यातावलिकाभिः पल्योपमे खण्डिते तत्र एकखण्डमात्राणामुपशमसम्यक्त्वेन सह संयतासंयतानामुपलंभात्।

अत्र देशसंयते उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः सन्ति।

एवं अष्टमस्थले देशसंयतानां अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन सम्यक्त्वापेक्षया त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति प्रमत्ताप्रमत्तादिमहामुनीनां सम्यक्त्वापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२१।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२२।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२३।।

एवं तिसु वि अद्धासु।।२४।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२५।।

खवा संखेज्जगुणा।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रमत्ताप्रमत्तयोः उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः। अन्तर्मुहूर्तकालसंचयात्,**

उत्तर—क्योंकि असंख्यात आवली प्रमाण काल से पल्योपम के खण्डित करने पर उनमें से एक खंडमात्र उपशमसम्यक्त्व के साथ संयतासंयत जीव पाये जाते हैं।

यहाँ देशसंयत में उपशमसम्यग्दृष्टि से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं।

इस प्रकार आठवें स्थल में देशसंयतों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले सम्यक्त्व की अपेक्षा तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रमत्त-अप्रमत्तादि महामुनियों का सम्यक्त्व की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२१।।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२२।।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२३।।

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थान में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व है।।२४।।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।२५।।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकों से तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में उपशम सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।

उपशमसम्यक्त्वेन सह प्रायेण संयमं प्रतिपद्यमानानामभावाच्च। अंतर्मुहूर्तेण संचितोपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः देशोनपूर्वकोटि-संचितक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां संख्यातगुणत्वं प्रति विरोधाभावात्।

अत्र को गुणकारः? इति प्रश्ने सति संख्याताः समयाः इति उच्यन्ते।

क्षायिकात् क्षायोपशमिकस्य सम्यक्त्वस्य प्रायेण संभवात् इमे संख्यातगुणाः भवन्ति।

यथा प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं प्ररूपितं, तथा त्रिषु उपशामककालेषु प्ररूपयितव्यं। तद्यथा—एषु सर्वस्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः। क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, कारणं अत्र द्रव्यप्रमाणस्य अधिकत्वात्। एषु त्रिष्वपि उपशामकेषु वेदकसम्यग्दृष्टयो न सन्ति, तेन सह उपशमश्रेण्यारोहणाभावात्।

उपशान्तकषायेषु सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं किन्न प्ररूपितं ?

नैष दोषः, त्रिष्वपि गुणस्थानेषु सम्यक्त्वाल्पबहुत्वेऽवगते तत्रापि अवगमात्।

अपूर्वकरणादित्रिगुणस्थानेषु उपशामकाः सर्वतः स्तोकाः, स्तोकप्रवेशात् संकलितसंचयस्यापि स्तोकत्वस्य न्यायसिद्धत्वात्।

एभ्यः त्रिभ्यः उपशामकेभ्यः क्षपकाः त्रिगुणस्थानवर्तिनः संख्यातगुणाः, संख्यातगुणितायात् संचयोपलंभात्।

उपशम-क्षपकाणामेतदल्पबहुत्वं पूर्वं प्ररूपितं पुनरपि कथमत्र प्ररूप्यते ? नैतद् वक्तव्यं, पूर्वं उपशामक-क्षपकाणां प्रवेशापेक्षया अल्पबहुत्वकथनात् अत्र संचयापेक्षया अल्पबहुत्वं निरूप्यते।

क्षपणश्रेण्यां सम्यक्त्वाल्पबहुत्वं किन्न निरूपितं ?

क्योंकि उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है। उपशमसम्यक्त्व के साथ प्रायः संयम को प्राप्त होने वाले जीवों का अभाव है। अन्तर्मुहूर्त से संचित होने वाले उपशमसम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि काल से संचित होने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के संख्यातगुणित होने में कोई विरोध नहीं है।

यहाँ गुणकार क्या है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं कि संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का होना अधिकता से संभव है। ये संख्यातगुणे होते हैं।

जिस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों के सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदि के तीन उपशामक गुणस्थानों में भी प्ररूपणा करना चाहिए। वह इस प्रकार है—तीनों उपशामक गुणस्थानों में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का यहाँ द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है। उपशमश्रेणी में वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि वेदकसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी के आरोहण का अभाव है।

शंका—उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व क्यों नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तीनों उपशामक गुणस्थानों में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकषाय गुणस्थान में भी उसका ज्ञान हो जाता है।

अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानों में उपशामक मुनियों की संख्या सबसे कम है, क्योंकि अल्प जीवों का प्रवेश होने से संचित होने वाली राशि के स्तोकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है।

इन तीनों गुणस्थानवर्ती उपशामकों की अपेक्षा तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनियों की संख्या संख्यातगुणा अधिक है, क्योंकि संख्यातगुणित आय से क्षपकों का संचय पाया जाता है।

शंका—उपशामक और क्षपकों का यह अल्पबहुत्व पहले कह आये हैं, पुनरपि यहाँ क्यों कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पहले उपशामक और क्षपक जीवों के प्रवेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है। यहाँ संचय की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है।

शंका—क्षपक श्रेणी में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा है ?

नैतद् वक्तव्यं, तेषां क्षायिकसम्यक्त्वं मुक्त्वा अन्यसम्यक्त्वाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—एतदल्पबहुत्वं गुणस्थानेषु ज्ञात्वा क्षायिकसम्यक्त्वहेतोः प्रयत्नः कर्तव्यः पुनश्च क्षपकश्रेण्यारोहणं कदा करोम्यहं इति भावनापि भावयितव्या भवद्भिः।

एवं नवमस्थले महामुनीनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अद्यतनात् चतुर्दिनपूर्वं कार्तिककृष्णामावस्यायां सायंकाले केवलज्ञानमुत्पाद्य अंतिम तीर्थकरभगवन्महावीरस्य भक्तिफलं येन प्राप्तं तस्मै श्रीइन्द्रभूतिगौतमगणधरदेवाय नमोऽस्तु मे नित्यम्।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खंडागमस्य प्रथमखण्डे पंचमेग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमनाम्नि अष्टमप्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमशताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्तिश्रीशांतिसागरः तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गुणस्थानेषु अल्पबहुत्वानुगमे पंचमो महाधिकारः समाप्तः।

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि क्षपक श्रेणी वालों के क्षायिक सम्यक्त्व को छोड़कर अन्य सम्यक्त्व का अभाव पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि यह अल्पबहुत्व गुणस्थानों में जानकर क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, पुनश्च मैं क्षपक श्रेणी में आरोहण कब कर सकूँ, ऐसी भावना भी आप सभी को भाते रहना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में महामुनियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

आज से (कार्तिक शु. पंचमी से) चार दिन पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या के सायंकाल में जिन्होंने केवलज्ञान उत्पन्न करके भगवान महावीर की भक्ति का फल प्राप्त किया था, उन श्री इन्द्रभूति गौतम गणधरदेव को मेरा नित्य ही नमस्कार है।

भावार्थ—सन् १९९६ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर वर्षायोग के पश्चात् कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण के अन्तर्गत गुणस्थानों में अल्पबहुत्वानुगम विषय को समाप्त करते हुए गौतमगणधर के केवलज्ञान को स्मरण करके उन्हें नमन किया है। यह उनकी जिनेन्द्र भक्ति का परिचायक है। ऐसा अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग एवं जिनभक्ति का भाव मुझे भी प्राप्त हो, यही भगवान शांतिनाथ से प्रार्थना है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत और भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचमग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम नाम के अष्टम प्रकरण में श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना निर्माण की सम्प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गुणस्थानों में अल्पबहुत्वानुगम का कथन करने वाला पंचम महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ षष्ठो महाधिकारः

अद्य[१] कार्तिकशुक्लापंचम्यां मंगलविहारदिवसे अस्मात् सिद्धक्षेत्रात् मांगीतुंगीनामधेयात् यैः महापुरुषैः सिद्धिपदं संप्राप्तं, तान् सिद्धान् अत्र विराजमानानि सर्वजिनबिंबानि च पुनः पुनः प्रणम्य भाविकाले यस्य अष्टोत्तरशतफुटउत्तुंगविशालकायप्रतिमायाः निमार्णं संकल्पितं, तस्मै आदिब्रह्मणे श्रीऋषभदेवाय अनन्तशः नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

अथ षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे षष्ठो महाधिकारः प्रारभ्यते। अस्मिन् चर्तुदशाधिकाराः सन्ति। तत्र तावत् गतिमार्गणायां सप्तसप्ततिसूत्राणि वक्ष्यन्ते। द्वितीये इन्द्रियमार्गणाधिकारे एकं सूत्रं। तृतीये कायमार्गणाधिकारे एकं सूत्रं। चतुर्थे योगमार्गणायां एकोनचत्वारिंशत्सूत्राणि। पंचमे वेदेऽधिकारे त्रिपञ्चाशत् सूत्राणि। षष्ठेऽधिकारे कषायमार्गणायां एकोनविंशतिसूत्राणि। सप्तमज्ञानमार्गणायां अष्टाविंशतिसूत्राणि। अष्टमसंयममार्गणायां द्विचत्वारिंशत्सूत्राणि। नवमे दर्शनाधिकारे चत्वारि सूत्राणि। दशमे लेश्यामार्गणाधिकारे अष्टत्रिंशत्सूत्राणि। एकादशेऽधिकारे भव्यमार्गणानाम्नि द्वौ सूत्रे। द्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणानाम्नि पंचविंशतिसूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञिमार्गणाधिकारे त्रीणि सूत्राणि। चतुर्दशाधिकारे आहारमार्गणायां पंचविंशतिसूत्राणि कथयिष्यन्ते, इति षष्ठे महाधिकारे चतुर्दशाधिकारैः समुदायपातनिका सूचिता भवति।

तत्र तावत् गतिमार्गणायां नरकगतौ स्थलद्वयेन चतुर्दशसूत्राणि कथ्यन्ते। तस्मिन् प्रथमस्थले सामान्येन सप्तस्वपि पृथिवीषु गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''आदेसेण'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तदनु

अब छठा महाधिकार प्रारंभ होता है

आज कार्तिक शुक्ला पंचमी (वीर नि. सं. २५२३) को मंगल विहार के दिन मांगीतुंगी नाम के सिद्धक्षेत्र से जिन महापुरुषों ने सिद्धि पद को प्राप्त किया है, उन सभी सिद्धों को तथा यहाँ विराजमान समस्त जिनबिम्बों को पुनः-पुनः नमस्कार करके भविष्य में यहाँ मांगीतुंगी पर्वत पर जिस एक सौ आठ फुट उत्तुंग विशालकाय प्रतिमा निर्माण कराने का मैंने संकल्प किया है, उन आदिब्रह्मा श्री ऋषभदेव तीर्थंकर को मेरा अनंतबार नमस्कार होवे , नमस्कार होव, नमस्कार होवे।

अब षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में पंचमग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में छठा महाधिकार प्रारंभ होता है। इसमें चौदह अधिकार हैं, उनमें से प्रथम गतिमार्गणा अधिकार में सतत्तर सूत्र कहेंगे। द्वितीय इन्द्रियमार्गणा अधिकार में एक सूत्र है। तृतीय कायमार्गणा अधिकार में एक सूत्र है। चतुर्थ योगमार्गणा में उनतालीस सूत्र हैं। पंचम वेद मार्गणा में त्रेपन सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में उन्नीस सूत्र हैं। सातवीं ज्ञानमार्गणा में अट्ठाईस सूत्र हैं। आठवीं संयममार्गणा में बयालीस सूत्र हैं। नवमीं दर्शनमार्गणा में चार सूत्र हैं। दशवें लेश्या मार्गणा अधिकार में अड़तीस सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा नामक अधिकार में पच्चीस सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञी मार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं। चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में पच्चीस सूत्र कहेंगे। इस प्रकार ग्रंथ के छठे महाधिकार में चौदह अधिकारों के सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब उनमें सर्वप्रथम गतिमार्गणा के अन्तर्गत नरकगति में दो स्थलों में चौदह सूत्र कहे जा रहे हैं। उसमें से प्रथम स्थल में सामान्य से सातों नरक पृथिवियों के नारकियों के गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व को

१. वीराब्दे पञ्चविंशतिशत-त्रयोविंशतितमे।

द्वितीयस्थले पृथक्पृथग्नरकापेक्षया गुणस्थानमाश्रित्य अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन नारकाणां ''एवं पढमाए'' इत्यादिसूत्रसप्तकं इति पातनिका अस्ति।

संप्रति नरकगतौ चतुर्गुणस्थानवर्तिनां नारकाणां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी।।२७।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२८।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे ओघप्रतिषेधफलं। शेषमार्गणादिप्रतिषेधार्थं गत्यानुवादवचनं। शेषगतिप्रतिषेधनार्थः नरकगतिनिर्देशः। शेषगुणस्थानप्रतिषेधार्थः सासादननिर्देशः। उपरि उच्यमानगुणस्थान-द्रव्यप्रमाणेभ्यः सासादनाः द्रव्यप्रमाणेन स्तोकाः अल्पाः इति उक्तं भवति।**

बतलाने वाले ''आदेसेण'' इत्यादि सात सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अलग-अलग नरक की अपेक्षा गुणस्थान का आश्रय लेकर अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''एवं पढमाए'' इत्यादि सात सूत्र हैं। यह गतिमार्गणा के सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

भावार्थ—षट्खण्डागम के इस प्रकरण को लिखते हुए पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने जिस मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र का नाम स्मरण किया है। वहाँ सन् १९९६ में चातुर्मास करके उन्होंने षट्खण्डागम के ३-४ ग्रंथों की टीका लिखी है पुनश्च इस ग्रंथ के लेखन के मध्य कार्तिक शुक्ला पंचमी, १५ नवम्बर १९९६ को वहाँ से दिल्ली की ओर मंगल विहार करते समय उपर्युक्त भावना व्यक्त की है, इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने प्रवास एवं विहार के सभी क्षणों में संस्कृत टीका लेखन जैसे दुरूह कार्य को सम्पन्न करते हुए अपने नाम को पूर्ण सार्थक किया है।

अब नरकगति में चारों गुणस्थानवर्ती नारकियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु चार सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

आदेश की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकियों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२७।।

नारकियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२८।।

नारकियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९॥

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में 'आदेश' यह वचन ओघ का प्रतिषेध करने के लिए है। शेष मार्गणा आदि के प्रतिषेध करने के लिए 'गतिमार्गणा के अनुवाद से' यह वचन कहा है। शेष गतियों के प्रतिषेध के लिए 'नरकगति' इस पद का निर्देश किया है। शेष गुणस्थानों के प्रतिषेधार्थ 'सासादन' इस पद का निर्देश किया है। ऊपर कहे जाने वाले शेष गुणस्थानों के द्रव्यप्रमाणों की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण से स्तोक अर्थात् अल्प होते हैं, यह अर्थ कहा गया है।

सासादनोपक्रमणकालात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि-उपक्रमणकालस्य संख्यातगुणस्य उपलंभात् सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सासादनापेक्षया संख्यातगुणाः सन्ति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-उपक्रमणकालात् असंयतसम्यग्दृष्टि-उपक्रमणकालस्य असंख्यातगुणस्य संभवोपलंभात्, सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानजीवेभ्यः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानजीवानां असंख्यातगुणत्वात् वा।

अत्र को गुणकारः?

आवलिकायाः असंख्यातभागः। अधस्तनराशिना उपरिमराशिमपवर्त्य गुणकारः साधयितव्यः।

मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। अत्र को गुणकारः? असंख्याताः जगच्छ्रेणयः गुणकारः, सोऽपि जगत्प्रतरस्य असंख्यातभाग-प्रमाणं। तासां जगत्श्रेणीनां विष्कंभसूची अंगुलस्य असंख्यातभागप्रमाणा, असंख्यातानि अंगुलवर्गमूलानि द्वितीयवर्गमूलस्य असंख्यातभागमात्राणि। तद्यथा — असंयतसम्यग्दृष्टिप्रमाणै सूच्यंगुल द्वितीयवर्गमूलं गुणयित्वा तेन सूच्यंगुले भागे हृते लब्धमंगुलस्य असंख्यातभागः।

नारकाणामसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।३१।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३२।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३३।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों के उपक्रमण काल से सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का उपक्रमणकाल संख्यातगुणा पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सासादन की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के उपक्रमणकाल से असंयतसम्यग्दृष्टियों का उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा पाया जाता है। अथवा, सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीवों से सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं। यहाँ गुणकार क्या है ?

आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। अधस्तन राशि से उपरिमराशि को अपवर्तित करके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार क्या है ? असंख्यात जगश्रेणियाँ गुणकार हैं, जो जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। जगत्श्रेणियों की विष्कंभसूची अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। जिसका प्रमाण अंगुल के द्वितीय वर्गमूल के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है- असंयतसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण से सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल को गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुल में भाग देने पर अंगुल का असंख्यातवाँ भाग लब्ध आता है।

अब नारकियों के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।३१।।

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।३२।।

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अंतर्मुहूर्तमात्रोपशमसम्यक्त्वकाले उपक्रमणकालेन आवलिकायाः असंख्यातभागेन संचितत्वात् उच्यमानसर्वसम्यग्दृष्टिराशिभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टयः स्तोकाः भवन्ति।**

स्वभावतश्चैव उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः असंख्यातगुणस्वरूपेण क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां अनादिनिधनं अवस्थानात् संख्यातपल्योपमाभ्यन्तरे पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रोपक्रमणकालेन संचितत्वादसंख्यातगुणाः इति कथितं भवति। अत्रतनक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां भागहारः असंख्यातावलिकाः भवन्ति। किंच—ओघासंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः असंख्यातगुणहीनौघक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां असंख्यातभागत्वात्। न वर्षपृथक्त्वान्तर-प्रतिपादकसूत्रेण सह विरोधः, सौधर्मैशानकल्पं मुक्त्वा अन्यत्र स्थितक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वर्षपृथक्त्वस्य वैपुल्यवाचिनो ग्रहणात्।

अत्र पृथक्त्वस्यार्थो वैपुल्यवाची इति कुतो ज्ञायते ?

'ओघोपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः ओघक्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः[१]'' इति अल्पबहुत्वसूत्रादेव ज्ञायते। क्षायिकसम्यक्त्वात् क्षायोपशमिकस्य वेदकसम्यक्त्वस्य सुलभत्वोपलंभात् तेभ्यस्तेऽसंख्यातगुणाः इति।

अत्र को गुणकारः ?

आवलिकायाः असंख्यातभागः।

कथमेतद् ज्ञायते ?

''आइरियपरंपरागदुवदेसादो[२]।''

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्व के काल में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमणकाल द्वारा संचित होने के कारण आगे कहे जाने वाले सर्व प्रकार के सम्यग्दृष्टियों की राशियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं, क्योंकि स्वभाव से ही उपशमसम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का असंख्यातगुणितरूप से अनादिनिधन अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संख्यात पल्योपम के भीतर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होने से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियों से असंख्यातगुणित हैं। यहाँ नारकियों में जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं, उनके प्रमाण के लाने के लिए भागहार का प्रमाण असंख्यात आवली प्रमाणकाल है, क्योंकि ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियों से असंख्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातवें भाग ही होते हैं। इस कथन का वर्षपृथक्त्व अन्तर बताने वाले सूत्र के साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि सौधर्म और ऐशानकल्प को छोड़कर अन्यत्र स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के अन्तर में कहे गये वर्ष पृथक्त्व के 'पृथक्त्व' शब्द को वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है।

शंका— यहाँ पर पृथक्त्व का अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— 'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियों से ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। इस अल्पबहुत्व के प्रतिपादक सूत्र से जाना जाता है। क्षायिकसम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ होने से उनसे वे असंख्यातगुणा होते हैं।

यहाँ गुणकार क्या है ?

आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— आचार्य-परम्परा से आये हुए उपदेश के द्वारा जाना जाता है।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. ५, पृ. २६४। २. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. ५, पृ. २६४।

एवं प्रथमस्थले सामान्यनारकाणां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि। संप्रति प्रथमादिपृथिवीनां नारकाणां गुणस्थानमाश्रित्याल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।।३४।।

विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।३५।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३६।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३७।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा सामान्यनारकाणामल्पबहुत्वं प्ररूपितं, तथा प्रथमपृथिवीगतनारकाणामल्पबहुत्वं प्ररूपयितव्यं, ओघनारकाल्पबहुत्वालापात् प्रथमपृथिवीगतनारकाणामल्पबहुत्वालापस्य भेदाभावात्। पर्यायार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने अस्ति विशेषः, असौ ज्ञात्वा वक्तव्यः।**

द्वितीयादिषण्णां पृथिवीनां सासादनसम्यग्दृष्टयः बुद्ध्या पृथक्-पृथक् स्थापयित्वा सर्वस्तोकाः सन्ति इति उक्तं, षण्णामल्पबहुत्वानामेकत्वविरोधात्।

इस प्रकार प्रथमस्थल में सामान्य नारकियों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रथम आदि पृथिवी के नारकियों का गुणस्थान के आश्रित अल्पबहुत्व बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार प्रथम पृथिवी में नारकियों का अल्पबहुत्व जाना जाता है।।३४।।

नारकियों में दूसरी से लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।३५।।

नारकियों में दूसरी से लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।३६।।

नारकियों में दूसरी से सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३७।।

नारकियों में दूसरी से सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार सामान्य नारकियों का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथिवी के नारकियों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि सामान्य नारकियों के अल्पबहुत्व के कथन से पहली पृथिवी के नारकियों के अल्पबहुत्व के कथन में कोई भेद नहीं है। किन्तु पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन करने पर कुछ विशेषता है, सो जानकर कहना चाहिए।

दूसरी से लेकर छहों पृथिवियों के सासादनसम्यग्दृष्टियों को बुद्धि के द्वारा पृथक्-पृथक् स्थापित करके आगे-आगे सबसे कम हैं ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि छहों अल्पबहुत्वों को एक मानने में विरोध आता है।

द्वितीयपृथिव्यादिसप्तमपृथिवीपर्यंतसासादनानामुपरि पृथक्-पृथक् षट्पृथिवीसम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, सासादनसम्यग्दृष्टि-उपक्रमणकालात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि-उपक्रमणकालस्य युक्त्या संख्यातगुणत्वोपलंभात्। अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः।

एतेभ्यः असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः। षट्पृथिवीगतसम्यग्मिथ्यादृष्टि-उपक्रमणकालेभ्यः षट्पृथिवीगतासंयतसम्यग्दृष्टि-उपक्रमणकालानामसंख्यातगुणत्वदर्शनात्, एकसमयेन सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानजीवेभ्यः एकसमयेन वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानजीवानामसंख्यातगुणत्वाद्वा। अत्र आवलिकायाः असंख्यातभागो गुणकारः ज्ञातव्यः।

षण्णां पृथिवीनामसंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः जगत्श्रेण्याः द्वादश-दशम-अष्टम-षष्ठ-तृतीय-द्वितीयवर्गमूल-भाजितजगत्श्रेणीमात्रषट्पृथिवीमिथ्यादृष्टयः असंख्यातगुणा भवन्ति। अत्र श्रेण्याः असंख्यातभागो गुणकारः, तत्तु असंख्यातानि जगत्श्रेणिप्रथमवर्गमूलानि।

अत्र कः प्रतिभागः?

असंख्यातानि जगच्छ्रेण्याः द्वादश-दशम-अष्टम-षष्ठ-तृतीय-द्वितीयवर्गमूलानि। किंच—असंयत-सम्यग्दृष्टि-राशिना गुणितत्वात्।

संप्रति षट्पृथिवीषु चतुर्थगुणस्थाने सम्यक्त्वाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।३९।।

दूसरी पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियों के ऊपर पृथक्-पृथक् छह-छह पृथिवियों के सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों के उपक्रमणकाल से सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का उपक्रमणकाल युक्ति से संख्यातगुणा पाया जाता है। यहाँ संख्यात समय गुणकार है।

इनसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं। छह पृथिवियों संबंधी सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के उपक्रमणकालों से छह पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियों का उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है। अथवा, एक समय के द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीवों की अपेक्षा एक समय के द्वारा वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार जानना चाहिए।

छहों पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टियों से जगत्श्रेणी के बारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूल से भाजित जगत्श्रेणी प्रमाण छह पृथिवियों के मिथ्यादृष्टि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं। यहाँ जगत्श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, जो जगत्श्रेणी के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।

प्रतिभाग क्या है ?

उत्तर—जगत्श्रेणी के बारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूल प्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि ये सब असंयतसम्यग्दृष्टि राशि से गुणित हैं।

अब छह पृथिवियों में चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

नारकियों में द्वितीयादि छह पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।३९।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वेभ्यः उच्यमानस्थानेभ्यः स्तोकाः इति सर्वस्तोकाः, आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रोपक्रमणकालेन संचितत्वात्।**

षट्पृथिवीषु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः न प्ररूपिताः, तत्र तेषामुत्पादाभावात्, मनुष्यगतिं मुक्त्वान्यत्र दर्शनमोहनीयक्षपणाभावाच्च।

एवं द्वितीयस्थले प्रथमादिनरकेषु अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

इति नरकगत्यन्तराधिकारः।

नारकियों में द्वितीयादि छह पृथिवियों के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आगे कहे जाने वाले स्थानों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं, इसलिए वे सर्वस्तोक—सबसे कम कहलाते हैं, क्योंकि आवली के असंख्यातवें भाग मात्र उपक्रमणकाल के द्वारा उनका संचय होता है।

छहों पृथिवियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि नीचे की छह पृथिवियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति नहीं होती है और मनुष्यगति को छोड़कर अन्य गतियों में दर्शनमोहनीय की क्षपणा नहीं होती है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथम आदि नरकों में नारकियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार नरकगति अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

पुण्य की महिमा

श्रेयः श्रेय-निबन्धनोऽसुखहरः श्रेयं श्रयन्त्युत्तमाः।
श्रेयेनात्र च लभ्यतेऽखिल सुखं श्रेयाय शुद्धा क्रियाः।।
श्रेयाच्छ्रेयकरोऽपरो न च महान् श्रेयस्य मूलं सुदृक्।
श्रेये यत्नमनारतं बुधजनाः कुर्वन्तु दृक् चिद्व्रतैः।।

श्रेय—पुण्य, श्रेय—कल्याण को प्राप्त कराने वाला और दुःखों को हरने वाला है इसलिए सज्जन पुरुष पुण्य का आश्रय लेते हैं। पुण्य से ही सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति की है अतः पुण्य अर्जन के लिए शुद्ध क्रियाएं करना चाहिए। पुण्य से अधिक कल्याणकारी और कोई महान् नहीं है। पुण्य की जड़ सम्यग्दर्शन है। इसलिए बुद्धिमानों को रत्नत्रय धर्म के द्वारा पुण्य के अर्जन में अनवरत प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ पर इस लोक में आचार्यदेव ने 'श्रेय' शब्द में षट्कारक घटित किये। इस श्रेय का अर्थ पुण्य भी होता है और कल्याण भी होता है। अतः श्रेय अर्थात् पुण्य श्रेय अर्थात् कल्याण की, सुख की प्राप्ति होती है, ऐसा समझना।

—श्री सकलकीर्ति आचार्य-सिद्धांतसार दीपक

अथ तिर्यग्गत्यन्तराधिकारः

अत्र स्थलत्रयेण द्वादशसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे तिर्यग्गतिनाम अन्तराधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले चतुर्विधतिरश्चां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनु द्वितीयस्थले असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''असंजद'' इत्यादिना पंच सूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले पंचेन्द्रियतिरश्चीनां चतुर्थपंचमगुणस्थानयोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''णवरि विसेसो'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना चतुर्विधतिरश्चां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु सव्वत्थोवा संजदासंजदा।।४१।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४२।।

सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा।।४३।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४४।।

अथ तिर्यंचगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में तिर्यंचगति नामका अंतराधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में चार प्रकार के तिर्यंचों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''असंजद'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंचों में चतुर्थ और पंचम गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले ''णवरि विसेसो'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चार प्रकार के तिर्यंचों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच-योनिमती जीवों में संयतासंयत सबसे कम हैं।।४१।।

उक्त चारों प्रकार के तिर्यंचों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४२।।

उक्त चारों प्रकार के तिर्यंचों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।४३।।

उक्त चारों प्रकार के तिर्यंचों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४४।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रकृतचतुर्विधतिर्यक्षु ये देशव्रतिनः ते स्वात्मनां एव शेषगुणस्थानवर्तिजीवेभ्यः स्तोकाः सन्ति।**

किमर्थं देशव्रतिनः स्तोकाः?

संयमासंयमलब्धेः सुदुर्लभत्वात्।

चतुर्विधतिरश्चां ये सासादनसम्यग्दृष्टयः ते स्वक-स्वकसंयतासंयतेभ्यः असंख्यातगुणाः, संयमासंयमोपलंभात् सासादनगुणस्थानस्य सुलभोपलब्धेः।

अत्र को गुणकारः ?

आवलिकायाः असंख्यातभागः।

तदपि कथं ज्ञायते ?

अंतर्मुहूर्तसूत्रात्, आचार्यपरंपरागतोपदेशात् वा।

चतुर्विधतिर्यक्सासादनसम्यग्दृष्टिभ्यः स्वक-स्वकसम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, सासादनोपक्रमणकालात् सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां उपक्रमणकालस्य तंत्रयुक्तिभ्यां संख्यातगुणत्वोपलंभात्। अत्र गुणकारः संख्यातसमयाः।

चतुर्विधतिर्यक्सम्यग्मिथ्यादृष्टिभ्यः तेषां चैव असंयतसम्यग्दृष्ट्यः असंख्यातगुणाः, सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानजीवेभ्यः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानजीवानामसंख्यातगुणत्वात्। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः।

उक्त चारों प्रकार के तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं और मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रकृत चारों प्रकार के तिर्यंचों में जो तिर्यंच देशव्रती हैं, वे अपने ही शेष गुणस्थानवर्ती जीवों से थोड़े हैं।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयम की प्राप्ति अतिदुर्लभ है।

चारों प्रकार के तिर्यंचों में जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं, वे अपने-अपने संयतासंयतों से असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि संयमासंयम गुणस्थान की प्राप्ति की अपेक्षा सासादनगुणस्थान की प्राप्ति सुलभ है।

प्रश्न—यहाँ गुणकार क्या है ?

उत्तर—आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

प्रश्न—यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—अन्तर्मुहूर्त अवहारकाल के प्रतिपादक सूत्र से और आचार्य-परम्परा से आये हुए उपदेश से यह जाना जाता है।

चारों प्रकार के सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों में से अपने-अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच संख्यातगुणित हैं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों के उपक्रमणकाल (उसमें होने की अपेक्षा) से सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का उपक्रमणकाल आगम और युक्ति से संख्यातगुणा पाया जाता है। यहाँ संख्यात समय गुणकार है।

चारों प्रकार के सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों से उनके ही असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीवों से सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

एतत् कुतो ज्ञायते ?

''पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण'' इति सूत्रात्, आचार्य परंपरागतोपदेशाद्वा ज्ञायते।

चतुर्णां तिरश्चां असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यस्तेषां चैव मिथ्यादृष्टयोऽनंतगुणाः असंख्यातगुणाश्च। अनयोः स्पष्टीकरणं क्रियते—तिर्यग्मिथ्यादृष्टयः कियन्तोऽपि अनंताः सामान्यतिर्यगपेक्षया एकेन्द्रियापेक्षया च, शेषत्रिविधतिर्यग्मिथ्यादृष्टयः असंख्याताः इति ज्ञातव्याः।

अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धेभ्योऽनंतगुणः सिद्धराशिभ्योऽपि अनंतगुणः, यश्च सर्वजीवराशेः अनंतप्रथमवर्गमूलप्रमाणमिति। प्रतिभागश्च तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टिराशिः। शेषतिर्यक्त्रिकमिथ्यादृष्टीनां गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः, यश्च जगत्श्रेणि-असंख्यातप्रथमवर्गमूलप्रमितासंख्यातजगत्श्रेणिप्रमाणमस्ति। प्रतिभागश्च घनांगुलस्यासंख्यातभागः। अथवा स्वक-स्वकद्रव्याणामसंख्यातभागः गुणकारः, प्रतिभागश्च स्वक-स्वकासंयतसम्यग्दृष्टिजीवानां प्रमाणमिति।

एवं प्रथमस्थले गुणस्थानापेक्षया तिरश्चां अल्पबहुत्वकथनत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

संप्रति असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतगुणस्थानयोः सम्यक्त्वापेक्षयाल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।४६।।
खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४७।।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इन जीव राशियों के प्रमाण द्वारा अन्तर्मुहूर्तकाल से पल्योपम अपहृत होता है। इस द्रव्यानुयोगद्वार के सूत्र से और आचार्य-परम्परा से आए हुए उपदेश से यह जाना जाता है।

चारों प्रकार के असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचों से उनके ही मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अनन्तगुणित हैं और असंयतगुणित भी हैं।

उसका स्पष्टीकरण करते हैं—मिथ्यादृष्टि सामान्य तिर्यंच कई प्रकार के होते हुए भी सामान्य तिर्यंच की अपेक्षा और एकेन्द्रिय की अपेक्षा अनन्त हैं, शेष तीन प्रकार के मिथ्यादृष्टि तिर्यंच असंख्यात हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ पर अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणा और सिद्धों से भी अनन्तगुणा तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का गुणकार है, जो संपूर्ण जीवराशि के अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है और प्रतिभाग असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि प्रमाण है। शेष तीन प्रकार के तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है, जो जगत्श्रेणी के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमित असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण है। घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग प्रतिभाग है। अथवा अपने-अपने द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। अपने-अपने असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण प्रतिभाग है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में गुणस्थान की अपेक्षा तिर्यंचों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानों में सम्यक्त्व की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।४६।।

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४७।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४८।।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी।।४९।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चतुर्विधेषु तिर्यक्षु भणिष्यमाणसर्वसम्यग्दृष्टिद्रव्यात् उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः, आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रोपक्रमणकालाभ्यन्तरे संचितत्वात्।**

क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यः असंख्यातगुणाः, असंख्यातवर्षायुष्केषु पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रकालेन संचितत्वात्, अनादिनिधनस्वरूपेण उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां आवलिकायाः असंख्यातभाग-गुणत्वेन अवस्थानात् वा।

आवलिकायाः असंख्यातभागो गुणकारः कथं ज्ञायते ?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

दर्शनमोहनीयक्षयेणोत्पन्नक्षायिकसम्यक्त्वानां सम्यक्त्वोत्पत्तेः पूर्वमेव बद्धतिर्यगायुष्काणां प्रचुरं संभवाभावात्। न च लोके सारद्रव्याणां दुर्लभत्वमप्रसिद्धं, अश्वहस्तिपाषाणादिषु साराणां लोके दुर्लभत्वोपलंभात्[1]।

देशव्रतानुविद्धोपशमसम्यक्त्वस्य दुर्लभत्वात् पंचमगुणस्थाने उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः सन्ति, एभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। एतस्मात् गुणकारात् ज्ञायते समयं प्रति तदुपचयात् असंख्यातगुणत्वेनोपचिताः इति असंख्यातगुणत्वं।

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४८।।

तिर्यंयों में संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।४९।।

तिर्यंचों में संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चारों प्रकार के तिर्यंचों में आगे कहे जाने वाले सर्व सम्यग्दृष्टियों के द्रव्यप्रमाण से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि आवली के असंख्यातवें भाग मात्र उपक्रमणकाल के भीतर उनका संचय होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि असंख्यातवर्ष की आयु वाले जीवों में पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल के द्वारा संचित होने से अथवा अनादिनिधन स्वरूप से उपशमसम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का आवली के असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाण से अवस्थान पाया जाता है।

शंका—यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परा से आए हुए उपदेश से जाना जाता है। क्योंकि जिन्होंने सम्यक्त्व की उत्पत्ति से पूर्व ही तिर्यंच आयु का बंध कर लिया है, ऐसे दर्शनमोहनीय के क्षय से उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रचुरता से होना संभव नहीं है और लोक में सार पदार्थों की दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि अश्व, हस्ती और पाषाणादिकों में सार पदार्थों की सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है।

पंचमगुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यंच सबसे कम होते हैं, क्योंकि देशव्रत सहित उपशम सम्यक्त्व का होना दुर्लभ है। उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। इस गुणकार से यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होने से वे असंख्यातगुणित संचित हो जाते हैं, इसलिए

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका)पु. ५, पृ. २७१।

अत्र क्षायिकदृष्टीनामल्पबहुत्वं किन्न प्ररूपितं ?

नैतत् वक्तव्यं, तिर्यक्षु असंख्यातवर्षायुष्केषु एव क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां उपपादोपलंभात्, तत्र संयतासंयतगुणस्थानमेव नास्तीति ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु सम्यक्त्वयोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।५१।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।५२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**द्वयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वं न कथितं, सर्वस्त्रीषु सम्यग्दृष्टीनामुत्पादाभावात् मनुष्यगतिव्यतिरिक्तान्यगतिषु दर्शनमोहनीयक्षपणाभावाच्च।**

तात्पर्यमेतत्—संप्रति कर्मभूमिजमनुष्याणामपि केवलिश्रुतकेवलिनोरभावे क्षायिकसम्यग्दर्शनं नोत्पद्यते। अतएव क्षायिकसम्यक्त्वं कदा मे भवेदिति भावना सदैव भावयितव्या भवद्भिः इति।

एवं तृतीयस्थले तिरश्चीनां सम्यक्त्व-देशसंयतयोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

एवं तिर्यग्गति-अन्तराधिकारः समाप्तः।

उनके प्रमाण में असंख्यातगुणितपना बन जाता है।

शंका—यहाँ संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंचों का अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद—जन्म पाया जाता है। वहाँ भोगभूमि में संयतासंयत गुणस्थान ही नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय स्त्रीवेदी तिर्यंचों में दोनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।५१।।

पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व नहीं कहा है, क्योंकि सर्वप्रकार की स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि जीवों का उत्पाद नहीं होता है तथा मनुष्यगति को छोड़कर अन्य गतियों में दर्शनमोहनीय कर्म की क्षपणा का भी अभाव है।

तात्पर्य यह है कि आज कर्मभूमियों में उत्पन्न मनुष्यों के भी केवली-श्रुतकेवली के अभाव में क्षायिकसम्यग्दर्शन नहीं उत्पन्न होता है। अतएव मुझे क्षायिकसम्यक्त्व कब प्राप्त हो, ऐसी भावना हम सभी को अवश्य भाते रहना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में स्त्रीवेदी तिर्यंचों में सम्यक्त्व और देशसंयत जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार तिर्यंचगति अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

अथ मनुष्यगत्यन्तराधिकारः

अथ चतुर्भिःस्थलैः अष्टाविंशतिसूत्रैः मनुष्यगतिनाम अन्तराधिकारः अल्पबहुत्वानुगमे प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्येषु उपशामक-क्षपक-सयोग्ययोगिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''मणुसगदीए'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनु द्वितीयस्थले एषामेव अप्रमत्तादि-मिथ्यादृष्टिपर्यंतानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''अप्पमत्त'' इत्यादिना सप्त सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतगुणस्थानयोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''असंजद'' इत्यादिना नव सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले स्त्रीभाववेदिनां मनुष्याणां विशेषप्रतिपादनाय ''णवरि विसेसो'' इत्यादिना षट्सूत्राणि कथ्यन्ते इति समुदायपातनिका।

संप्रति त्रिविधमनुष्याणां उपशामक-क्षपक-सयोगी-अयोगिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।५३।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।५४।।

खवा संखेज्जगुणा।।५५।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।५६।।

अथ मनुष्यगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में अट्ठाईस सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में मनुष्यगति नामका अन्तराधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों में उपशामक, क्षपक, सयोगी और अयोगीकेवली भगवन्तों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''मणुसगदीए'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में उन्हीं अप्रमत्त से लेकर नीचे मिथ्यादृष्टि जीवों तक का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''अप्पमत्त'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने हेतु ''असंजद'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में भावस्त्रीवेदी मनुष्यों का विशेष कथन करने वाले ''णवरि विसेसो'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों में उपशामक-क्षपक-सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य होकर अल्प हैं।।५३।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव प्रवेश से पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।५४।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित है।।५५।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।५६।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।५७।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिष्वपि मनुष्येषु त्रयोऽपि उपशामकाः प्रवेशेन अन्योऽन्यमपेक्ष्य तुल्याः सदृशाः, चतुःपंचाशत्मात्रत्वात्। ते चैव स्तोकाः उपरिमगुणस्थानजीवापेक्षया। उपशान्तकषायसाधवोऽपि प्रवेशेन पूर्वोक्तप्रमाणाः एव। अधस्तनगुणस्थाने प्रतिपन्नजीवानां चैव उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थपर्यायेण परिणामोपलंभात्। क्षपकाः अष्टोत्तरशतमात्रत्वात्, क्षीणकषायसाधवोऽपि तावन्तश्चैव।**

सयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्याः तावंतश्चैव। क्षीणकषायपर्यायेण परिणतानां च उत्तरगुणस्थानोपक्रमोपलंभात्।

सामान्यमनुष्य-पर्याप्तमनुष्ययोः ओघसयोगिराशिं स्थापयित्वा अधस्तनराशिना अपवर्त्य गुणकारः उत्पादयितव्यः। मनुष्यिनीषु पुनः तत्प्रायोग्यसंख्यातसयोगिजीवान् स्थापयित्वा अष्टोत्तरशतानि मुक्त्वा तत्प्रायोग्यसंख्यातक्षीणकषायेभ्यः अपवर्त्य गुणकारः उत्पादयितव्यः।

एवं प्रथमस्थले उपशामकादीनां अयोग्यन्तानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राणि षट् गतानि।

संप्रति अप्रमत्तादीनां अधस्तनगुणवर्तिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

तीनों प्रकार के मनुष्यों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों भी प्रवेश की अपेक्षा से तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही है।।५७।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों ही प्रकार के मनुष्यों में अपूर्वकरण आदि तीनों प्रकार के उपशामक जीव प्रवेश से परस्पर की अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश है, क्योंकि एक समय में अधिक से अधिक चौवन जीवों का प्रवेश पाया जाता है तथा ये ही जीव उपरिम गुणस्थानों के जीवों की अपेक्षा अल्प हैं। उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती साधु भी प्रवेश की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण है, क्योंकि अधस्तन गुणस्थानों को प्राप्त हुए जीवों का ही उपशान्त कषायवीतरागछद्मस्थरूप पर्याय से परिणमन पाया जाता है। क्षपक साधु एक सौ आठ मात्र ही हैं, क्योंकि क्षपकसंबंधी एक गुणस्थान में एक साथ प्रवेश करने वाले जीवों का प्रमाण उतना ही-एक सौ आठ है और क्षीणकषाय साधु भी उतने ही हैं।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव प्रवेश की अपेक्षा उतने ही हैं। क्योंकि क्षीणकषायरूप पर्याय से परिणत जीवों का ही आगे के गुणस्थानों में उपक्रमण (गमन) पाया जाता है। सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यों में से ओघ सयोगिकेवली राशि को स्थापित करके और उसे अधस्तनराशि से भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए। किन्तु मनुष्यिनियों में उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवों को स्थापित करके एक सौ आठ संख्यात को छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थों के प्रमाण से भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में उपशामक गुणस्थानों से लेकर अयोगीपर्यन्त भगवन्तों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अप्रमत्तादि से लेकर अधस्तन गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।५९।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।६०।।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा।।६१।।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६२।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६३।।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६४।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सामान्यमनुष्य-पर्याप्तमनुष्ययोः ओघे उक्ताप्रमत्तराशिश्चैव भवति। मानुषीषु पुनः तत्प्रायोग्यसंख्यातमात्रो भवति। मनुष्यमनुष्यपर्याप्तयोः संयतासंयताः संख्यातकोटिमात्राः। मानुषीषु पुनः तत्प्रायोग्यसंख्यातरूपमात्रा इति गृहीतव्याः, वर्तमानकाले इमे इयन्तः इति उपदेशाभावात्।**

इमे सासादनाः संयतासंयतेभ्यः संख्यातगुणितकोटिमात्रत्वात् संख्यातगुणाः। मानुषीषु ततः संख्यातगुणाः

सूत्रार्थ —

तीनों प्रकार के मनुष्यों में सयोगिकेवली से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।५९।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।६०।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत संख्यातगुणित हैं।।६१।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६२।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६३।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६४।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ओघ प्ररूपणा में कही हुई अप्रमत्तसंयतों की राशि ही मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण है। किन्तु मनुष्यिनियों में उनके योग्य संख्यात भागमात्र राशि होती है।

मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तकों में संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं। किन्तु मनुष्यिनियों में उनके योग्य संख्यातरूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वे इतने ही होते हैं, इस प्रकार का वर्तमान काल में उपदेश नहीं पाया जाता।

वे सासादन संयतासंयतों के प्रमाण से संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं। मनुष्यिनियों में सासादनसम्यग्दृष्टि

संति। ततोऽपि संख्यातगुणाः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यः। एभ्योऽपि संख्यातगुणाः असंयतसम्यग्दृष्ट्यः, सप्तशतकोटिमात्रत्वात्।

मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः संख्यातगुणाश्च। एतत् स्पष्टीक्रियते—सामान्यमनुष्याः मिथ्यादृष्टयः असंख्यातगुणाः, जगत् श्रेण्याः असंख्यातभागपरिमाणत्वात् एषु एव लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याः गर्भिताः सन्ति। पर्याप्तमनुष्याः मानुष्यः भाववेदिनः मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः संख्यातरूपपरिमाणत्वात्।

एवं द्वितीयस्थले त्रिविधमनुष्याणां चतुर्विधानां वा अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

संप्रति असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतगुणस्थानेषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।६६।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६७।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।६८।।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।६९।।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७०।।

जीव मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियों से संख्यातगुणित होते हैं, उनसे भी संख्यातगुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं और उनसे भी संख्यातगुणे असंयतसम्यग्दृष्टि हैं। क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है।

मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवों का स्पष्टीकरण किया जाता है—असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों से मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि उनका प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग है इनमें ही लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य गर्भित हैं तथा मनुष्य-पर्याप्त और भाववेद मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि उनका प्रमाण संख्यातरूपमात्र ही पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के अथवा चारों प्रकार के मनुष्यों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तीनों प्रकार के मनुष्यों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।६६।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६७।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।६८।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।६९।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७०।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७१।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।७२।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७३।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंयतसम्यग्दृष्टीनां सम्यक्त्वापेक्षया त्रीणि सूत्राणि सुगमानि सन्ति। संयतासंयतस्थाने सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः, क्षीणदर्शनमोहनीयानां देशसंयमे वर्तमानानां बहूनामभावात्। क्षीणदर्शनमोहनीयाः प्रायेण असंयता भूत्वा तिष्ठन्ति। ते संयमं प्रतिपद्यमानाः प्रायेण महाव्रतानि चैव प्रतिपद्यन्ते, न देशव्रतानीति प्रोक्तं भवति। क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतेभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः बहवः उपलभन्ते। एभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतेभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः संख्यातगुणाः भवन्ति, बह्वायतत्वात्, संचयकालस्य बहुत्वाद्वा, उपशमसम्यक्त्वं अपेक्ष्य वेदकसम्यक्त्वस्य सुलभत्वाद्वा।**

प्रमत्ताप्रमत्तयोः सर्वाल्पाः उपशमसम्यग्दृष्टयः स्तोककालसंचयत्वात्, एभ्यः क्षायिकाः संख्यातगुणाः, बहुकालसंचयत्वात्, एभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन संयमं प्रतिपद्यमानजीवेभ्यः वेदकसम्यक्त्वेन संयमं प्रतिपद्यमानजीवानां बहुत्वोपलंभात्।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७१।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।७२।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७३।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यक्त्व की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले उपर्युक्त तीन सूत्रों का अर्थ सुगम है। संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करने वाले और देशसंयम में रहने वाले बहुत जीवों का अभाव है। दर्शनमोहनीय का क्षय करने वाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं। वे संयम को प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतों को ही धारण करते हैं, अणुव्रतों को नहीं, यह अर्थ कहा गया है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों से उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत मनुष्य बहुत पाये जाते हैं, उपशम-सम्यग्दृष्टि संयतासंयतों से वेदक सम्यग्दृष्टि संयतासंयत संख्यातगुणे हैं। क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टियों की आय अधिक है अथवा संचयकाल बहुत है अथवा उपशमसम्यक्त्व को देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्व पाना सुलभ है।

प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि उनका संचयकाल सबसे कम होता है। इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं, ये बहुत काल तक संचित होते हैं। इनसे वेदक सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व के साथ संयम को प्राप्त होने वाले जीवों की अपेक्षा वेदकसम्यक्त्व के साथ संयम को प्राप्त होने वाले जीवों की अधिकता पाई जाती है।

एवं तृतीयस्थले गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

संप्रति मानुषीगतविशेषप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते—

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।७५।।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७६।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।७७।।

एवं तिसु अद्धासु।।७८।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।७९।।

खवा संखेज्जगुणा।।८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अप्रशस्तवेदोदयेन दर्शनमोहनीयं क्षपयन्तो बहवो जीवाः न उपलभन्ते। एभ्यः जीवेभ्यः अप्रशस्तवेदोदयेन चैव दर्शनमोहनीयं उपशमयन्तो जीवाः मनुष्येषु संख्यातगुणाः उपलभन्ते। एभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽपिसंख्यातगुणाः एव।**

मनुष्यसामान्य-मनुष्यपर्याप्तयोः निरुद्धयोः भाववेदमानुषीषु मनुष्येषु पूर्वकरणादि-उपशमश्रेण्यारोहकेषु

इस प्रकार से तृतीय स्थल में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यिनियों में प्राप्त होने वाली विशेषताओं का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं-

सूत्रार्थ—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यिनियों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।७५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७६।।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।७७।।

इसी प्रकार तीनों प्रकार के मनुष्यों में अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानों में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व है।।७८।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।७९।।

तीनों प्रकार के मनुष्यों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अप्रशस्त वेद के उदय के साथ दर्शनमोहनीय को क्षपण करने वाले जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं। अप्रशस्तवेद के उदय के साथ दर्शनमोहनीय का क्षपण करने वाले जीवों से अप्रशस्त वेद के उदय के साथ ही दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाले जीव मनुष्यों में संख्यातगुणित पाये जाते हैं। इनकी अपेक्षा वेदक सम्यग्दृष्टि भी संख्यातगुणे ही हैं।

मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकों से निरुद्ध भावस्त्रीवेदी मनुष्यों में अपूर्वकरण आदि तीन

त्रिषु गुणस्थानेषु उपशमसम्यग्दृष्टयः स्तोकाः, स्तोककारणत्वात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, बहुकारणात्। मानुषीषु पुनः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः स्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः। अत्र पूर्वोक्तमेव कारणं।

स्तोकप्रवेशात् सर्वस्तोकाः उपशामकाः। बहुप्रवेशात् क्षपकाः संख्यातगुणाः इति ज्ञातव्यमल्पबहुत्वं मनुष्यगतौ स्त्रीवेदिमनुष्याणां।

एवं चतुर्थस्थले भावस्त्रीवेदिपुरुषाणां अल्पबहुत्वविशेषसूचकत्वेन षट्सूत्राणिगतानि।

इति मनुष्यगत्यन्तराधिकारः

उपशामक गुणस्थानों में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि उनके अल्प होने का कारण पाया जाता है। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि उनके बहुत होने का कारण पाया जाता है। किन्तु भावस्त्रीवेदी मनुष्यों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। यहाँ संख्यातगुणित होने का कारण पूर्वोक्त ही है।

उपशमश्रेणी में प्रवेश की अपेक्षा संख्या सबसे कम होने के कारण उपशामक जीव सबसे कम होते हैं। क्षपक श्रेणी में अधिक संख्या में प्रवेश के कारण क्षपक जीव उपशामकों से संख्यातगुणे होते हैं ऐसा मनुष्यगति में भाव स्त्रीवेदी मनुष्यों का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में भावस्त्रीवेदी पुरुषों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

यह मनुष्यगति नामका अन्तराधिकार समाप्त हुआ।

पुण्य और धर्म के स्वामी कौन-कौन हैं

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहि सासणे भणियं।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ।।81।।

पूजा आदि क्रियाओं में पुण्य होता है। श्रावक सम्यग्दर्शन और अणुव्रतों से सहित जिनपूजा, दान आदि क्रियाओं को करके सातिशय पुण्य संचित कर लेता है ऐसा उपासकाध्ययन नाम के अंग में जिनेन्द्रदेव द्वारा वर्णित है। टीकाकार कहते हैं–सर्वज्ञ वीतराग देव की पूजा आदि निदानबंध से रहित है तो वह तीर्थंकर नाम कर्म के बंध का भी कारण हो सकती है। अतः गृहस्थ का पूजादि से संचित पुण्य स्वर्ग के सुखों का कारण है पुनः परम्परा से मोक्ष का भी कारण है तथा मोह और क्षोभ सेरहित शुद्ध, बुद्धैक आत्मा का चिच्चमत्कार लक्षण, चिदानंद रूप परिणाम धर्म कहलाता है वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। यहाँ पर पुत्र, स्त्री, धन आदि में 'यह मेरा है' ऐसे भाव को मोह कहा है और परीषह उपसर्ग के आ जाने पर चित्त का चंचल हो जाना क्षोभ कहलाता है। निर्विकल्प समाधि में स्थित महामुनि का शुद्धोपयोग रूप स्थिर परिणाम ही धर्म है। टीकाकार कहते हैं यह धर्मरूप परिणाम ''गृहस्थानां न भवति पंचसूनासहितत्वात्'' गृहस्थों के संभव नहीं है क्योंकि वे पंचसूना-आरंभ आदि से सहित हैं। अतः आज के गृहस्थ को जिनपूजा आदि कार्यों में ही अपनी बुद्धि लगानी चाहिए। **(श्री कुन्दकुन्द देव)**

अथ देवगत्यन्तराधिकारः

अथ चतुःस्थलैः द्वाविंशतिसूत्रैः देवगतिनामान्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यदेवानां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणाय ''देवगदीए'' इत्यादिसप्तसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले भवनत्रिकदेवानां सौधर्मैशानपर्यंतदेवीनां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''भवण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले सौधर्मैशानादिनवग्रैवेयकपर्यंतानां अल्पबहुत्वकथनाय ''सोहम्मीसाण'' इत्यादिसूत्राष्टकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अनुदिशादि सर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवानां अल्पबहुत्वकथनाय ''अणुदिसादि'' इत्यादिसूत्रषट्कं इति समुदायपातनिका।

संप्रति देवगतौ देवानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।८१।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।८२।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८३।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८४।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।८५।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८६।।

अथ देवगति अन्तराधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में बाईस सूत्रों के द्वारा देवगति नामका अन्तराधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य देवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''देवगदीए'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में भवनत्रिक देवों का एवं सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होने वाली देवियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''भवण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः तृतीयस्थल में सौधर्म-ईशान स्वर्ग से लेकर नव ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होने वाले देवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''सोहम्मीसाण'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यन्त के देवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''अणुदिसादि'' इत्यादि छह सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब देवगति में देवों के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले सात सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।८१।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।८२।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।८३।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८४।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।८५।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८६।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। तत्र देवगतौ असंयतसम्यग्दृष्टिअपेक्षया मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः सन्ति, अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागो वर्तते। उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः ज्ञातव्यः।**

एवं प्रथमस्थले देवगतौ देवानां अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन गुणस्थानमाश्रित्य सप्तसूत्राणि गतानि। संप्रति भवनत्रिकदेवदेवीनां सौधर्मैशानदेवीनां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्प-वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अग्रे वक्ष्यमाणराश्यपेक्षया भवनवासिसासादनसम्यग्दृष्टयः सर्वतः स्तोकाः। ततः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, ततः असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, अत्र आवलिकायाः असंख्यातभागः गुणकारोऽस्ति, एभ्यः भवनवासिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः यस्तु असंख्यातजगत्श्रेणिप्रमाणमस्ति।**

वानव्यन्तरसासादनसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः ज्ञातव्यः।

देवों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सुगम है। उसमें देवगति में असंयतसम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग होता है। उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में देवगति में देवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब भवनत्रिक देव-देवियों का तथा सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

देवों में भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियाँ तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासिनी देवियाँ, इनका अल्पबहुत्व सातवीं पृथिवी के अल्पबहुत्व के समन है।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आगे कही जाने वाली राशि की अपेक्षा भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं। उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। उन असंयत देवों से मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है जो कि असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण है।

वानव्यंतर सासादनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव उनसे संख्यातगुपे हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि देव उनसे असंख्यातगुणे हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। उन असंयतसम्यग्दृष्टि देवों से मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

एवं ज्योतिष्काणामपि वक्तव्यं। स्वक-स्वकदेवीनां स्वक-स्वकौघवत् ज्ञातव्यं अल्पबहुत्वमिति।

एवं द्वितीयस्थले भवनवासि-वानव्यंतर-ज्योतिष्कदेवानां सर्वदेवीनां चाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना सौधर्मैशानादि-नवग्रैवेयकपर्यंतानां गुणस्थानापेक्षयाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइभंगो।।८९।।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी।।९०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९१।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९२।।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९३।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।९४।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९५।।

इसी प्रकार ज्योतिषी देवों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए। अपने-अपने गुणस्थानों में रहने वाली देवियों का सम्पूर्ण अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में भवनवासी-वानव्यंतर एवं ज्योतिषी देवों तथा देवियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सौधर्म-ईशान स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

सौधर्म-ईशान कल्प से लेकर शतार-सहस्त्रार कल्प तक कल्पवासी देवों में अल्पबहुत्व देवगति सामान्य के अल्पबहुत्व के समान है।।८९।।

आनत-प्राणत कल्प से लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक विमानवासी देवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।९०।।

उक्त विमानों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९१।।

उक्त विमानों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।९२।।

उक्त विमानों में मिथ्यादृष्टियों से असंयत-सम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९३।।

आनत-प्राणत कल्प से लेकर नवग्रैवेयक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं।।९४।।

उक्त विमानों में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणितहैं।।९५।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा देवसामान्ये अल्पबहुत्वं उक्तं, तथा एतेषामपि अल्पबहुत्वं वक्तव्यं। तद्यथा—स्वक-स्वककल्पस्थाः सासादनाः सर्वस्तोकाः। स्वक-स्वककल्पसम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः। स्वक-स्वककल्पासंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः। स्वक-स्वकमिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः ज्ञात्वा वक्तव्यः, एकस्वरूपत्वाभावात्। अनंतरोक्तकल्पेषु असंयतसम्यग्दृष्टिस्थाने सर्वस्तोकाः उपशम-सम्यग्दृष्टयः। क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः सर्वत्र आवलिकायाः असंख्यातभागः इति ज्ञातव्यः।**

आनतादिनवग्रैवेयकवासिनां सासादनादीनामल्पबहुत्वसूत्राणि सुगमानि। मनुष्येभ्यः आनतादिषु उत्पद्यमानमिथ्यादृष्टीन् अपेक्ष्य तत्रोत्पद्यमानसम्यग्दृष्टीनां संख्यातगुणत्वात्।

कश्चिदाह—देवलोके सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानजीवानां किन्न प्रधानत्वं ?

न, तेषां मूलराशेः असंख्यातभागत्वात्। अत्र गुणकारः संख्यातसमयाः। चतुर्थगुणस्थाने उपशम-सम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः, अंतर्मुहूर्तकालसंचितत्वात्।

तेभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, संख्यातसागरोपमकालेन संचितत्वात्। तत्रोत्पद्यमानक्षायिक-सम्यग्दृष्टिभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, संख्यातगुणितवेदकसम्यग्दृष्टीनां तत्रोत्पत्तिदर्शनात्।

उक्त विमानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार से सामान्य देवों में अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, उसी प्रकार इन देवों का अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए। उसका कथन इस प्रकार है—

अपने-अपने कल्प में रहने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। इनसे अपने-अपने कल्प के सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं। इनसे अपने-अपने कल्प के असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। इनसे अपने-अपने कल्प के मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। यहाँ पर गुणकार जानकर कहना चाहिए, क्योंकि इन देवों में गुणकार की एकरूपता का अभाव है। अभी इन पीछे कहे गये कल्पों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, ऐसा जानना चाहिए।

आनत स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों का सासादन आदि गुणस्थानों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले सूत्र सुगम हैं, क्योंकि मनुष्यों से आनत आदि विमानों में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा वहाँ पर उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं।

शंका—देवलोक में सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीवों की प्रधानता क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशि के असंख्यातवें भाग मात्र होते हैं। यहाँ संख्यातसमय गुणकार है। चतुर्थ गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि वे केवल अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा संचित होते हैं।

उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि वे संख्यातसागर प्रमाण काल के द्वारा संचित होते हैं। वहाँ उत्पन्न होने वाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ संख्यातगुणित वेदक सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति देखी जाती है।

एवं तृतीयस्थले सौधर्मादिनवग्रैवेयकवासिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

अनुदिशादि-सर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सम्यक्त्वापेक्षया सूत्रषट्कमवतार्यते—

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।९७।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९८।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९९।।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१००।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१०१।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपशमश्रेणिचटनावतरणक्रियाव्यावृतोपशमसम्यक्त्वसहित संख्यातसंयतानां अत्रोत्पन्नानां अंतर्मुहूर्तसंचितानामुपलंभात् ते उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः तत्र अनुदिशादि-अपराजित-वासिदेवेषु। एभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। तेभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, क्षायिक-**

इस प्रकार तृतीय स्थल में सौधर्म स्वर्ग से लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक के देवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनुदिश विमानों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक के देवों का सम्यक्त्व की अपेक्षा अल्पबहुत्व बताने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

नव अनुदिशों को आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।९७।।

उक्त विमानों में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।९८।।

उक्त विमानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९९।।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसग्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।१००।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।१०१।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।१०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमश्रेणी पर आरोहण और अवतरणरूप क्रिया में लगे हुए अर्थात् चढ़ते और उतरते हुए मरकर उपशमसम्यक्त्व सहित यहाँ उत्पन्न हुए और अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा संचित हुए संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि संयत पाये जाते हैं। इसलिए वे अनुदिश आदि से लेकर अपराजित विमान तक उत्पन्न होने वाले उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम होते हैं। इनसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं। इनसे

सम्यक्त्वेनोत्पद्यमानसंयतेभ्यः वेदकसम्यक्त्वेनोत्पद्यमानसंयताः संख्यातगुणाः।

एतत्कथं ज्ञायते ?

कारणानुसारिकार्यदर्शनात् मनुष्येषु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संयताः स्तोकाः, वेदकसम्यग्दृष्टिसंयताः संख्यातगुणाः, तेन तेभ्यः देवेषूत्पद्यमानसंयताः अपि तत्प्रतिभागिताश्चैवेति गृहीतव्यं। अत्र सम्यक्त्वाल्पबहुत्वं चैव, शेषगुणस्थानाभावात्।

कथमेतज् ज्ञायते ?

एतस्मात् एव सूत्रात् ज्ञायते।

सर्वार्थसिद्धौ त्रयस्त्रिंशदायुस्थितौ असंख्यातजीवराशयः किं न भवन्ति ?

न भवन्ति, तत्र पल्योपमस्य संख्यातभागमात्रान्तरे तदसंभवात्। अत्र सर्वार्थसिद्धौ सर्वे देवाः अहमिन्द्राः एव सम्यग्दृष्टयश्चैव ततश्च्युत्वा नियमेन सिद्धिमवास्यन्ति अतः एकभवावतारिणः एव इति ज्ञात्वा सम्यग्दर्शनदृढीकरणार्थमेव पुरुषार्थो विधेयः।

एवं चतुर्थस्थले अनुदिशादि-अहमिंद्राणामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

वेदक सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व के साथ मरण कर यहाँ उत्पन्न होने वाले संयतों की अपेक्षा वेदकसम्यक्त्व के साथ मरण कर यहाँ उत्पन्न होने वाले संयत संख्यातगुणित होते हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, कारण के अनुसार कार्य देखा जाता है, इस न्याय के अनुसार मनुष्यों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत अल्प होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयत संख्यातगुणित होते हैं। इसलिए उनसे देवों में उत्पन्न होने वाले संयत भी तत्प्रतिभागी ही होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इन कल्पों में यही सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व है, क्योंकि वहाँ शेष गुणस्थानों का अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्र से ही जाना जाता है।

शंका—तेंतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले सर्वार्थसिद्धिविमान में असंख्यात जीवराशि क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर पल्योपम के संख्यातवें भागप्रमाण काल का अन्तर है इसलिए वहाँ असंख्यात जीवराशि का होना असंभव है। यहाँ सर्वार्थसिद्धि विमान में सभी देव अहमिन्द्र ही होते हैं और सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं तथा वहाँ से च्युत होकर नियम से सिद्धपद को ही प्राप्त करते हैं अतः वे एक भवावतारी ही हैं ऐसा जानकर हम सभी को अपना सम्यग्दर्शन दृढ़ करने का ही पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस तरह से चतुर्थ स्थल में अनुदिश आदि सभी अहमिन्द्र देवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्व नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में गतिमार्गणा नामका प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अधुना इन्द्रियमार्गणायामल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियेषु विकलेन्द्रियेषु चैकगुणस्थानं मिथ्यात्वमेवास्तेषामल्पबहुत्वं न कथितं। पंचेन्द्रियअसंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टयः असंख्यातगुणाः सन्ति न च अनंतगुणाः पंचेन्द्रियाणामनन्त-त्वाभावात्।**

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम-द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब यहाँ इन्द्रियमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुवाद से पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकों में अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है। विशेषता केवल यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है, इसलिए उनका अल्पबहुत्व नहीं कहा गया है। पञ्चेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों से पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे होते हैं, अनंतगुणे नहीं होते हैं, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय जीवों में अनन्तपने का अभाव पाया जाता है। अर्थात् पञ्चेन्द्रिय जीव अनन्त नहीं होते हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ वके अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नामका द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

संप्रति कायमार्गणायां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकगुणस्थानमेव शेषस्थावरकायिकेषु अस्तीति ज्ञापनार्थं सूत्रे त्रसकायिक-त्रसकायिकपर्याप्तानां ग्रहणं कृतं। अत्रापि स्वक-स्वकासंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः मिथ्यादृष्टयः असंख्यातगुणा एव न चानंतगुणाः, तेषामानन्त्याभावात्। अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः इति ज्ञातव्यो भवति।**

अन्यत्रापि चोक्तं—'कायानुवादेन स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः। कायं प्रति उच्यते—सर्वतस्तेजस्कायिकाः अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः। ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः। तत्रकायिकानां पंचेन्द्रियवत्[1]। ज्ञातव्यं भवद्भिः।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब कायमार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुवाद से त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों में अल्पबहुत्व ओघ के समान है। विशेषता केवल यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—शेष स्थावरकायिक जीवों में एक मात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है यह ज्ञान कराने के लिए सूत्र में त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक पद का ग्रहण किया गया है। यहाँ भी अपने-अपने असंयतसम्यग्दृष्टियों के प्रमाण से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे ही हैं न कि अनंतगुणे हैं, क्योंकि उनके अनंतपने का अभाव है। यहाँ जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग गुणकार होता है, ऐसा ज्ञातव्य है।

अन्यत्र भी (सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में) कहा है—

कायमार्गणा के अनुवाद से स्थावरकायिक जीवों में गुणस्थान के भेदों का अभाव होने से अर्थात् उनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान मात्र होने के कारण उनके अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है। काय की अपेक्षा से कहते हैं—अग्निकायिक जीव सबसे कम हैं। उससे अधिक पृथिवीकायिक जीव हैं। उनसे अधिक जलकायिक जीव हैं। उनसे अधिक वायुकायिक जीव हैं और इनसे अनंतगुणे अधिक वनस्पतिकायिक जीव होते हैं। त्रसकायिक जीवों का अल्पबहुत्व पंचेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नामका तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. सर्वार्थसिद्धि, अ. १, सूत्र ८।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिः स्थलैः एकोनचत्वारिंशत्सूत्रैः योगमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-काययोगि-औदारिककाययोगिनामल्पबहुत्वकथनाय ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसप्तदशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले औदारिकमिश्रकाययोगिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''ओरालिय'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनामल्पबहुत्वकथनाय ''वेउव्विय'' इत्यादिसप्तसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले आहार-आहारमिश्रयोगिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''आहार'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च कार्मणकाययोगिनां अल्पबहुत्वकथनाय ''कम्मइय'' इत्यादिसप्तसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति योगमार्गणायां पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-काययोगि-औदारिककाययोगिनां उपशामक-क्षपक-सयोगिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकाय-जोगीसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१०५।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव।।१०६।।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पंचमस्थल में उनतालीस (३९) सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और काययोगियों में औदारिक काययोगियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि सत्रह सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले ''ओरालिय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः तृतीयस्थल में वैक्रियिककाययोगी एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''वेउव्विय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का अल्पबहुत्व कहने हेतु ''आहार'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनश्च कार्मणकाययोगी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''कम्मइय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। अध्याय के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब योगमार्गणा में पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिक काययोगियों में उपशामक, क्षपक एवं सयोगिकेवलियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुवाद से पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प हैं।।१०५।।

उक्त बारह योग वाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।१०६।।

खवा संखेज्जगुणा।।१०७।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव।।१०८।।

सजोगिकेवली पवेसणेण तेत्तिया चेव।।१०९।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतैः पूर्वोक्तसर्वयोगैः सह उपशमश्रेणिमारोहतां उत्कर्षेण चतुःपंचाशत्संख्या अस्ति, इति तुल्यत्वं प्ररूपितं। उपरिमगुणस्थानजीवैः क्षपकश्रेण्यारोहकैः ऊना इति स्तोकाः प्ररूपिताः। एतेषां द्वादशानां अल्पबहुत्वानां प्रमाणं आनेतुं तिसृषु अद्धासु स्थितउपशमाः इति सूत्रे प्ररूपिताः सन्ति।**

उपशान्ता एकादशमगुणस्थानवर्तिनः साधवः तावन्त एव।

क्षपकाः अपूर्वकरण-अनिवृत्ति-सूक्ष्मसांपरायिकाः, अष्टोत्तरशतपरिमाणत्वात् संख्यातगुणाः। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्था अपि एतावन्तश्चैव।

सयोगिकेवलिनश्च प्रवेशेन तावन्तः एव। येषु योगेषु सयोगिगुणस्थानं संभवति, तेषां चैवेदं अल्पबहुत्वं गृहीतव्यं। इमे सयोगिकेवलिनः कालं प्रतीत्य संख्यातगुणा भवन्ति। यथा ओघे कथितं तथा ज्ञातव्यं। तद्यथा—अष्टलक्ष-अष्टानवतिसहस्र-द्व्यधिक-पंचशतप्रमाणाः कथ्यन्ते।

अधुना अप्रमत्तादि-अधस्तनमिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्तिनां अल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

उक्त बारह योग वाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१०७।।

उक्त बारह योग वाले क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।१०८।।

सयोगिकेवली जीव प्रवेश की अपेक्षा पूर्वोक्तप्रमाण ही हैं।।१०९।।

सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रोक्त सर्व योगों के साथ उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले उपशामक जीवों की संख्या उत्कर्ष से चौवन होती हैं, इसलिए उनकी तुल्यता कही है तथा उपरिम अर्थात् क्षपक श्रेणी संबंधी गुणस्थानवर्ती जीवों से कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है। इस प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी इन बारहों के अल्पबहुत्व का प्रमाण लाने के लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानों में स्थित उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पबहुत्व के आधार हुए।

ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्तकषाय वाले महामुनियों की संख्यात उतनी ही है।

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानवर्ती क्षपक महामुनि एक सौ आठ संख्याप्रमाण होने से संख्यातगुणे हैं। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ महामुनियों की संख्या भी उतनी ही १०८ प्रमाण ही है।

सयोगिकेवली भगवान भी प्रवेश की अपेक्षा उतने ही हैं। जिन योगों में सयोगिकेवली गुणस्थान संभव होता है, उनके ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए। ये सयोगिकेवली भगवान काल की अपेक्षा संख्यातगुणित होते हैं। इनका कथन जिस प्रकार से गुणस्थान में किया है उसी प्रकार जानना चाहिए। वह इस प्रकार है—आठ लाख, अट्ठानवे हजार, पाँच सौ दो प्रमाण (८,९८,५०२) कहे गये हैं।

अब अप्रमत्त से लेकर नीचे के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक के जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।१११।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।११२।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।११३।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।११४।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।११५।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।११६।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।११७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एषां सूत्राणामर्थः सुगमः वर्तते। पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः तेषां चैव योगानां मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः सन्ति। अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः ज्ञातव्यः। सामान्यकाययोगिनां औदारिककाययोगिनां च असंयतसम्यग्दृष्टिभ्यः तेषां चैव योगानां मिथ्यादृष्टयः अनंतगुणाः सन्ति एकेन्द्रियापेक्षया एव इमे इति ज्ञातव्यं। अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धिकेभ्यः

सूत्रार्थ—

सयोगिकेवली से उपर्युक्त बारह योग वाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१११।।

उक्त बारह योग वाले अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।११२।।

उक्त बारह योग वाले प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।११३।।

उक्त बारह योग वाले संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।११४।।

उक्त बारह योग वाले सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।११५।।

उक्त बारह योग वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।११६।।

उक्त बारह योग वाले असंयतसम्यग्दृष्टियों से (पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और (काययोगी तथा औदारिककाययोगी) मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणित हैं।।११७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों से उन्हीं योगों के मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग यहाँ गुणकार है, सामान्य काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियों से उन्हीं योगों के मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणित हैं। एकेन्द्रियों की अपेक्षा ही ये जानना चाहिए। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धों से अनंतगुणित

अनंतगुणः सिद्धपरमात्मकेभ्यः अपि अनंतगुणः, अनंतानि सर्वजीवराशिप्रथमवर्गमूलानि इति।

संप्रति एतेषां द्वादशानां सम्यक्त्वापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पावहु-अमोघं।।११८।।

एवं तिसु अद्धासु।।११९।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।१२०।।

खवा संखेज्जगुणा।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतेषां गुणस्थानानां यथा पूर्वं गुणस्थानेषु उक्तं, तथैव अत्रापि अन्यूनाधिकं वक्तव्यं। एवं त्रिषु अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु। सर्वस्तोकाः उपशमाः, क्षपकाः संख्यातगुणाः। विवक्षितयोगोपशामकेभ्यः विवक्षितयोगानां क्षपकाः संख्यातगुणाः ज्ञातव्याः।**

एवं प्रथमस्थले मनोवचनकाययोगिनां द्वादशानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सप्तदशसूत्राणि।

अधुना औदारिकमिश्रकाययोगेषु गुणस्थानापेक्षाल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

है, सिद्ध परमात्माओं से भी अनंतगुण हैं, जो सर्वजीवराशि के अनंतप्रथम वर्गमूल प्रमाण है।

अब इन बारह प्रकार के योग वालों का सम्यक्त्व की अपेक्षा अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उक्त बारह योग वाले जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।११८।।

इसी प्रकार उक्त बारह योग वाले जीवों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व है।।११९।।

उक्त बारह योग वाले जीवों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।१२०।।

उक्त बारह योग वाले उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन सूत्रोक्त चारों गुणस्थानों का जिस प्रकार गुणस्थान में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहाँ पर भी हीनता और अधिकता रहित अर्थात् तत्प्रमाण ही अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानों में अल्पबहुत्व जानना चाहिए। उपशामक जीव सबसे कम हैं। उनसे संख्यातगुणे क्षपक हैं। विवक्षित योग वाले उपशामकों से विवक्षित योग वाले क्षपक जीव संख्यातगुणे होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मन-वचन और काययोगी बारह प्रकार के जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले सत्रह सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।।१२२।।
असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१२३।।
सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१२४।।
मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।१२५।।
असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१२६।।
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कपाटसमुद्घाते केवलिनां आरोहणावरोहणक्रियाव्यावृतचत्वारिंशत्जीवानां अवलंबनात् स्तोका जाताः औदारिकमिश्रकाययोगिनः। असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, देवनारकमनुष्येभ्यः आगत्य तिर्यग्मनुष्ययोः उत्पन्नानां असंयतसम्यग्दृष्टीनां औदारिकमिश्रयोगे सयोगिकेवलिभ्यः संख्यातगुणानां उपलंभात्।**

सासादनाः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, अत्र गुणकारः-अभव्यसिद्धिकैः अनंतगुणः, सिद्धैरपि अनंतगुणः ज्ञातव्यः।

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में सयोगिकेवली सबसे कम हैं।।१२२।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में सयोगिकेवली जिनों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१२३।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१२४।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।१२५।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१२६।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कपाट समुद्घात के समय आरोहण और अवतरणक्रिया में संलग्न चालीस केवलियों के अवलम्बन से औदारिकमिश्रकाययोगियों में सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं। देव, नारकी और मनुष्यों से आकर तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोग में सयोगिकेवली जिनों से संख्यातगुणित पाये जाते हैं।

सासादन जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

गुणकार क्या है ? मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं। यहाँ अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणित और सिद्धों से भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, ऐसा जानना चाहिए।

चतुर्थगुणस्थाने क्षायिकसम्यग्दृष्टयः स्तोकाः, दर्शनमोहनीयक्षयेणोत्पन्नश्रद्धानानां जीवानां अतिदुर्लभत्वात्। क्षयोपशमसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वानां जीवानां बहूनामुपलंभात्। अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः ज्ञातव्याः।

एवं द्वितीयस्थले औदारिकमिश्रयोगे अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

संप्रति वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो।।१२८।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।१२९।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३०।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३१।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१३२।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।१३३।।

चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए श्रद्धान वाले जीवों का होना अति दुर्लभ है।

क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाले जीव बहुत पाये जाते हैं। संख्यात समय यहाँ गुणकार है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में औदारिकमिश्रयोग में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों में (संभव गुणस्थानवर्ती जीवों का) अल्पबहुत्व देवगति के समान है।।१२८।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१२९।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३०।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३१।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१३२।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१३३।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा देवगतौ अल्पबहुत्वमुक्तं तथा वैक्रियिककाययोगिषु वक्तव्यं। शेषाणां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।**

असंयतसम्यग्दृष्टिस्थाने वैक्रियिकमिश्रकाययोगे उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः, उपशमसम्यक्त्वेन सह उपशमश्रेण्यां मृतजीवानामतिस्तोकत्वात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, उपशामकेभ्यः संख्यातगुणासंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानेभ्यः संचयसंभवात्। वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, तिर्यग्भ्यः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रवेदकसम्यग्दृष्टिजीवानां देवेषु उपपादसंभवात्। अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः मन्तव्यः।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राणि सप्त गतानि।

संप्रति आहारक-आहारकमिश्रसंयतानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१३५।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१३६।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार का अल्पबहुत्व देवगति में कहा गया है उसी प्रकार की व्यवस्था वैक्रियिककाययोगियों में जानना चाहिए। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्रकाययोग में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी में मरे हुए जीवों का प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी में मरे हुए उपशामकों से संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का संचय संभव है। उनसे असंख्यातगुणे अधिक वेदकसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि तिर्यंचों से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का देवों में उत्पन्न होना संभव है। यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग मानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी संयत महामुनियों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१३५।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। उपशमसम्यग्दृष्टीनामत्र संभवाभावात् तेषामल्पबहुत्वं न कथितं।**

किमर्थं उपशमसम्यक्त्वेन सह आहारकऋद्धिर्नोत्पद्यते ?

उपशमसम्यक्त्वकाले अत्यन्ताल्पे तदुत्पत्तेः संभवाभावात्। न च उपशमश्रेण्यां उपशमसम्यक्त्वेन सह आहारकर्द्धिः उपलभ्यते, तत्र प्रमादाभावात्। न च ततः अवतीर्यमाणस्य अयमृद्धिः उपलभ्यते, किंच यावन्मात्रेण कालेन आहारकर्द्धिरुत्पद्यते, उपशमसम्यक्त्वस्य तावन्मात्रकालमवस्थानाभावात्।

एवं चतुर्थस्थले आहारर्द्धिसंयतानामल्पबहुत्वं सम्यग्दर्शनापेक्षया प्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

कार्मणकाययोगिनां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।।१३७।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३८।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३९।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।१४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। इन दोनों योगों में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का होना संभव नहीं है, इसलिए उनका अल्पबहुत्व नहीं कहा है।

शंका—उपशमसम्यक्त्व के साथ आहारकऋद्धि क्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—क्योंकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्व के काल में आहारकऋद्धि का उत्पन्न होना संभव नहीं है। न उपशमसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी में आहारकऋद्धि पाई जाती है, क्योंकि वहाँ पर प्रमाद का अभाव है। न उपशमश्रेणी से उतरे हुए जीवों के भी उपशमसम्यक्त्व के साथ आहारकऋद्धि पाई जाती है, क्योंकि जितने काल के द्वारा आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्व का उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में सम्यग्दर्शन की अपेक्षा आहारकऋद्धि सम्पन्न संयतों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोगी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगियों से सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं।।१३७।।

कार्मणकाययोगियों में सयोगिकेवली जिनों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३८।।

कार्मणकाययोगियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३९।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणित हैं।।१४०।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१४१।।
खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१४२।।
वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रतरलोकपूरणसमुद्घातयोः उत्कर्षेण षष्टिमात्रसयोगिकेवलिनामुपलंभात् सर्वस्तोकाः भवन्ति। चतुर्थगुणस्थाने सर्वस्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः, उपशमश्रेण्यां उपशमसम्यक्त्वेन सह मृतसंयतानां संख्यातत्वात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टयः कार्मणयोगे संख्यातगुणाः।**

पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रक्षायिकसम्यग्दृष्टिभ्यः असंख्यातजीवाः विग्रहं किन्न कुर्वन्ति ?

न तावद् देवाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्याताः युगपत् म्रियन्ते, मनुष्येषु असंख्यातक्षायिकदृष्टिप्रसंगात्। न च मनुष्येषु असंख्याता म्रियन्ते, तत्रासंख्यातानां सम्यग्दृष्टीनामभावात्। न तिर्यञ्चः असंख्याता मारणान्तिकं कुर्वन्ति, तत्रायानुसारिव्ययत्वात्। तेन विग्रहगतौ क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्याताश्चैव भवन्ति। तथा संख्याताः सन्तोऽपि उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः संख्यातगुणाः, उपशमसम्यग्दृष्टि-आयकारणात् क्षायिकसम्यग्दृष्टि-आयकारणस्य संख्यातगुणत्वात्।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१४१।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१४२।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में अधिक से अधिक मात्र साठ सयोगिकेवली जिन पाये जाने के कारण उनकी संख्या सबसे कम होती है। चतुर्थ गुणस्थान में सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी में उपशमसम्यक्त्व के साथ मरे हुए संयतों का प्रमाण संख्यात ही पाया जाता है। कार्मणकाययोग में क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे होते हैं।

शंका—पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका पर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव एक साथ मरते हैं, अन्यथा मनुष्यों में असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के होने का प्रसंग आ जायेगा। न मनुष्यों में ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं क्योंकि उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अभाव है। न असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंच ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, क्योंकि उनमें आपके अनुसार व्यय होता है। इसलिए विग्रहगति में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं तथा संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियों से संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टियों के आय का कारण से क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के आय का कारण संख्यातगुणा हैं।

वेदकसम्यग्दृष्टयः एभ्यः असंख्यातगुणाः भवन्ति। अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः, असंख्यातानि पल्योपमप्रथमवर्गमूलानि। प्रतिभागश्च क्षायिकसम्यग्दृष्टिराशिगुणितासंख्यातावलिकाप्रमाणं भवति।

एवं पंचमस्थले कार्मणकाययोगे गुणस्थानापेक्षयाल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

वेदकसम्यग्दृष्टि इनसे असंख्यातगुणे होते हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, जो पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है और प्रतिभाग क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशि से गुणित असंख्यात आवली प्रमाण है।

इस तरह से पंचम स्थल में कार्मणकाययोग में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खंड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नामका चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

जीव का अकालमरण किन कारणों से होता है

विसवेयणरत्तक्खय भयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ।।25।।
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडया भंगेहिं।
रसविज्जजोय धारण अणणपसंगेहिं विविहेहिं।।26।।
इय तिरिय मणुय जम्मे सुइरं उववज्जिऊण बहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त।।27।।

विष भक्षण से, वेदना की पीड़ा के निमित्त से, रक्त अर्थात् रुधिर के क्षय से, भय से, शस्त्र के घात से, संक्लेश परिणाम से आहार तथा श्वास के निरोध से इन कारणों से आयु का क्षय होता है।

हिम अर्थात् शीत पाले से, अग्नि से, जल से, बड़े पर्वत पर चढ़कर गिरने से, बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरने से, शरीर का भंग होने से, रस अर्थात् पारा आदि की विद्या उसके संयोग से धारण करके भक्षण करे इससे और अन्याय कार्य, चोरी, व्यभिचार आदि के निमित्त से इस प्रकार अनेक प्रकार के कारणों से आयु का व्युच्छेद होकर कुमरण होता है।

इसलिए कहते हैं कि हे मित्र! इस प्रकार तिर्यंच, मनुष्य जन्म में बहुत काल बहुत बार उत्पन्न होकर अपमृत्यु अर्थात् कुमरण संबंधी तीव्र महादुःख को प्राप्त हुआ।

—भगवान कुंदकुंद भावपाहुड़

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ चतुःस्थलैः त्रिपञ्चाशत्सूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले स्त्रीवेदेषु गुणस्थानापेक्षया सम्यक्त्वमाश्रित्यापि अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि अष्टादशसूत्राणि वक्ष्यन्ते। तदनु द्वितीयस्थले पुरुषवेदेषु गुणस्थानापेक्षया सम्यक्त्वं प्रतीत्य च अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''पुरिसवेदएसु'' इत्यादि त्रयोदशसूत्राणि कथ्यन्ते। ततः परं तृतीयस्थले नपुंसकभाववेदिषु गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''णउंसय'' इत्यादि षोडशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अपगतवेदानामल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन ''अवगदवेदएसु'' इत्यादिषट्सूत्राणि इति पातनिका सूचिता भवति।

संप्रति वेदमार्गणायां भावस्त्रीवेदधारिणां उपशमादि-अधस्तनमिथ्यादृष्टिजीवानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१४४।।

खवा संखेज्जगुणा।।१४५।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।१४६।।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में त्रेपन सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नामका पंचम अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें से प्रथम स्थल में स्त्रीवेदी जीवों में गुणस्थान की अपेक्षा सम्यक्त्व का आश्रय लेकर अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि अट्ठारह सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों में गुणस्थान की अपेक्षा और सम्यक्त्व के आश्रय से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''पुरिसवेदएसु'' इत्यादि तेरह सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में नपुंसकवेदी जीवों में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले ''णउंसय'' इत्यादि सोलह सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में अपगतवेदी-वेदरहित जिन भगवन्तों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''अवगदवेदएसु'' इत्यादि छह सूत्र हैं। अध्याय के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब वेदमार्गणा में भावस्त्रीवेदी उपशमश्रेणी से लेकर अधस्तन मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक के जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों ही गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१४४।।

स्त्रीवेदियों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१४५।।

स्त्रीवेदियों में क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१४६।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।१४७।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१४८।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१४९।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५०।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५१।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— **भावस्त्रीवेदधारिद्रव्यपुरुषवेदिषु अपूर्वानिवृत्तिकरणगुणस्थानयोः दशपरिमाणत्वात्प्रवेशेन तुल्याः अल्पाश्च भवन्ति। इमे एव क्षपकाः विंशतिपरिमाणत्वात् अल्पा एव। शेषसूत्राणि सुगमानि। संयतासंयतेभ्यः सासादनाः असंख्यातगुणाः, अशुभसासादनगुणस्थानस्य सुलभत्वात्। एभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, सासादनायात् संख्यातगुणायसंभवात्। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-आयं अपेक्ष्य असंख्यातगुणायत्वात्। एभ्यः मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः ज्ञातव्यः।**

अधुना गुणस्थानापेक्षया स्त्रीवेदेषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

स्त्रीवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१४७।।

स्त्रीवेदियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४८।।

स्त्रीवेदियों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४९।।

स्त्रीवेदियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५०।।

स्त्रीवेदियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५१।।

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— भावस्त्रीवेद को धारण करने वाले द्रव्य पुरुषवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या मात्र दस होने के कारण प्रवेश की अपेक्षा वे एक समान और सबसे कम होते हैं। इन दोनों गुणस्थानों में क्षपक श्रेणी वाले मुनियों की संख्या बीस प्रमाण होने से वह भी कम ही है।

शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

संयतासंयत गुणस्थानवर्तियों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे अधिक होते हैं। क्योंकि अशुभ सासादन गुणस्थान का पाना सुलभ है। इनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्यागुणित आय संभव है। इनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की आय से असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की आय असंख्यातगुणी होती है। इनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे होते हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

अब गुणस्थान की अपेक्षा स्त्रीवेदियों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु नौसूत्रों का अवतार हो रहा है—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१५३।।
उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५४।।
वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५५।।
पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१५६।।
उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५७।।
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५८।।
एवं दोसु अद्धासु।।१५९।।
सव्वत्थोवा उवसमा।।१६०।।
खवा संखेज्जगुणा।।१६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। भावस्त्रीवेदिनां श्रेण्यां अपूर्वानिवृत्तिगुणस्थानयोः सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः उपशमसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः। सर्वस्तोकाः उपशामकाः, क्षपकाश्च संख्यातगुणाः।**

सूत्रार्थ—

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१५३।।

स्त्रीवेदियो में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५४।।

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५५।।

स्त्रीवेदियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१५६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५७।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५८।।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में स्त्रीवेदियों का अल्पबहुत्व है।।१५९।।

स्त्रीवेदियों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।१६०।।

स्त्रीवेदियों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सरल है। भावस्त्रीवेदी मुनि श्रेणी में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं, उपशमसम्यग्दृष्टि उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं।

सबसे कम उपशामक मुनियों की संख्या है और क्षपक मुनि संख्यातगुणे होते हैं।

एतत्सूत्रं पुनरुक्तं किन्न भवति ?

न, अत्र प्रवेशैः अधिकाराभावात्। संचयेनात्राधिकारोऽस्ति, न सः पूर्वं प्ररूपितः। ततो न पुनरुक्तत्वमिति।

एवं प्रथमस्थले भावस्त्रीवेदिनां अल्पबहुत्वकथनत्वेन अष्टादश सूत्राणि गतानि।

संप्रति पुरुषवेदेषु गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वकथनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

पुरिसवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१६२।।

खवा संखेज्जगुणा।।१६३।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।१६४।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।१६५।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१६६।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१६७।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१६८।।

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ प्रवेश की अपेक्षा इस सूत्र का अधिकार नहीं है किन्तु संचय की अपेक्षा यहाँ अधिकार है और वह संचय पूर्व में प्ररूपित नहीं किया गया है इसलिए यहाँ उस सूत्र के कहने से पुनरुक्तता का दोष नहीं आता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भावस्त्रीवेदी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेदियों में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१६२।।

पुरुषवेदियों में उक्त दोनों गुणस्थानों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१६३।।

पुरुषवेदियों में दोनों गुणस्थानों में क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।१६४।।

पुरुषवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१६५।।

पुरुषवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१६६।।

पुरुषवेदियों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१६७।।

पुरुषवेदियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१६८।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१६९।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पुरुषवेदेषु उपशमश्रेण्यां चतुःपंचाशत्प्रमाणाः मुनयः सन्ति। क्षपकश्रेण्यां क्षपकाः अष्टोत्तरशतमात्राः सन्ति। शेषसूत्राणि सुगमानि।**

संप्रति एषु एव वेदेषु गुणस्थानापेक्षयाल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्कमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहु-अमोघं।।१७१।।

एवं दोसु अद्धासु।।१७२।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।१७३।।

खवा संखेज्जगुणा।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि-अप्रमत्तगुणस्थानेषु सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं यथागुणस्थानेषु प्रोक्तं तथैव वक्तव्यं। पुनः अपूर्वानिवृत्तिगुणस्थानयोः सर्वस्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः, क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः। सर्वस्तोकाः उपशमश्रेण्यारोहकाः, क्षपकाश्च ततः संख्यातगुणाः सन्ति।**

पुरुषवेदियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१६९।।

पुरुषवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पुरुषवेदी मुनियों की संख्या उपशमश्रेणी पर चौवन (५४) होती है। क्षपक श्रेणी में क्षपक मुनियों की संख्या एक सौ आठ (१०८) मात्र है। शेष सूत्र सुगम हैं।

अब इस वेद में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।१७१।।

इसी प्रकार पुरुषवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व है।।१७२।।

पुरुषवेदियों से उपशामक जीव सबसे कम हैं।।१७३।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत तक गुणस्थानों में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व जैसा गुणस्थानों में पहले कहा गया है वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिए। पुनः अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण दोनों गुणस्थानों में सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्षायिकसम्यग्दृष्टि उनसे संख्यातगुणित हैं। उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनियों की संख्या सबसे कम है और क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले क्षपक महामुनि उनसे संख्यातगुणे हैं।

एवं द्वितीयस्थले पुरुषवेदेषु अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

नपुंसकवेदेषु उपशामकाद्यधस्तनमिथ्यादृष्टिपर्यन्तानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

णउंसयवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१७५।।

खवा संखेज्जगुणा।।१७६।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।१७७।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।१७८।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१७९।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१८०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१८१।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१८२।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।१८३।।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेदियों में उपशमश्रेणी से लेकर अधस्तन मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक के जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१७५।

नपुंसकवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में उपशामकों से क्षपक जीव प्रवेश की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।१७६।।

नपुंसकवेदियों में क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१७७।।

नपुंसकवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१७८।।

नपुंसकवेदियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१७९।।

नपुंसकवेदियों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१८०।।

नपुंसकवेदियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१८१।।

नपुंसकवेदियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१८२।।

नपुंसकवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— **भावनपुंसकवेदिद्रव्यपुरुषवेदेषु द्वयोःगुणस्थानयोः उपशमाः प्रवेशेन तुल्याः स्तोकाश्च, पंचपरिमाणत्वात्। क्षपकाः दश परिमाणाः भवन्ति। अप्रमत्तसंयताः संचयराशिपरिग्रहात् संख्यातगुणाः। ततः प्रमत्तसंयताः संख्यातगुणाः। संयतासंयतानां पल्योपमस्य असंख्यातभागः गुणकारः अतः असंख्यातगुणाः। सासादनाः असंख्यातगुणाः अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः संख्यातसमयाः। असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। मिथ्यादृष्टयोऽनंतगुणाः, अत्र गुणकारः अभव्यैरनन्तगुणः, सिद्धैरपि अनंतगुणः, यस्तु अनंतानि सर्वजीवराशिप्रथमवर्गमूलानि। तात्पर्यमेतत्— प्रथमगुणस्थानात् पंचमगुणस्थानपर्यंता द्रव्येण नपुंसकवेदिनो भवन्ति किंतु षष्ठगुणस्थानादारभ्य उपरिमाः सर्वे भावनपुंसकवेदिनः द्रव्येण पुरुषवेदाः एव इति ज्ञातव्यं।**

अधुना असंयतसम्यग्दृष्टि-आदिगुणस्थानेषु सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं।।१८४।।
पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१८५।।
उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— भावनपुंसकवेदी, द्रव्यपुरुषवेदी जीवों में आठवें-नवमें दोनों गुणस्थानों में प्रवेश की अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समान और सबसे कम हैं, क्योंकि उनका प्रमाण पाँच की संख्यामात्र है। क्षपकों की संख्या दश प्रमाण है। अप्रमत्तसंयत संचयराशि को ग्रहण करने के कारण संख्यातगुणे हैं। प्रमत्तसंयत उनसे संख्यातगुणे हैं। संयतासंयत जीवों का गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है अतः उनकी संख्या असंख्यातगुणी है। सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि उनसे संख्यातगुणे हैं, यहाँ संख्यात समय गुणकार है।

असंयतसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इनसे अनंतगुणी संख्या मिथ्यादृष्टि जीवों की है, यहाँ अभव्यों से अनन्तगुणा गुणकार है और सिद्धों से भी अनंतगुणा है, जो सर्वजीवराशि के अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

तात्पर्य यह है कि प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक द्रव्य से नपुंसकवेदी होते हैं, किन्तु छठे गुणस्थान से लेकर ऊपर के सभी गुणस्थानों में मनुष्य भाव से तो नपुंसक वेदी हो सकते हैं किन्तु द्रव्य से उनके पुरुषवेद ही जानना चाहिए।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

नपुंसकवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।१८४।।

नपुंसकवेदियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१८५।।

नपुंसकवेदियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१८६।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१८७।।
एवं दोसु अद्धासु।।१८८।।
सव्वत्थोवा उवसमा।।१८९।।
खवा संखेज्जगुणा।।१९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **असंयतसम्यग्दृष्टिषु सर्वस्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः। क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः, प्रथमपृथिवीगतक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां प्रधानत्वाभ्युपगमात्। वेदकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः।**

संयतासंयतेषु सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः, मनुष्यपर्याप्तनपुंसकवेदिजीवान् मुक्त्वा तेषामन्यत्राभावात्। उपशमसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः। वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः।

प्रमत्ताप्रमत्तयोः सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः अप्रशस्तवेदोदयेन बहूनां दर्शनमोहनीयक्षपणाभावात्। शेषे सूत्रे द्वे सुगमे स्तः। द्वयोः श्रेणिगुणस्थानयोः सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः, ततः संख्यातगुणाः उपशमसम्यग्दृष्टयः। सर्वस्तोकाः उपशामकाः, ततः संख्यातगुणाः क्षपकाः इति ज्ञातव्याः। एवं तृतीयस्थले नपुंसकवेदिनामल्पबहुत्वं गुणस्थानापेक्षया प्रतिपादनत्वेन षोडशसूत्राणि गतानि।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१८७।।

इसी प्रकार नपुंसकवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।१८८।।

नपुंसकवेदियों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।१८९।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — असंयतसम्यग्दृष्टियों में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि यहाँ पर प्रथम पृथिवी के क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकी जीवों की प्रधानता रहती है। वेदकसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

संयतासंयतों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि मनुष्यपर्याप्त नपुंसकवेदी जीवों को छोड़कर उनका अन्यत्र अभाव है। नपुंसकवेदी संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, अर्थात् वह पल्योपम के असंख्यातप्रथम वर्गमूलप्रमाण है। नपुंसकवेदी संयतासंयत उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि अप्रशस्त वेद के उदय के साथ दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण करने वाले बहुत जीवों का वहाँ अभाव पाया जाता है।

शेष दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। दोनों श्रेणी वाले गुणस्थानों में सबसे कम क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं, उनसे संख्यातगुणे उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं। उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले उपशामक मुनि सबसे कम हैं,

संप्रति वेदविरहितानां गुणस्थानापेक्षयाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

अवगदवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१९१।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।१९२।।

खवा संखेज्जगुणा।।१९३।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।१९४।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।१९५।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।१९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**षण्णामपि सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। सयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च प्रवेशापेक्षया अष्टोत्तरशतप्रमाणाः, संचयापेक्षया पंचशत-अष्टानवतिप्रमाणाः सन्ति। सयोगिकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः-अष्टलक्ष-अष्टानवतिसहस्र-पंचशत-द्विसंख्याप्रमाणाः भवन्ति। एभ्यः सर्वकेवलि-भ्योऽस्माकं नमोऽस्तु अनंतशः इति।**

उनसे संख्यातगुणे क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनियों की संख्या होती है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में नपुंसकवेदियों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने वाले सोलह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदरहित—अपगतवेदी जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

अपगतवेदियों में अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन दोनों गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१९१।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।१९२।।

अपगतवेदियों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१९३।।

अपगतवेदियों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।१९४।।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।१९५।।

सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।१९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त छहों सूत्रों का अर्थ सरल है। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनेन्द्र प्रवेश की अपेक्षा एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं। संचय की अपेक्षा यह संख्या पाँच सौ अट्ठानवे (५९८) प्रमाण है। सयोगिकेवली अपने काल की अपेक्षा समुदायरूप से संख्यातगुणे हैं—आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (८,९८,५०२) संख्याप्रमाण हैं। उन सभी केवली भगवन्तों को मेरा अनंत बार नमस्कार होवे।

एवं चतुर्थस्थले अपगतवेदिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

इस तरह से चतुर्थस्थल में अपगतवेदियों का अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में वेदमार्गणा नामका पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

धर्म की रक्षा से ही अपनी रक्षा है

धर्मो रक्षति रक्षितो ननु हतो हन्ति ध्रुवं देहिनाम्।
हन्तव्यो न ततः स एव शरणं संसारिणां सर्वथा।।
धर्मः प्रापयतीह तत्पदमपि ध्यायान्ति यद्योगिनः।
धर्मात्सत्सुहृदस्ति नैव च सुखी नो पण्डितो धार्मिकात्।।

जो प्राणी धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। परन्तु जो प्राणी धर्म को नष्ट कर देता है, छोड़ देता है, धर्म उसको भी नष्ट कर देता है, संसार में डुबो देता है। यह ध्रुव सिद्धांत है। अतः भव्यजीवों को धर्म का हनन-त्याग कभी भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि सर्वथा-सब प्रकार से वह धर्म ही प्राणियों के लिए शरण है-सहायक है-रक्षक है। जिस पद का योगीश्वर सदा ध्यान करते रहते हैं, यह धर्म उस मोक्ष पद को भी देने वाला है इसलिए धर्म से बढ़कर कोई सच्चा मित्र नहीं है तथा धर्मात्मा मनुष्य से बढ़कर और कोई अधिक सुखी नहीं है और न धर्मात्मा से बढ़कर अन्य कोई पंडित ही है।

-श्री पद्मनंदिआचार्य

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः स्थलैः एकोनविंशतिसूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले चतुःकषायसहितानां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि एकादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले चतुर्थादिगुणस्थानेषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''असंजद'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयस्थले अकषायिणां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''अकसाईसु'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति उपशमादि-अधस्तनमिथ्यादृष्टिपर्यंतानामल्पबहुत्वकथनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१९७।।

खवा संखेज्जगुणा।।१९८।।

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसाहिया।।१९९।।

खवा संखेज्जगुणा।।२००।।

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में उन्नीस सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नामका छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चारों कषाय से सहित जीवों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने हेतु "कसायाणुवादेण" इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में चतुर्थ आदि गुणस्थानों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले "असंजद" इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में कषायरहित भगवन्तों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले "अकसाईसु" इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब उपशम श्रेणी से प्रारंभ करके नीचे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक के जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ग्यारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुवाद से क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१९७।।

चारों कषाय वाले जीवों में उपशामकों से क्षपक संख्यातगुणित हैं।।१९८।।

केवल विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवों में क्षपकों से सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक हैं।।१९९।।

लोभकषायी जीवों में सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकों से सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संख्यातगुणित हैं।।२००।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।२०१।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२०२।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।२०३।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२०४।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२०५।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२०६।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।२०७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कषायमार्गणायां चतुर्विधकषायेषु द्वयोः श्रेणिगुणस्थानयोः उपशमाः प्रवेशेन तुल्याः स्तोकाश्च। क्षपकाः संख्यातगुणाः। लोभकषायसहितेषु सूक्ष्मसांपरायिकाः उपशामकाः विशेषाधिकाः सन्ति। एभ्यः क्षपकाः द्विगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्यातगुणाः, एभ्यः प्रमत्तसंयताः संख्यातगुणाः। शेषाणां सूत्राणां अर्थः सुगमः।**

एवं प्रथमस्थले चतुर्विधकषायसहितानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

चारों कषाय वाले जीवों में क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।२०१।।

चारों कषाय वाले जीवों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।२०२।।

चारों कषाय वाले जीवों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं।।२०३।।

चारों कषाय वाले जीवों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२०४।।

चारों कषाय वाले जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं।।२०५।।

चारों कषाय वाले जीवों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२०६।।

चारों कषाय वाले जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं।।२०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कषायमार्गणा में चारों कषाय वाले दोनों श्रेणी के गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा एक समान और सबसे कम हैं। क्षपक श्रेणी वाले उनसे संख्यातगुणे हैं। लोभकषाय सहित जीवों में सूक्ष्मसांपरायिक उपशामक विशेष अधिक हैं। इनसे दुगने क्षपक हैं। अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं, इनसे प्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या संख्यातगुणी है। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चारों कषाय सहित जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति कषायसहितानां असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानेषु अल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं।।२०८।।

एवं दोसु अद्धासु।।२०९।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२१०।।

खवा संखेज्जगुणा।।२११।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**यथा प्रमत्ताप्रमत्तयोः त्रिषु कषायसहितेषु सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं प्ररूपितं, तथा अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनोः श्रेण्यारोहकमहामुन्योः सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं। विशेषेण तु लोभकषायस्य एवं त्रिषु अपूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायेषु गुणस्थानेषु अल्पबहुत्वे वक्तव्यं, यावत् सूक्ष्मसांपरायिकः इति लोभकषायोपलंभात्। शेषसूत्राणामर्थः सुगमः वर्तते।**

एवं द्वितीयस्थले असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिसूक्ष्मसांपरायिकेषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्। अकषायिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था।।२१२।।

अब कषाय सहित जीवों का असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों में अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

चारों कषाय वाले जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टि , संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।२०८।।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानों में चारों कषाय वाले जीवों का सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।२०९।।

चारों कषाय वाले उपशामक जीव सबसे कम हैं।।२१०।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में तीनों कषाय सहित जीवों में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में श्रेणी आरोहण करने वाले महामुनि के सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व जानना चाहिए। विशेषरूप से लोभकषाय का, इसी प्रकार तीन गुणस्थानों में अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपराय में सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक लोभकषाय का सद्भाव पाया जाता है। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान तक के जीवों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायरहित भगवन्तों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ सबसे कम हैं।।२१२।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा।।२१३।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।२१४।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।२१५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अकषायिषु सर्वस्तोकाः एकादशगुणस्थानवर्तिनः, चतुःपंचाशत् प्रमाणत्वात्। क्षीणकषायिणः अष्टोत्तरशतपरिमाणाः सन्ति। सयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च प्रवेशापेक्षया द्वौ अपि तुल्यौ, अष्टोत्तरशत प्रमाणा एव। सयोगिकेवलिनः संचयकालापेक्षया संख्यातगुणाः, ओघराशिना अन्यूनाधिकाः सन्ति।**

एवं तृतीयस्थले कषायविरहितानां उपशान्तकषायादिचतुःगुणस्थानवर्तिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वनाम्नि अष्टमप्रकरणे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अकषायी जीवों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संख्यातगुणित हैं।।२१३।।

अकषायी जीवों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२१४।।

अकषायी जीवों में सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा बहुत अधिक संख्यातगुणित हैं।।२१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अकषायी—कषायरहित जीवों में सबसे कम ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव होते हैं, क्योंकि उनकी संख्या चौवन (५४) प्रमाण है। क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या १०८ है। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली दोनों भी प्रवेश की अपेक्षा समान होते हैं अर्थात् दोनों की संख्या एक सौ आठ प्रमाण ही है। सयोगिकेवली भगवान संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं, उनका प्रमाण ओघराशि से न कम है, न अधिक है।

इस तरह से तृतीय स्थल में कषाय से रहित जीवों का उपशांतकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती संयतों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्व नामक अष्टम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में कषायमार्गणा नामक छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिः स्थलैः अष्टाविंशतिसूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानिनां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणाय ''आभिणि'' इत्यादि द्वादशसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिषु गुणस्थानापेक्षया सम्यक्त्वमाश्रित्य चाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''मणपज्जव'' इत्यादि द्वादशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले केवलज्ञानिषु अल्पबहुत्वकथनमुख्यत्वेन ''केवलणाणीसु'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

अधुना मतिश्रुतावधि-अज्ञानिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगण्णाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।२१६।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः, विभंगज्ञानिषु एवमेव। मतिअज्ञानि-श्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। एकेन्द्रियापेक्षत्वात्। विभंगज्ञानिषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः**

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में अट्ठाईस सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नामका सातवां अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों प्रकार के अज्ञानियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानियों का गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''आभिणि'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में मनःपर्ययज्ञानियों में गुणस्थान की अपेक्षा और सम्यक्त्व का आश्रय लेकर अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु ''मणपज्जव'' आदि बारह सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में केवल ज्ञानियों में अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''केवलणाणीसु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। अध्याय के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब मति-श्रुत-अवधि अज्ञानियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मत्यज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।२१६।।

उक्त तीनों अज्ञानी जीवों में मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मति अज्ञानी—कुमतिज्ञानी और श्रुताज्ञानी—कुश्रुतज्ञानी जीवों में सबसे कम सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हैं, इसी प्रकार विभंगज्ञानी—कुअवधिज्ञानियों में अल्पबहुत्व पाया जाता है। मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय जीव अनंत है

ज्ञातव्याः। एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रे द्वे गते।

त्रिविधज्ञानिनामल्पबहुत्वकथनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।२१८।।

उवसन्तकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२१९।।

खवा संखेज्जगुणा।।२२०।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२२१।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।२२२।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२२३।।

और वे सभी मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणे जानना चाहिए अर्थात् विभंगज्ञान पञ्चेन्द्रियों के ही होता है और पञ्चेन्द्रिय जीव देव-मनुष्य-नारकी-पशु सभी कुल मिलाकर असंख्यात ही होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीनों प्रकार के अज्ञानी जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीनों प्रकार के ज्ञानी—सम्यग्ज्ञानी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु आठ सूत्रों का अवतार किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।२१८।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण हैं।।२१९।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२२०।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में क्षपकों से क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२२१।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२२२।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२२३।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।२२४।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मतिश्रुतावधिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः असंख्येयगुणाः, तिर्यगपेक्षयेत्यर्थः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः, देवनारकतिर्यग्मनुष्यापेक्षया। अत्रापि प्रधानीवृत्तदेवासंयत-सम्यग्दृष्टिराशित्वात्।**

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदिगुणस्थानेषु अल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पा-बहुगमोघं।।२२६।।

एवं तिसु अद्धासु।।२२७।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२२८।।

खवा संखेज्जगुणा।।२२९।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यात-गुणित हैं।।२२४।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में संयतासंयतों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में सबसे कम चारों उपशामक मुनि हैं और चारों क्षपक मुनि उनसे संख्यातगुणे होते हैं। अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणा हैं। प्रमत्तसंयत उनसे संख्यातगुणा हैं। संयतासंयत जीव तिर्यंचों की अपेक्षा असंख्यातगुणा होते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि उनमें देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्य सभी सम्मिलित हैं, फिर भी यहाँ पर असंयतसम्यग्दृष्टि देवों की राशि प्रधानता से ग्रहण की गई है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु चार सूत्रों का अवतार हो रहा है—

सूत्रार्थ—

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।२२६।।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।२२७।।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।२२८।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा ओघे एतेषां गुणस्थानवर्तिनां सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं प्ररूपितं तथैवात्र प्ररूपयितव्यं। शेषाणि सूत्राणि सुगमानि वर्तन्ते।**

एवं द्वितीयस्थले मतिश्रुतावधिषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति मनःपर्ययज्ञानिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते—

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।२३०।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२३१।।

खवा संखेज्जगुणा।।२३२।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२३३।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।२३४।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२३५।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२३६।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार गुणस्थानों में इन गुणस्थानवर्ती जीवों के सम्यक्त्व का अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ पर भी प्ररूपित करना चाहिए। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मति-श्रुत-अवधिज्ञानियों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनःपर्ययज्ञानी महामुनियों के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

मनःपर्ययज्ञानियों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।२३०।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२३१।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२३२।।

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२३३।।

मनःपर्ययज्ञानियों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२३४।।

मनःपर्ययज्ञानियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२३५।।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२३६।।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२३७।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२३८।।

एवं तिसु अद्धासु।।२३९।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२४०।।

खवा संखेज्जगुणा।।२४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेषां द्वादशसूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। केवलं तु प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः मनःपर्ययज्ञानिनोः उपशमश्रेण्यः अवतीर्यमाणाणां उपशमश्रेणिमारोहमाणाणां उपशमसम्यक्त्वेन सह स्तोकानां महामुनीनामुपलंभात्। क्षायिकसम्यक्त्वेन सह मनःपर्ययज्ञानिमुनिवराणां बहूनामुपलंभात् क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः सन्ति।**

एवं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति केवलज्ञानिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।२४२।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।२४३।।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिक-सम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२३८।।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियों में अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।२३९।।

मनःपर्ययज्ञानियों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।२४०।।

उपशामक जीवों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त बारहों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेषता केवल यह है कि उपशमश्रेणी से उतरने वाले अथवा उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनःपर्ययज्ञानी थोड़े ही मुनि उपशम सम्यक्त्व के साथ पाये जाते हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व के साथ इन दोनों गुणस्थानों में बहुत से मनःपर्ययज्ञानी मुनिवर पाये जाते हैं इसलिए उपशम सम्यग्दृष्टि से क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे होते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनःपर्ययज्ञानियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब केवलज्ञानी भगवन्तों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेश की अपेक्षा दोनों ही तुल्य और उतने मात्र ही हैं।।२४२।।

केवलज्ञानियों में सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।२४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**'तुल्ला तत्तिया' एतौ द्वौ शब्दौ हेतु-हेतुमद्भावेन योजयितव्यौ। येन तुल्याः तेन तावन्तः इति।**

कियन्तस्ते ?

अष्टोत्तरशतमात्राः। पूर्वकोटिकाले संचयं गताः सयोगिकेवलिनः एकसमयप्रवेशकेभ्यः संख्येयगुणा, संख्यातगुणेन कालेन मिलितत्वात्।

उक्तं चान्यत्र[१]—''केवलज्ञानिषु अयोगिकेवलिभ्यः सयोगिकेवलिनः संख्येयगुणाः। तत्कथं ? अयोगिकेवलिनः एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षेण अष्टोत्तरशतसंख्याः। स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः। तेभ्यः संख्येयाः सयोगिकेवलिनः अष्टलक्ष-अष्टानवतिसहस्र-पंचशत-द्विप्रमाणाः।''

एवं चतुर्थस्थले केवलज्ञानिषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"तुल्य और तावन्मात्र" इन दोनों शब्दों को हेतु और हेतुमद्भाव से सम्बन्धित करना चाहिए। जिस कारण से वे परस्पर में तुल्य हैं उसी कारण से वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण हैं।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं। पूर्वकोटिप्रमाण काल में संचय को प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समय में प्रवेश करने वालों की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं, क्योंकि वे संख्यातगुणित काल से संचित हुए हैं।

अन्यत्र—तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी कहा है—

"केवलज्ञानियों में अयोगिकेवलियों से सयोगिकेवलियों की संख्या संख्यातगुणी है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—अयोगिकेवली एक अथवा दो अथवा तीन अथवा अधिक से अधिक एक सौ आठ प्रमाण होते हैं। स्वकाल से सामुदायिकरूप से उनकी संख्या संख्यातप्रमाण है और उनसे संख्यातगुणे सयोगिकेवली होते हैं, क्योंकि वे जिनेन्द्र भगवान आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (८,९८,५०२) प्रमाण होते हैं।"

इस तरह से चतुर्थ स्थल में केवलज्ञानियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम नामक प्रकरण में गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में ज्ञानमार्गणा नामका सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अध्याय १, सूत्र नं. ८।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ षट्स्थलैः द्विचत्वारिंशत्सूत्रैः संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यसंयतानां अल्पबहुत्वनिरूपणाय ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिचतुर्दशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले सामायिकछेदोपस्थापनयोः अल्पबहुत्वनिरूपणाय ''सामाइय'' इत्यादिदशसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''परिहारसुद्धि'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपरायसंयतानां अल्पबहुत्वकथनाय ''सुहुम'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं पंचमस्थले यथाख्यातसंयतानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय ''जधाक्खाद'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् षष्ठस्थले पंचमादि-प्रथमगुणस्थानपर्यंतानां अल्पबहुत्वनिरूपणाय ''संजदासंजदेसु'' इत्यादिएकादशसूत्राणि वक्ष्यन्ते इति समुदायपातनिका।

अधुना सामान्येन संयतानां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय चतुर्दशसूत्राण्यवतार्यन्ते—

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।२४४।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२४५।।

खवा संखेज्जगुणा।।२४६।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।२४७।।

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारम्भ

अब छह स्थलों में बयालीस सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य संयतों का अल्पबहुत्वानुगम बतलाने हेतु ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि चौदह सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सामायिक-छेदोपस्थापना संयमियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''सामाइय'' इत्यादि दस सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में परिहारविशुद्धि संयतों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने के लिए ''परिहारसुद्धि'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में सूक्ष्मसांपराय संयतों का अल्पबहुत्व कहने वाले ''सुहुम'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके आगे पंचम स्थल में यथाख्यात चारित्रधारी संयमियों का अल्पबहुत्व बताने हेतु ''जधाक्खाद'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् छठे स्थल में पंचम गुणस्थान से लेकर नीचे प्रथम गुणस्थान तक के जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''संजदासंजदेसु'' इत्यादि ग्यारह सूत्र कहेंगे। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सामान्य से संयतों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु चौदह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।२४४।।

संयतों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२४५।।

संयतों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२४६।।

संयतों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२४७।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।२४८।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।२४९।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।२५०।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२५१।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२५२।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२५३।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२५४।।

एवं तिसु अद्धासु।।२५५।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२५६।।

खवा संखेज्जगुणा।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिषु अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु उपशमाः संयताः चतुःपंचाशत्प्रमाणाः सन्ति।**

संयतों में सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।२४८।।

संयतों में सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।२४९।।

संयतों में सयोगिकेवली जिनों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२५०।।

संयतों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।२५१।।

संयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२५२।।

संयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२५३।।

संयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२५४।।

उसी प्रकार संयतों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।२५५।।

उक्त गुणस्थानों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।२५६।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अपूर्वकरण आदि उपरितन तीनों गुणस्थानों में उपशम संयत चौवन संख्याप्रमाण

उपशान्ता अपि तावन्त एव। क्षपकाः अष्टोत्तरशतसंख्याः।

ज्ञानवेदादिसर्वविकल्पेषु उपशमश्रेणिमारोहकजीवेभ्यः क्षपकश्रेणिमारोहकजीवाः द्विगुणा इति आचार्योपदेशोऽस्ति। तद्यथा—एकसमयेन तीर्थकराः षट् क्षपकश्रेणिं चटन्ति। दश प्रत्येकबुद्धाः आरोहन्ति, बोधितबुद्धाः अष्टोत्तरशतमात्राः, स्वर्गच्युताः तावन्तश्चैव। उत्कृष्टावगाहनायाः द्वौ क्षपकश्रेणिं आरोहतः। जघन्यावगाहनायाः चत्वारः, मध्यमावगाहनायाः अष्टौ मुनयः क्षपकश्रेणिमारोहन्ति। पुरुषवेदेन अष्टोत्तरशतमात्राः, नपुंसकभाववेदेन दश, स्त्रीभाववेदेन विंशतियतयश्च। एतेषामर्द्धमात्राः उपशमश्रेणिमारोहन्ति इति गृहीतव्यं[१]।

क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनः अष्टोत्तरशतमात्राः, संयमसामान्यविवक्षात्वात्। शेषसूत्राणामर्थः सुगमः। प्रमत्ताप्रमत्तस्थानयोः सर्वतः स्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः, अंतर्मुहूर्तसंचयात्। तेभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, पूर्वकोटिकालसंचयात्।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयमिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन चतुर्दशसूत्राणि गतानि।

संप्रति सामायिक-छेदोपस्थापनसंयमिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते—

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।२५८।।

हैं। उपशान्त—ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव भी उतने ही हैं। क्षपक जीवों की संख्या एक सौ आठ है।

ज्ञान-वेद आदि सर्व विकल्पों में उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों से क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले जीव दो गुने होते हैं, इसी प्रकार आचार्यों का उपदेश पाया जाता है।

वह इस प्रकार है—एक समय में एक साथ छह तीर्थंकर क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं। दश प्रत्येक बुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्ग से च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं। उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं। जघन्य अवगाहना वाले चार और मध्यम अवगाहना वाले आठ मुनि एक साथ क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं। पुरुषवेद के उदय के साथ एक सौ आठ, भाव नपुंसकवेद के उदय से दस और भाव स्त्रीवेद के उदय से बीस जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं। इन पूर्वोक्त मुनियों की संख्या से आधी संख्या प्रमाण मुनि उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि यहाँ पर सामान्य संयम की विवक्षा है।

शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है। प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में सभी तरह से सबसे कम उपशम-सम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका संचयकाल पूर्वकोटि वर्ष है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य संयतों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले चौदह सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामायिक और छेदोपस्थापना संयमियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।२५८।।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. ५, पृ. ३२३।

खवा संखेज्जगुणा।।२५९।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।२६०।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२६१।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२६२।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२६३।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२६४।।

एवं दोसु अद्धासु।।२६५।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।२६६।।

खवा संखेज्जगुणा।।२६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतेषां सूत्राणां अर्थः सुगमोऽस्ति, बहुशः, प्ररूपितत्वात्। इमे सामायिकसंयताः छेदोपस्थापनासंयताश्च षष्ठ-सप्तम-अष्टम-नवम-गुणस्थानवर्तिनः सन्ति। अतः ओघवत् अल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले सामायिकछेदोपस्थापनसंयमिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन दशसूत्राणि गतानि।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२५९।।

क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।२६०।।

अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।२६१।।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२६२।।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२६३।।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२६४।।

इसी प्रकार उक्त जीवों का अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।२६५।।

उक्त जीवों में उपशामक सबसे कम हैं।।२६६।।

उपशामकों से क्षपक संख्यातगुणित हैं।।२६७।।

हिन्दी टीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है, क्योंकि इस विषय का प्ररूपण कई बार किया जा चुका है। ये सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत छठे, सातवें, आठवें, नवमें गुणस्थानवर्ती होते हैं। अतः इनका अल्पबहुत्व गुणस्थानों के समान ही जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सामायिक और छेदोपस्थापना संयमियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना परिहारशुद्धिसंयतानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्कमवतार्यते—

परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।।२६८।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।२६९।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।२७०।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः द्विगुणा भवन्ति। प्रमत्ताप्रमत्तयोः अस्मिन् संयमे सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः, क्षायिकसम्यक्त्वस्य प्रचुरं संभवाभावात्। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्य प्रचुरं संभवात् ते संख्यातगुणाः तेभ्यः। अत्र उपशमसम्यक्त्वं नास्ति, त्रिंशद्वर्षैः विना परिहारशुद्धिसंयमस्य संभवाभावात्। न च तावत्कालमुपशमसम्यक्त्वस्यावस्थानमस्ति, येन परिहारशुद्धिसंयमेन सह उपशमसम्यक्त्वस्योपलब्धिर्भवेत् ? अन्यच्च—न च परिहारशुद्धिसंयममत्यजतः तस्य उपशमश्रेणिचटनार्थं दर्शनमोहनीयस्योपशामनं अपि संभवति, येन उपशमश्रेण्यां द्वयोरपि संयोगो भवेत्। अतः एतज्ज्ञातव्यं यत् परिहारविशुद्धसंयमे उपशमसम्यक्त्वं नास्तीति।**

एवं तृतीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अब परिहारविशुद्धि संयतों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

परिहारशुद्धिसंयतों में अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं।।२६८।।

परिहारशुद्धिसंयतों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं।।२६९।।

परिहारशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२७०।।

परिहारशुद्धिसंयतों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिक-सम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—परिहारविशुद्धि संयतों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत दोगुने होते हैं। प्रमत्त और अप्रमत्त के इस संयम में क्षायिक सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व का प्रचुरता से होना संभव नहीं है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का वहाँ चूँकि प्रचुरता से होना संभव है इसलिए वे उनसे संख्यातगुणा अधिक पाये जाते हैं। यहाँ उपशम सम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि तीस वर्ष के बिना परिहारविशुद्धि संयम का होना संभव नहीं है और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्व का अवस्थान रहता है, जिससे कि परिहारशुद्धिसंयम के साथ उपशम सम्यक्त्व की उपलब्धि हो सके अर्थात् नहीं हो सकती है। दूसरी बात यह है परिहार विशुद्धि संयम को नहीं छोड़ने वाले जीव के उपशम श्रेणी पर चढ़ने के लिए दर्शनमोहनीयकर्म का उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशमश्रेणी में उपशमसम्यक्त्व और परिहारशुष्टिसंयम इन दोनों का भी संयोग हो सके। अतः यह जानना चाहिए कि परिहारविशुद्धि संयम में उपशम सम्यक्त्व नहीं होता है।

इस तरह से तृतीय स्थल में परिहारविशुद्धि संयतों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति सूक्ष्मसांपरायसंयतानामल्पबहुत्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा।२७२।।

खवा संखेज्जगुणा।।२७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूक्ष्मसांपराये उपशमाः चतुःपंचाशत्। क्षपकाः अष्टोत्तरशतप्रमाणाः सन्ति।**

एवं चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपरायसंयतानामल्पबहुत्वकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

यथाख्यातसंयमिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतेषु उपशान्तकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः भवन्ति।**

एवं पंचमस्थले यथाख्यातसंयमिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना संयतासंयत-असंयतानां अल्पबहुत्वकथनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते—

संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि।।२७५।।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।२७६।।

अब सूक्ष्मसांपराय संयतों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अल्प हैं।।२७२।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।२७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— सूक्ष्मसांपरायसंयमियों में उपशमसम्यग्दृष्टि चौवन संख्याप्रमाण हैं। क्षपक जीव एक सौ आठ प्रमाण हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सूक्ष्मसांपराय संयतों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब यथाख्यात संयमियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

यथाख्यातविहारशुद्धि संयतों में अल्पबहुत्व अकषायी जीवों के समान है।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यथाख्यातविहारशुद्धि संयमियों में उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्तियों से क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती संयमी संख्यातगुणे अधिक होते हैं।

इस प्रकार पंचम स्थल में यथाख्यात संयमियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब संयतासंयत और असंयतों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ग्यारह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयतासंयत जीवों में अल्पबहुत्व नहीं है।।२७५।।

संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२७६।।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२७७।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२७८।।

असंजदेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।२७९।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२८०।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२८१।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।२८२।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२८३।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२८४।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। असंयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनाः, षडावलिकासंचयात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः, संख्यातावलिसंचयात्। असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः।**

संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२७७।।

संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२७८।।

असंयतों में सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२७९।।

असंयतों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२८०।।

असंयतों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२८१।।

असंयतों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।२८२।।

असंयतों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२८३।।

असंयतों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२८४।।

असंयतों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सरल है। असंयतों में सासादनगुणस्थानवर्ती जीव सबसे कम हैं, क्योंकि उनका संचयकाल छह आवली मात्र है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि उनका संचयकाल संख्यात आवली मात्र है। असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, आवली का असंख्यातवां भाग गुणकार है।

कुतः? स्वाभाविकात्। मिथ्यादृष्टयोऽनंतगुणाः, स्वाभाविकात्। एकेन्द्रियापेक्षयैव।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने उपशमसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः, अंतर्मुहूर्तकालसंचयात्। तेभ्यः क्षायिक-सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः, द्विसागरोपमसंचयात्। तेभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः सन्ति। देवादि-अपेक्षया इति ज्ञातव्यं।

एवं षष्ठस्थले देशसंयत-असंयतानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

ऐसा क्यों है ? क्योंकि यह स्वाभाविक है।

मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं, क्योंकि यह स्वाभाविक है। यह कथन एकेन्द्रियों की अपेक्षा ही कहा गया है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं, क्योंकि उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका संचयकाल दो सागरोपम होता है। उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि इसमें देवगति आदि की अपेक्षा भी कथन सम्मिलित है ऐसा समझना चाहिए।

इस तरह से छठे स्थल में देशसंयत और असंयत जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में संयम मार्गणा नामका आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

देव का लक्षण

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि दु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा।।

'जो देवे सो देव' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो अर्थ–निधि, रत्न आदि धन को देता है, धर्म–चारित्र लक्षण धर्म को, दया लक्षण धर्म को, वस्तु स्वरूप लक्षण धर्म को, आत्मा की उपलब्धि लक्षण धर्म को और उत्तम क्षमादि दशभेद लक्षण धर्म को देता है। काम–अर्ध-मंडलीक, मंडलीक, महामंडलीक, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती और धरणेन्द्र के भोगरूप काम को देता है तथा केवल ज्योति–स्वरूप ज्ञान को देता है वह देव है। क्योंकि जिसके पास जो है वह वही देता है और जिनेन्द्रदेव के पास अर्थ है, धर्म है एवं प्रव्रज्या है इसीलिए वह अर्थ, धर्म और प्रव्रज्या–सर्व सौख्यमय दीक्षा को देते हैं।

–भगवान कुंदकुंददेव, बोधपाहुड़ गाथा 24

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुःसूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शनवतां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय द्वे सूत्रे स्तः। तदनु द्वितीयस्थले अवधिदर्शन-केवलदर्शनवतां अल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति चक्षुरचक्षुर्दर्शनिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।।२८६।।

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२८७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। चक्षुर्दर्शिनः मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यातगुणा ? अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः।**

एवं प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुर्दर्शिनोः अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अवधिदर्शनिकेवलदर्शिनोः अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।२८८।।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारम्भ

अब दो स्थलों के द्वारा चार सूत्रों में दर्शनमार्गणा नामका नवमां अधिकार प्रारम्भ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अवधिदर्शनी और केवलदर्शनियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षुदर्शन एवं अचक्षुदर्शन को प्राप्त जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।२८६।।

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।२८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षु और अचक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी भगवन्तों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अवधिदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियों के समान है।।२८८।।

केवलदंसणी केवलणाणि भंगो।।२८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सयोगायोगिकेवलिनः एव केवलदर्शनिनो भवन्ति। ते प्रवेशापेक्षया अष्टोत्तरशतसंख्याः। पुनश्च सयोगिकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः अष्टलक्षअष्टानवतिसहस्र-द्वयधिकपंचशत-प्रमाणाः भवन्तीति। एवं द्वितीयस्थले अवधिदर्शनकेवलदर्शिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।**

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

केवलदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्त्व केवलज्ञानियों के समान है।।२८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवान ही केवलदर्शनी होते हैं। वे प्रवेश की अपेक्षा एक सौ आठ होते हैं। पुनश्च सयोगिकेवली भगवान स्वकाल के द्वारा कुल मिलाकर आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो प्रमाण होते हैं।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अवधिदर्शनी और केवलदर्शनियों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ में अल्पबहुत्वानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में दर्शनमार्गणा नामका नवमां अधिकार समाप्त हुआ।

महाव्रती के प्रतिसमय कर्मनिर्जरा होती है

घडियाजलं व कम्मे अणुसमयमसंखगुणियसेढीए।
णिज्जरमाणे संते महत्वईणं कुदो पावं।।60।।

जो महाव्रतियों के प्रतिसमय घटिका यंत्र के जल के समान असंख्यात गुणित श्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा होती रहती है तब उनके पाप कैसे संभव है? अर्थात् कथमपि उनके पाप का बंध नहीं हो सकता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये हैबंध के कारण हैं न कि अणुव्रत, महाव्रत आदि। ये व्रत तो मोक्ष के कारणभूत जो रत्नत्रय उसके अन्तर्गत हैं।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिःस्थलैः अष्टत्रिंशत्सूत्रैः लेश्यमार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिविधाशुभलेश्यासु अल्पबहुत्वसूचकपरत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिदशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तेजःपद्मलेश्ययोः अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''तेउ'' इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यायां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''सुक्क'' इत्यादिविंशतिसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति कृष्णाद्यशुभत्रिकलेश्यासु गुणस्थानापेक्षयाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।२९०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।२९१।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९२।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।२९३।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।२९४।।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में अड़तीस सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नामका दसवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार की अशुभ लेश्याओं सहित जीवों में अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र है। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पीत और पद्मलेश्या वाले जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''तेउ'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में शुक्ल लेश्या वाले जीवों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले ''सुक्क'' इत्यादि बीस सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका हुई।

अब कृष्ण आदि तीनों अशुभ लेश्याओं में गुणस्थान की अपेक्षा अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने हेतु दश सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणा के अनुवाद से कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।२९०।।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।२९१।।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९२।।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।२९३।।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिक-सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।२९४।।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९५।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९६।।

णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।२९७।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९८।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।२९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विशेषेण तु—असंयतसम्यग्दृष्टिस्थाने सर्वस्तोकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः अस्य हेतोः—अत्र मनुष्यकृष्णनीललेश्यासहितसंख्यातक्षायिकसम्यग्दृष्टिपरिग्रहोऽस्ति। एभ्यः उपशमसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, नारकेषु कृष्णनीललेश्यावत्सु पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्र-उपशमसम्यग्दृष्टीनामुपलंभात्।**

कापोतलेश्यायां उपशमसम्यग्दृष्टिभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातगुणाः, प्रथमपृथिव्यां संचितक्षायिकसम्यग्दृष्टिग्रहणात्। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। एभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः। एवं प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यावतामल्पबहुत्वकथनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९५।।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९६।।

केवल विशेषता यह है कि कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।२९७।।

कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९८।।

कापोतलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।२९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेष रूप से असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं। इसका हेतु यह है कि यहाँ कृष्ण और नील लेश्या सहित मनुष्य संख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का परिग्रह—ग्रहण किया गया है। इनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे होते हैं, कृष्ण-नील लेश्या सहित नारकियों में पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टियों का सद्भाव पाया जाता है।

कापोत लेश्या में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों से क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे अधिक होते हैं। क्योंकि यहाँ प्रथम नरक में संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का ग्रहण किया गया है। यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं।

संप्रति तेजःपद्मलेश्यावतामल्पबहुत्वकथनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।।३००।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३०१।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।३०२।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३०३।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३०४।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३०५।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३०६।।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मप्पाबहुअमोघं।।३०७।।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीनों अशुभ लेश्या वालों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए। अब पीत और पद्मलेश्या सहित जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं।।३००।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३०१।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।३०२।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३०३।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।३०४।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३०५।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३०६।।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**शुभद्विकलेश्ययोः सर्वस्तोकाः अप्रमत्तसंयताः। एभ्यः द्विगुणाः प्रमत्तसंयताः। एभ्यः संयतासंयताः असंख्यातगुणाः। एभ्यः सासादनाः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। कुतः? सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रराशिपरिग्रहात्। शेषाणि सूत्राणि सुगमानि सन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले तेजःपद्मलेश्ययोः अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

संप्रति शुक्ललेश्यायां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय विंशतिसूत्राण्यमवतार्यन्ते—

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।३०८।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३०९।।

खवा संखेज्जगुणा।।३१०।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३११।।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव।।३१२।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च असंखेज्जगुणा।।३१३।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।३१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों शुभ लेश्याओं में अप्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या सबसे कम है। इनसे दोगुने अधिक प्रमत्तसंयत हैं, इनसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। क्यों ? क्योंकि सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग की देवराशि को यहाँ ग्रहण किया जाता है। शेष सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पीत और पद्मलेश्यायुक्त जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ल लेश्या में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले बीस सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्यावालों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।३०८।।

शुक्ललेश्यावालों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३०९।।

शुक्ललेश्यावालों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।३१०।।

शुक्ललेश्यावालों में क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३११।।

शुक्ललेश्यावालों में सयोगिकेवली प्रवेश की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३१२।।

शुक्ललेश्यावालों में सयोगिकेवली संचयकाल की अपेक्षाअसंख्यातगुणित है।।३१३।।

शुक्ललेश्यावालों में सयोगिकेवली जिनों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३१४।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३१५।।
संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।३१६।।
सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३१७।।
सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३१८।।
मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३१९।।
असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३२०।।
असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।३२१।।
खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३२२।।
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३२३।।
संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं।।३२४।।

शुक्ललेश्यावालों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३१५।।

शुक्ललेश्यावालों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।३१६।।

शुक्ललेश्यावालों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३१७।।

शुक्ललेश्यावालों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।३१८।।

शुक्ललेश्यावालों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३१९।।

शुक्ललेश्यावालों में मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है।।३२०।।

शुक्ललेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।३२१।।

शुक्ललेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३२२।।

शुक्ललेश्यावालों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।३२३।।

शुक्ललेश्यावालों में संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३२४।।

एवं तिसु अद्धासु।।३२५।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।३२६।।

खवा संखेज्जगुणा।।३२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। त्रिषु गुणस्थानेषु उपशामकाः तुल्याः स्तोकाश्च। उपशान्तकषायाः चतुःपंचाशत्प्रमाणाः। क्षपकाः अष्टोत्तरशतप्रमाणाः सन्ति। अस्यां शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्टिभ्यः असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, अत्र आरणाच्युतस्वर्गराशेः प्रधानत्वात्। शेषाणि सूत्राणि सुगमानि सन्ति। उक्तं चान्यत्रापि—''शुक्ललेश्यानां सर्वतस्तोकाः उपशमकाः ११९६। क्षपकाः संख्येयगुणाः २९९०। सयोगिकेवलिनः संख्येयगुणाः ८९८५०२। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः २९६९९१०३। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ५९३९८२०६। संयतासंयताः संख्येयगुणाः[1] तिर्यग्मनुष्यापेक्षया[2] इत्यादि।''**

एवं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यायां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन विंशतिसूत्राणि गतानि।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार शुक्ललेश्यावालों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पबहुत्व है।।३२५।।

उक्त गुणस्थानों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।३२६।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।३२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। तीनों गुणस्थानों में उपशामक महामुनि एक समान और सबसे कम हैं। उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या चौवन प्रमाण हैं। क्षपकश्रेणी वाले महामुनि एक सौ आठ संख्या प्रमाण हैं। इस शुक्ल लेश्या में मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं। क्योंकि आरण और अच्युत स्वर्ग की राशि यहाँ प्रधान है। शेष सूत्र सुगम हैं।

अन्यत्र भी कहा है—शुक्ललेश्या वाले जीवों में उपशामक जीव सबसे कम हैं उनकी संख्या ग्यारह सौ छियानवे (११९६) है। क्षपकों की संख्या उससे संख्यातगुणी है, उनतीस सौ नब्बे (२९९०) प्रमाण है। सयोगिकेवली उनसे संख्यातगुणे हैं, आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (८,९८,५०२) प्रमाण है। अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं, उनकी संख्या दो करोड़ छ्यानवे हजार निन्यानवे हजार एक सौ तीन (२,९६,९९,१०३) प्रमाण है। प्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं उनकी संख्या पाँच करोड़ तिरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह (५,९३,९८,२०६) प्रमाण है। संयतासंयत जीव तिर्यंच और मनुष्यगति की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।

इस तरह से तृतीय स्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करनेवाले बीस सूत्र पूर्ण हुए।

अर्थात् षट्खण्डागम की धवला टीकानुसार संयतासंयतों की संख्या असंख्यातगुणित है और तत्त्वार्थवृत्ति के अनुसार संख्यातगुणित है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में लेश्यामार्गणा नामका दशवां अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. षट्खण्डागमे असंख्येयगुणाः सन्ति। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अत्र स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां भव्यमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति भव्यमार्गणायां गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठी जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।।३२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र अल्पबहुत्वं ओघवत् अन्यूनाधिकं वक्तव्यं। किंच—द्वितीयादि-अयोगिकेवलिपर्यंतानि गुणस्थानानि भव्यानामेव भवन्ति। एवं प्रथमस्थले भव्यानामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।**

अभव्यानामल्पबहुत्वकथनाय सूत्रमवतरति—

अभवसिद्धिएसु अप्पाबहुअं णत्थि।।३२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकपदत्वात्। अस्यायमर्थः अभव्यजीवानां एकमेव मिथ्यात्वगुणस्थानं वर्तते। ते कदाचित् अपि भव्या सम्यग्दर्शनयोग्याः मोक्षं गंतुं योग्याः न भवन्तीति। यद्यपि शक्त्यपेक्षया तेषां केवलज्ञानं विद्यते किन्तु तस्य क्वचिदपिकाले व्यक्तिर्न भविष्यति इति। एवं द्वितीयस्थले अभव्यानामल्प-**

अथ भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ

यहाँ दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ हो रहा है।

अब भव्यमार्गणा में गुणस्थान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवों का अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर गुणस्थान सम्बन्धी अल्पबहुत्व न्यूनता और अधिकता से रहित अर्थात् तत्प्रमाण ही कहना चाहिए, क्योंकि द्वितीय गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त गुणस्थान भव्य जीवों के ही होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्य जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्धों में अल्पबहुत्व नहीं है।।३२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि अभव्य जीवों के एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है। वे कभी भी भव्य बनकर सम्यग्दर्शन के योग्य अथवा मोक्ष जाने के योग्य नहीं होते हैं। यद्यपि शक्ति की अपेक्षा उनमें भी केवलज्ञान विद्यमान रहता है किन्तु वह केवलज्ञान उनके कभी भी प्रगट

बहुत्वकथनेन एकं सूत्रं गतम्।

इति षट्खण्डागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

नहीं होगा ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में भव्यमार्गणा नामका ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

परमात्मा की उपासना से आत्मा भी परमात्मा बन जाता है

सिद्धज्योतिरतीव निर्मलतरज्ञानैक मूर्ति स्फुरद्-
वर्तिर्दीपमिवोपसेव्य लभते योगी स्थिरं तत्पदम्।
सद्बुध्याभ विकल्पजालरहित स्तद्रूपतामापतं-
स्तादृग्जायत एव देवविनुतस्त्रैलोक्यचूड़ामणिः।।1।।
यत्सूक्ष्मं च महच्च शून्यमपि यन्नो शून्यमुत्पद्यते,
नश्यत्येव च नित्यमेव च तथा नास्त्येव चास्त्येव च।
एकं यद्यदनेकमेव तदपि प्राप्तं प्रतीतिं दृढ़ां,
सिद्धंज्योतिरमूर्ति चित्सुखमयं केनापि तल्लक्ष्यते।।2।।

अर्थ—जिस प्रकार बत्ती दीपक की सेवा करके उस पद को प्राप्त कर लेती है अर्थात् दीपक स्वरूप परिणम जाती है, उसी प्रकार अत्यन्त निर्मल ज्ञानरूप असाधारण मूर्तिस्वरूप सिद्धज्योति की आराधना करके योगी भी स्वयं उसके स्थिर पद (सिद्धपद) को प्रप्त कर लेता है अथवा वह सम्यग्ज्ञान के द्वारा विकल्पसमूह से रहित होता हुआ सिद्धस्वरूप को प्राप्त होकर ऐसा हो जाता है कि तीनों लोक के चूड़ामणि रत्न के समान उसको देव भी नमस्कार करते हैं।

जो सिद्धज्योति सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है, शून्य भी है और परिपूर्ण भी है, उत्पाद-विनाशशाली भी है और नित्य भी है, सद्भावरूप भी है और अभावरूप भी है तथाएक भी है और अनेक भी है, ऐसी वह दृढ़ प्रतीति को प्राप्त हुई अमूर्तिक, चेतन एवं सुखस्वरूप सिद्धज्योति किसी विरले ही योगी पुरुष के द्वारा देखी जाती है।

—आचार्य श्री पद्मनंदि

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ चतुःस्थलैः पंचविंशतिसूत्रैः द्वादशोऽधिकारः सम्यक्त्वनामा प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि द्वादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''वेदग'' इत्यादि पंचसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले उपशम-सम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन'' उवसम'' इत्यादि सप्तसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले सासादना-दीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय एकं सूत्रं इति समुदायपातनिका।

संप्रति सामान्यसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वेषु अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो।।३३०।।

खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।३३१।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३३२।।

खवा संखेज्जगुणा।।३३३।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में पच्चीस सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्व नामका बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व कहने वाले ''वेदग'' इत्यादि पांच सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''उवसम'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि आदिकों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सामान्यसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व सहित जीवों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु बारह सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टि जीवों में अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियों के समान है।।३३०।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।३३१।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३३२।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।३३३।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३३४।।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।।३३५।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।३३६।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।३३७।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३३८।।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा।।३३९।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३४०।।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे खइयसम्मत्तस्स भेदो णत्थि।।३४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सम्यक्त्वमार्गणायां सम्यग्दृष्टिषु अवधिज्ञानिवत् अल्पबहुत्वं अस्ति। विशेषेण तु—अत्र सयोगि-अयोगिगुणस्थाने अपि स्तः सम्यक्त्वसामान्यस्याधिकारात्। शेषसूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विशेषतया—संयतासंयताः संख्यातगुणाः, मनुष्यगतिं मुक्त्वा अन्यत्र-तिर्यग्गतौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयता-संयतानामभावात्।**

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३३४।।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३३५।।

सयोगिकेवलीजिन संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।३३६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३३७।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३३८।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३३९।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में संयतासंयतों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३४०।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यक्त्व का भेद नहीं है।।३४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यक्त्व मार्गणा में सम्यग्दृष्टियों में जिस प्रकार ज्ञानमार्गणा की अपेक्षा अवधिज्ञानियों का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहां पर भी कहना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दो गुणस्थानपद यहाँ पर होते हैं, क्योंकि यहाँ पर सम्यक्त्व सामान्य का अधिकार है। शेष सूत्रों का अर्थ सरल है। विशेष बात यह है कि संयतासंयत संख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्यगति

असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तसंयतेषु येन क्षायिकसम्यक्त्वस्य भेदो नास्ति, तेन नास्ति सम्यक्त्वस्याल्पबहुत्वं एकपदत्वात्।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वकथनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति वेदकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।।३४२।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३४३।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।३४४।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३४५।।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे वेदगसम्मत्तस्स भेदो णत्थि।।३४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र वेदकसम्यग्दृष्टिषु संयतासंयताः असंख्यातगुणाः, स्वयंभूरमणद्वीप-समुद्रस्थिततिर्यगपेक्षयैव ज्ञातव्याः भवद्भिः।**

एवं द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

को छोड़कर अन्यत्र तिर्यंचगति में क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों का अभाव है।

असंयत सम्यग्दृष्टि आदि अप्रमत्त पर्यन्त चारों गुणस्थानों में क्षायिकसम्यक्त्व की अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदक सम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टियों में अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं।।३४२।।

वेदकसम्यग्दृष्टियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३४३।।

वेदकसम्यग्दृष्टियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।३४४।।

वेदक सम्यग्दृष्टियों में संयतासंयतों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३४५।।

वेदकसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में वेदकसम्यक्त्व का भेद नहीं है।।३४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ वेदक सम्यग्दृष्टियों में संयतासंयत जीव असंख्यातगुणे हैं, स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में स्थित तिर्यंचों की अपेक्षा ही यह संख्या आपको जानना चाहिए।

संप्रति उपशमसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।३४७।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३४८।।

अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।३४९।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३५०।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।३५१।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३५२।।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे उवसमसम्मत्तस्स भेदो णत्थि।।३५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विशेषतया अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्तसंयताः द्विगुणाः सन्ति। शेषं पूर्ववद् ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सात सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टियों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।३४७।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३४८।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों में अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३४९।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३५०।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।३५१।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों में संयतासंयतों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३५२।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में उपशमसम्यक्त्व में अल्पबहुत्व नहीं है।।३५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेषरूप से अप्रमत्तगुणस्थानवर्तियों से प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती दोगुने हैं। शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टियों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रतिसम्यक्त्वमार्गणायां तद्विपरीतसासादनादीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति—

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं।।३५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेषां सासादनादीनां नास्त्यल्पबहुत्वं, विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात्। एवं चतुर्थस्थले सासादनादीनामल्पबहुत्वकथनेन एकं सूत्रं गतम्।**

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में उससे विपरीत सासादन आदि गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व बताने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व नहीं है।।३५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सासादन आदि तीनों गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व नहीं माना गया है, क्योंकि विपक्ष में एक-एक गुणस्थानरूप पद ही उनके पाया जाता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सासादन आदि गुणस्थानवर्तियों का अल्पबहुत्व बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नामका बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

क्या सारा जगत कुमार्ग से रहित हो सकता है?

जिनैरपि कृतं नैतत्सर्वज्ञैर्निः कुमार्गकम्।
जगत् किमुत शक्येत कर्तु मस्मद्विधैर्जनैः।।

जब सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव भी इस संसार को कुमार्ग से रहित नहीं कर सके तब फिर हमारे जैसे लोग कैसे कर सकते हैं?

—श्री रविषेणाचार्य

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिसूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते।

संप्रति संज्ञिमार्गणायां मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायपर्यन्तानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं।।३५५।।

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संज्ञिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां ओघवत् अल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं। केवलं तु—मिथ्यादृष्टीनां ओघमिति उक्ते अनंतगुणत्वं प्राप्नोति, इति तन्निराकरणार्थं 'असंख्यातगुणाः' इति उक्तं सूत्रे। अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः, यस्तु जगत्श्रेण्याः असंख्यातभागमात्रं असंख्यात-जगच्छ्रेणिप्रमाणमस्ति।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति असंज्ञिनां अल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

असण्णीसु णत्थि अप्पाबहुअं।।३५७।।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब संज्ञीमार्गणा में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तियों तक का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

संज्ञिमार्गणा के अनुवाद से संज्ञियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवों का अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३५५।।

विशेषता यह है कि संज्ञियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संज्ञी जीवों में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तियों तक का अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान जानना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि उपर्युक्त सूत्र में "ओघ" इस पद के कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियों से संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों के अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरण के लिए इस सूत्र में 'असंख्यातगुणित है' ऐसा पद कहा है।

यहाँ पर गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है, जो जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है—

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीवों में अल्पबहुत्व नहीं है।।३५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियादि-अमनस्कपंचेन्द्रियपर्यन्तानां असंज्ञिजीवानां मिथ्यात्वमेकमेव गुणस्थानमस्ति अत एव अल्पबहुत्वं नास्तीति।**

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिनां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय आदि से लेकर अमनस्क—मनरहित असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है इसलिए वहाँ कोई अल्पबहुत्व नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में संज्ञीमार्गणा नामका तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

सरस्वती वंदना

मतेः सूतेर्वीजं सृजति मनसश्चक्षुरपरं।
यदाश्रित्यात्मायं भवति निखिलयेज्ञविषयः।।
विवर्तैरत्यंतैर्भरित भुवनाभोगविभवैः।
स्फुरत्तत्वं ज्योतिस्तदिह जयतादक्षरमयम्।।

अर्थ—जिसका अभ्यास करके यह आत्मा एक अद्वितीय चक्षु—ज्ञाननेत्र को प्राप्त कर लेता है जिससे यह संपूर्ण लोक—अलोक को जानने वाला हो जाता है, जिस ज्योति में समस्त जीव, अजीव आदि तत्त्व तीनों लोकों में विस्तार से पाई जाने वाली अपनी अनन्त पर्यायों के साथ प्रकाशित हो रहे हैं तथा जो विशेष बुद्धि की उत्पत्ति का एकमात्र बीज है, वह अक्षरमय ज्योति-द्वादशांगमय श्रुतज्ञान इस पृथ्वीतल पर सदैव जयशील होवे अर्थात् पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट जिनमुखोद्भूत सरस्वती माता को मेरा बारम्बार नमस्कार होवे।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिःस्थलैः पंचविंशतिसूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारमार्गणायां उपशमादि-अधस्तनप्रमत्तसंयतानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि अष्टसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले आहारकाणां संयतासंयतादि-क्षपकपर्यंतानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिनवसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले अनाहारकाणां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''अणाहारएसु'' इत्यादि अष्टसूत्राणि इति समुदायपातनिका।

संप्रति आहारमार्गणायां उपशामकादीनामल्पबहुत्वकथनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।३५८।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३५९।।

खवा संखेज्जगुणा।।३६०।।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।।३६१।।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव।।३६२।।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।।३६३।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में पच्चीस सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नामका चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारमार्गणा में उपशम आदि से लेकर नीचे प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्तियों तक का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में आहारकों में संयतासंयत से लेकर क्षपकपर्यन्त का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''संजदासंजदा'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में अनाहारकों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले ''आहारएसु'' इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम आहारमार्गणा में उपशामक आदिकों का अल्पबहुत्व कथन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारकों में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।३५८।।

आहारकों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३५९।।

आहारकों में उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।३६०।।

आहारकों में क्षीणकषायवीतछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३६१।।

आहारकों में सयोगिकेवली जिन प्रवेश की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं।।३६२।।

सयोगिकेवली जिन संचयकाल की अपेक्षा संख्यातगुणित हैं।।३६३।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।३६४।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।३६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आहारमार्गणायां त्रिषु अपूर्वादिगुणस्थानेषु उपशामकाः प्रवेशापेक्षया चतुःपंचाशत्प्रमाणाः। उपशान्तकषायाः तावन्त एव। क्षपकाः अष्टोत्तरशतप्रमाणाः, क्षीणकषायाः तावन्त एव। शेषाणि सूत्राणि सुगमानि सन्ति।

एवं प्रथमस्थले आहारकाणामल्पबहुत्वसूचकत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

अधुना संयतासंयतादीनामाहारकाणामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते—

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।३६६।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३६७।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३६८।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३६९।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।३७०।।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं।।३७१।।

सयोगिकेवली जिनों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३६४।।

अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।३६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आहारमार्गणा में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक मुनि प्रवेश की अपेक्षा चौवन संख्या प्रमाण हैं। उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती भी उतने ही अर्थात् चौवन प्रमाण हैं। क्षपक मुनि एक सौ आठ प्रमाण हैं और क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तियों की संख्या भी उतनी ही अर्थात् एक सौ आठ प्रमाण है। शेष सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का अल्पबहुत्व सूचित करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत आदि गुणस्थानवर्ती आहारक जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतुनौ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारकों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।३६६।।

आहारकों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३६७।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।३६८।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३६९।।

असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।३७०।।

आहारकों में असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३७१।।

एवं तिसु अद्धासु।।३७२।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।३७३।।

खवा संखेज्जगुणा।।३७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संयतासंयताः असंख्यातगुणाः अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः। शेषाणि सूत्राणि सुगमानि सन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले आहारकाणां संयतासंयतादीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन नव सूत्राणि गतानि। अनाहारकेषु गुणस्थानापेक्षया अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।।३७५।।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा।।३७६।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३७७।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३७८।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।३७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनाहारकेषु सर्वस्तोकाः सजोगिकेवलिनः, षष्टिप्रमाणत्वात्। अयोगिकेवलिनः**

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व गुणस्थान के समान है।।३७२।।

उक्त गुणस्थानों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।३७३।।

उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।३७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में आहारकों में संयतासंयत आदि गुणस्थानवर्ती जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारकों में गुणस्थानों की अपेक्षा अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अनाहारकों में सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं।।३७५।।

अनाहारकों में अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं।।३७६।।

अनाहारकों में अयोगिकेवली जिनों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३७७।।

अनाहारकों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३७८।।

अनाहारकों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।३७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अनाहारकों में सबसे कम सयोगिकेवली भगवान की संख्या साठ है।

द्विन्यूनषट्शतप्रमाणाः। एभ्यः असंख्यातगुणाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्येयभागः, असंख्यातानि पल्योपमप्रथमवर्गमूलानि। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्रगुणकारः, आवलिकायाः असंख्यातभागः। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, अत्र गुणकारः, अभव्यजीवैरनन्तगुणः, सिद्धैरपि अनंतगुणः अनन्तानि सर्वजीवराशिप्रथमवर्गमूलानि।

संप्रति चतुर्थगुणस्थाने सम्यक्त्वापेक्षयाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।३८०।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।३८१।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंयतसम्यग्दृष्टिनाम चतुर्थगुणस्थाने अनाहारावस्थायां सर्वस्तोकाः उपशमसम्यग्दृष्टयः संख्यातजीवप्रमाणत्वात्। एभ्यः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः संख्यातसमयाः। एभ्यः वेदकसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः, यस्तु पल्योपमस्य असंख्यातप्रथमवर्गमूलप्रमाणमस्ति।**

एवं द्वितीयस्थले अनाहारकजीवानामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इति षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे पंचमग्रंथे अल्पबहुत्वानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अयोगिकेवली भगवंतों की संख्या दो कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे प्रमाण है। इनसे असंख्यातगुणे सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या है। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है जो पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। मिथ्यादृष्टि अनंतगुणे हैं, यहाँ गुणकार अभव्यजीवों से अनंतगुणित है सिद्धों से भी अनंतगुणित है जो सर्वजीवराशि के अनंत प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।

अब चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्त्व की अपेक्षा अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतुतीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अनाहारकों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान मेंउपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।३८०।।

अनाहारकों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणितहैं।३८१।।

अनाहारकों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।३८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंयतसम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान में अनाहारक अवस्था में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि अनाहारक उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण संख्यात है। इनसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार संख्यातसमयप्रमाण है। इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, जो पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पंचम ग्रंथ के अल्पबहुत्वानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में आहारमार्गणा नामका चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अधुना उपसंहारः क्रियते—

प्रथमतः श्रीपुष्पदन्ताचार्येण सप्तमे सूत्रे सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमनामभिः अष्टौ अनुयोगद्वाराणि कथितानि।

एष्वपि तावत् सत्प्ररूपणायां सप्तसप्तत्यधिकशतसूत्राणि, द्रव्यप्रमाणानुगमे द्विनवत्यधिशतसूत्राणि, क्षेत्रानुगमे द्विनवतिसूत्राणि, स्पर्शनानुगमे पंचाशीत्यधिकशतसूत्राणि, कालानुगमे द्विचत्वारिंशदधिक-त्रिशतसूत्राणि, अन्तरानुगमे सप्तनवत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, भावानुगमे त्रिनवतिसूत्राणि, अल्पबहुत्वानुगमे च द्व्यशीत्यधिकत्रिशतसूत्राणि एवं एकसहस्र-अष्टशतषष्टिसूत्रेषु इमान्यष्टौ अनुयोगद्वाराणि सन्ति।

एभिरष्टानुयोगद्वारैः अस्मिन् षट्खंडागमस्य प्रथमखंडे श्रीमत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्याभ्यां ओघेन आदेशेन च चतुर्दशगुणस्थानानां चतुर्दशमार्गणानां अपि वर्णना कृता। श्रीवीरसेनाचार्येणापि अस्य ग्रंथस्य प्राकृतसंस्कृतमिश्रिता धवलाख्या टीका महता विस्तरेण विरचिता।

तत्त्वार्थसूत्रमहाशास्त्रे संस्कृतसूत्राद्यग्रन्थेऽपि श्रीमदुमास्वामिसूरिणा एतैरेवाष्टानुयोगद्वारैः सम्यक्त्वस्याधि-गमोपायः निरूपितः। अथवा एभिरेव जीवादिसप्ततत्त्वानां रत्नत्रयाणां चाधिगमोपायः कथ्यते। तत्र अष्टमसूत्रस्योपरि श्रीपूज्यपाददेवेन श्रीश्रुतसागरसूरिणा चापि बृहती टीका रचिता।

पुरा श्रीमद्धरसेनाचार्यवर्येण आग्रायणीयपूर्वस्य कतिपयांशाः अध्यापिताः द्वाभ्यां महामुनीभ्यां। श्री विबुधश्रीधरकृतश्रुतावतारे कथितमस्ति यत्—अत्रैव अंकुलेश्वर ग्रामे अस्यामेव गुहायां (लघु अपवरके)

अब इस पंचम ग्रंथ का उपसंहार किया जा रहा है—

श्रीमान् पुष्पदन्ताचार्य स्वामी ने सर्वप्रथम सप्तम सूत्र में सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नाम वाले आठ अनुयोगद्वार कहे हैं।

इन अनुयोगद्वारों में भी प्रथम सत्प्ररूपणा में एक सौ सतत्तर सूत्र हैं, द्रव्यप्रमाणानुगम में एक सौ बानवे सूत्र हैं, क्षेत्रानुगम में बानवे सूत्र हैं, स्पर्शनानुगम में एक सौ पिचासी सूत्र हैं, कालानुगम में तीन सौ बयालीस सूत्र हैं, अन्तरानुगम में तीन सौ सत्तानवे सूत्र हैं, भावानुगम में तिरानवे सूत्र हैं और अल्पबहुत्वानुगम में तीन सौ बयासी सूत्र हैं। इस प्रकार एक हजार आठ सौ साठ (१,८६०) सूत्रों में ये आठ अनुयोगद्वार कहे गये हैं।

इन आठ अनुयोगद्वारों के द्वारा इस षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम भाग खण्ड में श्री पुष्पदंत और भूतबली दोनों आचार्यों ने ओघ-गुणस्थान और आदेश-मार्गणा के द्वारा चौदह गुणस्थान और चौदह मार्गणाओं का भी वर्णन किया है। श्री वीरसेनाचार्य ने भी इस ग्रंथ की प्राकृत और संस्कृत मिश्रित धवला नामकी टीका बहुत विस्तार से रची है।

संस्कृत सूत्र के आद्य ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र में भी श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी इन्हीं आठ अनुयोग द्वारों के द्वारा सम्यक्त्व के अधिगम का उपाय निरूपित किया है अथवा इनके द्वारा ही जीवादि सात तत्वों का एवं रत्नत्रय के ज्ञान का उपाय कहा है। उनमें से आठवें सूत्र के ऊपर श्री पूज्यपाद आचार्यदेव ने तथा श्रीश्रुतसागरसूरि ने भी वृहत् टीका रची है।

पहले उन दोनों—श्रीपुष्पदंत और भूतबली मुनियों को श्री धरसेनाचार्य ने आग्रायणीयपूर्व के कतिपय अंशों का अध्ययन कराया था। श्रीविबुध श्रीधर द्वारा रचित श्रुतावतार में कहा है कि—

स्थित्वा आभ्यां श्रीमत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्याभ्यां षट्खण्डागममहाग्रन्थराजः लिपिबद्धः कृतः।

वीराब्दे एकविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे शरद्पूर्णिमातिथौ अस्य षट्खण्डागमग्रन्थस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीका प्रारब्धा आसीत्। दक्षिणस्थमांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रयात्रायाः मध्येऽपि मम लेखनकार्यं भवदस्ति।

अथाद्ये जंबूद्वीपस्य भरतक्षेत्रस्यार्यखंडे भारतदेशे दक्षिणप्रदेशात् उत्तरप्रदेशस्य मंगलविहारकाले गुर्जरप्रदेशे पावागढ़सिद्धक्षेत्रयात्रायां मध्ये अंकलेश्वरग्रामे वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे अद्य मार्गशीर्षकृष्णासप्तम्यां स्वात्मनि पूर्णश्रुतज्ञानप्रात्यर्थं अल्पबहुत्वानुगमनामानियोगद्वारं मया पूर्यते।

षट्षष्टि-दिवस अधिकैकवर्षपर्यन्तं लिखन्त्या मया इदानीं एकसहस्र-अष्टशतषष्टिसूत्रैः एतान्यष्टौ अनुयोगद्वाराणि पूरयन्त्या महान् आनन्दोऽनुभूयते।

द्वादशांगधरैर्युक्तान्, द्वादशगणवेष्टितान्।
द्वादशांगध्वनिं चापि, नुमो भावश्रुताप्तये।।१।।

अस्मिन् षट्खण्डागम ग्रंथे प्रथम खण्डे द्विसहस्रत्रिंशतपंचसप्ततिसूत्राणि, द्वितीयखण्डे चतुर्नवत्यधिक पंचदशशतसूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिकत्रिंशतसूत्राणि, चतुर्थखण्डे पंचविंशत्यधिक पंचदशशतसूत्राणि, पंचमखण्डे त्रयोविंशत्यधिकैकसहस्राणि सूत्राणि वर्तन्ते, एवं पंचखण्ड सूत्राणां गणनाः—षट् सहस्राष्टशतैकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति। धवलाटीका समन्वितैतेभ्यः सूत्रेभ्यो नमो नमः।

यहीं अंकुलेश्वर ग्राम की इसी गुफा में स्थित होकर उन पुष्पदंत-भूतबली आचार्यों के द्वारा षट्खण्डागम महाग्रंथराज लिपिबद्ध किया गया।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ इक्कीस में (सन् १९९५) शरदपूर्णिमा के दिन इस षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका का लेखन मैंने (गणिनी ज्ञानमती) प्रारंभ किया था। दक्षिण भारत में स्थित मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की यात्रा के मध्य भी मेरा लेखनकार्य चलता रहा है।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में भारतदेश में दक्षिण प्रदेश से उत्तर प्रान्त की ओर मंगल विहार के काल में गुजरात प्रदेश के पावागढ़ नामक सिद्धक्षेत्र की यात्रा के मध्य अंकलेश्वर ग्राम में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस में मगशिर कृष्णा सप्तमी को अपनी आत्मा में भावश्रुतज्ञान प्राप्त करने हेतु अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार मेरे द्वारा पूर्ण किया जा रहा है।

एक वर्ष छ्यासठ दिवस पर्यन्त लेखन करके मैंने अब एक हजार आठ सौ साठ सूत्रों के द्वारा इन आठ अनुयोगद्वारों को पूर्ण किया है जिससे मुझे अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हो रही है।

श्लोकार्थ—**जो द्वादशांग को धारण करने वाले गणधर भगवन्तों के स्वामी हैं, द्वादशगण-समवसरण की बारह सभाओं से वेष्टित-समवसरण के मध्य विराजमान हैं उन तीर्थंकर भगवन्तों को और द्वादशांगरूप दिव्यध्वनि को भी भाव श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए नमस्कार करते हैं।।१।।**

इस षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पिचहत्तर (२३७५) सूत्र हैं, द्वितीय खण्ड में पन्द्रह सौ चौरानवे (१५९४) सूत्र हैं, तृतीय खण्ड में तीन सौ चौबीस (३२४) सूत्र हैं, चतुर्थ खण्ड में पाँच सौ पच्चीस (५२५) सूत्र हैं, पंचम खंड में एक हजार तेईस (१०२३) सूत्र हैं, इस प्रकार पाँचों खण्डों की कुल सूत्र संख्या छह हजार आठ सौ इकतालिस (६८४१) है। धवला टीका से समन्वित इन सभी सूत्रों के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है।

श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्याय नमः। श्रीमत्पुष्पदन्तसूरये नमः। श्रीमद्भूतबलिसूरये नमः। श्रीवीरसेनाचार्याय नमः।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे पंचमग्रंथे श्रीभूतबलि-सूरिविरचिताल्पबहुत्वानुगमनाम्नि अष्टमप्रकरणे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीका-प्रमुखानेकग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतिशताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीशांतिसागरः चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरः तस्य प्रथमपट्टाचार्यः श्रीवीरसागरः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां षष्ठो महाधिकारः समाप्तः।

।। इति शं भूयात् ।।

श्रीमान् भगवान धरसेनाचार्य महामुनि को मेरा नमस्कार है। श्रीमान् पुष्पदन्ताचार्य को मेरा नमस्कार है। श्रीमान् भूतबली आचार्य को मेरा नमस्कार है तथा श्री वीरसेनाचार्य को मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त एवं भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में पाँचवें ग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत अल्पबहुत्वानुगम नाम के अष्टम प्रकरण में श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर चारित्रचक्रवर्ती मुनिराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर मुनिराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में छठा महाधिकार समाप्त हुआ।

पाप बंध किनके नहीं है

पावागमदाराइं अणाइरूवट्ठियाइ जीवम्मि।
तत्थ सुहासवदार उग्घादेंतो कड सदोसो।।50।।
घडियाजलं व कम्मे अणुसमयमसंखगुणियसेढीए।
णिज्जरमणे संते वि महव्वईणं कुदो पावं।।60।।

जीव में पापास्रव द्वार अनादिकाल से स्थित हैं उनके रहते हुए जो जीव शुभास्रव के द्वार का उद्घाटन करता है अर्थात् शुभास्रव के कारणभूत कामों को करता है वह सदोष कैसे हो सकता है? अर्थात् वह निर्दोष है।

जब महाव्रतियों के प्रतिसमय घटिकायंत्र के जल के समान असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा होती रहती है तब उनके पाप कैसे संभव है? अर्थात् मुनियों के पाप का आस्रव नहीं होता है।

—जयधवला-श्री वीरसेन स्वामी

षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डान्तर्गतपंचमग्रन्थस्य प्रशस्तिः

कमलं शोभते रम्यं, सहस्रकूटमन्दिरे।
अष्टोत्तरशते पत्रे, पद्मस्थाः प्रतिमाः स्तुवे।।१।।

अस्ति जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे गुर्जरप्रदेशे अंकलेश्वरनाम्नि प्रसिद्धक्षेत्रे षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डान्तर्गतपंचमग्रन्थस्य सिद्धान्तचिंतामणिनामधेया टीका मया पूर्यते।

श्रीमद्भगवदन्तिमतीर्थंकरमहावीरस्वामिशासने श्रीगौतमस्वामिआदिबहूनामाचार्याणां परंपरायां श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे दिगम्बराचार्यमणिमालायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरो बभूव। अयमाचार्यदेवो वीरनिर्वाणसंवच्चत्वारिंशदधिकचतुर्विंशतिशततमे ज्येष्ठशुक्लात्रयोदश्यां ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशतचतुर्दशतमे[१] श्रीदेवन्द्रकीर्तिमुनिना क्षुल्लकदीक्षां गृहीत्वा वीराब्दे षट्चत्वारिंशदधिकचतुर्विंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशतविंशति[२] तमे कर्नाटकप्रदेशे येरनालग्रामे तेनैव गुरुदेवेन मुनिदीक्षामादाय मुनिश्रीशान्तिसागरो बभूव। पुनश्च महाराष्ट्रप्रदेशे समडोलीनामग्रामे वीराब्दे पंचाशदधिक चतुर्विंशतिशततमे आश्विनशुक्लैकादश्यां ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशतचतुर्विंशतितमे[३] चतुर्विधसंघैः प्रदत्तमाचार्यपदं समलंचकार। अस्मिन्नेव दिवसे श्रीगुरुदेवस्य प्रथमशिष्यः श्रीवीरसागरो दिगम्बरमुनिरजायत।

षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत पंचम ग्रंथ की प्रशस्ति

श्लोकार्थ — मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में निर्मित सहस्रकूट कमल मंदिर में जो सुंदर कमल शोभायमान हो रहा है, उस कमल की एक सौ आठ कलियों पर पद्मासन विराजमान एक हजार आठ प्रतिमाओं की मैं स्तुति करती हूँ।।१।।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में गुजरात प्रदेश के अंकलेश्वर नामक प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र में षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड के अन्तर्गत पंचम ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि नामकी टीका मेरे द्वारा पूर्ण की जा रही है।

श्रीमान् भगवान् अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के शासन में श्री गौतमस्वामी आदि अनेक आचार्यों की परम्परा में श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दस्वामी की परम्परा में सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण में दिगम्बर जैनाचार्यों की मणिमाला में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्रीशांतिसागर महाराज हुए हैं। उन्होंने वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ चालीस (२४४०) में ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी तिथि को ईसवी सन् उन्निस सौ चौदह (१९१४) में श्री देवेन्द्रकीर्ति मुनिराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण करके पुनः वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ छियालिस (२४४६) एवं ईसवी सन् उन्निस सौ बीस में कर्नाटक प्रान्त के येरनाल ग्राम में उन्हीं देवेन्द्रकीर्ति मुनिराज से मुनिदीक्षा धारणकर मुनि श्री शांतिसागर बने। उसके पश्चात् महाराष्ट्र प्रान्त के समडोली नामक ग्राम में वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ पचास (२४५०) में आश्विन शुक्ला एकादशी एवं ईसवी सन् उन्निस सौ चौबिस (१९२४) में चतुर्विध संघ के द्वारा मुनि श्री शांतिसागर जी को आचार्यपद से अलंकृत किया गया। उसी दिन गुरुदेव ने अपने प्रथम शिष्य वीरसागर जी को मुनिदीक्षा प्रदान की। पुनः वे मुनि श्री वीरसागर महाराज जयपुर महानगर के खानिया क्षेत्र में वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ इक्यासी (२४८१) में द्वितीय भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को

---

१. ईस्वी सन् १९१४। २. सन् १९२०। ३. सन् १९२४।

पुनः स्वगुरुवर्येण प्रेषितमाचार्यपदं जयपुरमहानगरे खानियाक्षेत्रे वीराब्दे एकाशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे द्वितीय भाद्रपदशुक्लासप्तम्यां ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशत पंचपंचाशत्तमे[४] चतुर्विधसंघैः आचार्यपदेनालंकृतो बभूव।

अनंतरमाचार्यश्रीवीरसागरगुरोः समाधिमरणानन्तरमस्यैव गुरुदेवस्य प्रथमशिष्यो मुनिश्रीशिवसागरो वीराब्दे त्र्यशीत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशतसप्तपञ्चाशत्तमे[५] आचार्यपदं समवाप।

तत्पश्चादस्य समाधिं गते श्रीधर्मसागरो मुनिः वीराब्दे पंचनवत्यधिकचतुर्विंशतिशततमे फाल्गुन-शुक्लाष्टम्यां ख्रिष्टाब्दे एकोनसप्तत्यधिक-एकोनविंशतिशततमे[६] श्रीमहावीरजी अतिशयक्षेत्रे शांतिवीरनगरे आचार्यपदं विभूषयामास।

तदनन्तरं अस्य समाधिं गते उपाध्यायो मुनि श्री अजितसागरः वीराब्दे त्रयोदशाधिकपंचविंशतिशततमे ज्येष्ठ शुक्लादशम्यां ख्रिष्टाब्दे एकोनविंशतिशतसप्ताशीति तमे[७] आचार्यपदं विभूषयति स्म।

वैशाखशुक्लापूर्णिमायामस्य समाधिं गते चतुर्विधसंघसम्मतिभिः वीराब्दे षोडशोत्तरपंचविंशतिशततमे आषाढ़-कृष्णाद्वितीयायां ख्रिष्टाब्दे नवत्यधिक-एकोनविंशतिशततमे[८] श्रीश्रेयांसागराचार्यकल्पायाचार्यपदं प्रायच्छन्। अस्याचार्यस्य समाधिं गते वीराब्देऽष्टादशोत्तरपंचविंशतिशततमे फाल्गुनकृष्णाचतुर्थ्यां ख्रिष्टाब्दे

ईसवी सन् उन्निस सौ पचपन (१९५५) में अपने गुरुवर्य द्वारा (कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र से) प्रेषित आचार्यपद से समाज द्वारा अलंकृत किये गये अर्थात् सन् १९५५ से आचार्य श्री वीरसागर महाराज प्रथम पट्टाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए।

अनंतर आचार्य श्री वीरसागर महाराज के समाधिमरण के पश्चात् उनके प्रथम शिष्य मुनि श्री शिवसागर जी को वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ तिरासी (२४८३) एवं ईसवी सन् उन्निस सौ सत्तावन (१९५७) में चतुर्विध संघ द्वारा आचार्य पद प्रदान किया गया अर्थात् इस परम्परा में आचार्य श्री शिवसागर महाराज द्वितीय पट्टाचार्य बने।

पुनः वीर निर्वाण संवत् चौबीस सौ पन्चानवे (२४९५) में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन ईसवी सन् उन्निस सौ उनहत्तर (१९६९) में आचार्य श्री शिवसागर महाराज की समाधि के पश्चात् श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्र पर शांतिवीरनगर नामक तीर्थ परिसर में श्रीधर्मसागर मुनिराज आचार्यपद से विभूषित किये गये अर्थात् आचार्य श्री धर्मसागर महाराज तृतीय पट्टाचार्य हुए।

तदनंतर वीर निर्वाण संवत् पच्चिस सौ तेरह (२५१३) में ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन सन् उन्निस सौ सत्तासी (१९८७) में इनकी (आचार्य श्री धर्मसागर जी की) समाधि के बाद उपाध्याय मुनि श्री अजितसागर जी आचार्यपद से विभूषित हुए अर्थात् आचार्य श्री अजितसागर महाराज चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी की आचार्यपरम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य कहलाये।

पुनः वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (वीर नि. सं. २५१६ में) के दिन इनकी (आचार्य श्री अजितसागर जी की) समाधि के पश्चात् आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन ईसवी सन् उन्निस सौ नब्बे (१९९०) में आचार्यकल्प श्री श्रेयांससागर महाराज को चतुर्विध संघ की सम्मति से आचार्यपद प्रदान किया गया अर्थात् आचार्यश्री श्रेयांससागर महाराज इस परम्परा के पंचम पट्टाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

उन आचार्यश्री श्रेयांससागर महाराज की वीर निर्वाण संवत् पच्चिस सौ अठारह (२५१८) में फाल्गुन

---

१. सन् १९५५। २. सन् १९५७। ३. सन् १९६९। ४. सन् १९८७। ५. सन् १९९०।

द्विनवत्यधिकैकोन-विंशतिशततमे[1] उपाध्याय श्रीअभिनंदनसागरमुनिः चतुर्विधसंघसंमत्या आचार्यपदं विभूषयामास।

वर्तमानकालेऽयमाचार्यः श्रीचारित्रचक्रवर्ति-आचार्यपरम्परायां षष्ठपट्टाचार्योऽस्ति। अस्य श्रीशांति-सागराचार्यस्य प्रथमपट्टाधीशो ममार्यिकादीक्षागुरुः श्रीवीरसागराचार्यः। एषां पट्टाधीशपरंपरायां पंचम-पट्टाधीशाचार्यः श्रीश्रेयांससागरस्तस्य प्रेरणया विंशति फुट-उत्तुंगश्रीमुनिसुव्रतनाथ प्रतिमा श्री भरत-चक्रवर्ति-श्रीबाहुबलि-श्रीपद्म-श्रीशैल-प्रतिमा-चतुर्विंशतितीर्थंकरप्रतिमाः सहस्रकूटस्य सहस्रजिनबिम्बानि च निर्मापितानि। अस्माकं सानिध्ये तेषां प्रतिष्ठापि ज्येष्ठमासेऽत्र[2] मांगीतुंगी तीर्थक्षेत्रे संजाता। अत्र प्रतिष्ठामहोत्सवे महाराष्ट्रस्य मुख्यमंत्रीश्रीमनोहरजोशीमहानुभावः समागत्य धर्मप्रभावनामवलोक्यात्यर्थं प्रहृष्टो बभूव। एतासां सहस्रजिनप्रतिमानां विराजमानकरणार्थं मया अष्टोत्तरशतपत्राणां कमलं चिन्तितं। मम भावनानुसारेण जंबूद्वीपपीठाधीशक्षुल्लक श्रीमोतीसागरेण ब्रह्मचारिणा कर्मयोगी श्री रवीन्द्रकुमारेण च भक्तगणैरपि मिलित्वा भव्यकमलं निर्माप्य आश्विनमासे वेदीप्रतिष्ठापूर्वकं अष्टोत्तरशतदलेषु सहस्राष्ट जिनप्रतिमाः स्थापिताः। तत्रस्था आर्यिकाश्रेयांसमती ससंघा वयमपि च अत्यर्थं प्रमोदं अवाप्नुमः।

मया तत्रैव वर्षायोगे शरत्पूर्णायां च मांगीतुंगीपर्वतस्य मध्ये (१०८) अष्टोत्तरशतफुटोत्तुंग श्रीऋषभदेव-जिनप्रतिमानिर्मापणार्थं उद्घोषणा कृता। तदानीं सर्वैः भाक्तिकजनैः अत्यर्थं प्रसन्नतानुभूयते स्म।

कृष्णा चतुर्थी के दिन ईसवी सन् उन्निस सौ बानवे (१९९२) में उपाध्याय श्री अभिनंदनसागर मुनिराज को चतुर्विध संघ के सानिध्य में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया गया।

वर्तमान समय में ये आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज श्री चारित्रचक्रवर्ती परम्परा के छठे पट्टाचार्य के रूप में चतुर्विध संघ का संचालन कर रहे हैं। उन श्री शांतिसागराचार्य के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज मेरे आर्यिका दीक्षा प्रदाता गुरु हैं। उनकी पट्टाधीश परम्परा में पंचम पट्टाधीश आचार्य श्री श्रेयांससागर जी महाराज हुए, जिनकी प्रेरणा से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में बीस फुट उत्तुंग भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ की खड्गासन प्रतिमा, श्री भरत भगवान, श्री बाहुबली भगवान, श्री पदम (भगवान राम), श्री शैल (हनुमान) की प्रतिमा, चौबीस तीर्थंकर भगवान की एवं सहस्रकूट की एक हजार आठ जिनप्रतिमाएँ निर्मित हुई हैं। इन सभी प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी ज्येष्ठ मास में मेरे सानिध्य में सम्पन्न हो चुकी है। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी ने पधारकर धर्मप्रभावना देखकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया।

उन प्रतिमाओं के विराजमान करने हेतु मैंने एक सौ आठ पत्रों वाला कमल निर्माण करने का चिन्तन किया। मेरी भावना के अनुसार जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर और कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमार ने अनेक भक्तों के साथ मिलकर भव्यकमल का निर्माण करके वेदीप्रतिष्ठापूर्वक एक सौ आठ दलों पर एक हजार आठ जिनप्रतिमाएं स्थापित कीं। वहाँ विराजमान संघ सहित आर्यिका श्रेयांसमती एवं आर्यिका चंदनामती आदि के साथ हम सभी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए।

मैंने वहीं वर्षायोग में शरदपूर्णिमा के दिन मांगीतुंगी पर्वत के ऊपर एक सौ आठ फुट ऊँची श्री ऋषभदेव जिनप्रतिमा निर्माण करने के लिए घोषित किया। उस समय उद्घोषणा से समस्त उपस्थित भाक्तिकजनों ने अत्यर्थ प्रसन्नता का अनुभव किया।

---

१. सन् १९९२। २. वीर नि. सं. २५२२ (सन् १९९६)।

तत्रैव वर्षायोगे वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे भाद्रपदशुक्लातृतीयायां ख्रिष्टाब्दे सितम्बरमासे पंचदश दिनाँके (१५-९-१९९६) मया एषः पञ्चमो ग्रन्थः प्रारब्धः। अस्य ग्रन्थराजस्य सिद्धान्तचिंतामणि-टीकां कर्तुं प्रारभ्य वर्षायोगं समाप्य तत्रस्यात् च विहृत्य मार्गे ग्रामे-ग्रामे धर्मप्रभावनां कुर्वन्त्या मार्गशीर्ष कृष्णाप्रतिपत्तिथौ महुवानामातिशयक्षेत्रमागत्य श्रीपार्श्वनाथतीर्थंकरप्रतिमानां वन्दना कृता। पुनश्च विहारं कुर्वन्त्या अत्र अंकलेश्वरक्षेत्रं समागत्य वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मार्गशीर्षकृष्णासप्तम्यां तिथौ सोमवासरे ख्रिष्टाब्दे षण्णवत्यधिकैकोनविंशतिशततमे दिसम्बरमासे द्विदिनाँके (२-१२-१९९६) श्रीपार्श्वनाथं मुहुर्मुहुर्वन्दित्वा श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिवर्यौ चापि प्रणम्य इयं टीका पूर्यते।

संप्रति भारतस्य राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा, प्रधानमंत्री श्री एच.डी.देवगौडानामधेयाः गणतंत्रशासनमनुपालयन्ति।

मम संघस्थार्यिकाचन्दनामती-पीठाधीशक्षुल्लकमोतीसागर-कर्मयोगीब्रह्मचारि रवीन्द्रकुमार-ब्रह्मचारि श्रीचंद्र-ब्रह्मचारिणी बीना-आस्था-सारिका-चन्द्रिका-इंदु-अलका-प्रीति सप्त कुमारिकाः सन्ति। सर्वशिष्याणामानुकूल्येन मार्गे विहरन्त्या अपि मम टीकालेखनकार्यं निराबाधममभवत् एतेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वाभ्यश्चाहं बोधिलाभमाशीर्वादं प्रयच्छामि मुहुर्मुहुः प्रसन्नमनाः।

त्रयोविंशं जिनाधीशं, पार्श्वनाथं नमाम्यहम्। तत्प्रतिमां भक्तितो वन्दे, लोकेऽतिशयकारिणीम्।।१।।

पुष्पदन्तमहासाधुं, श्रीभूतबलिनामकं। भक्त्याचार्यद्वयं वन्दे, सिद्धान्तज्ञानसिद्धये।।२।।

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर किये गये उसी वर्षायोग में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (२५२२) भाद्रपद शुक्ला तृतीया के दिन दिनाँक १५ सितम्बर सन् १९९६ को मैंने इस पंचम ग्रंथ को लिखना प्रारंभ किया। इस ग्रंथराज की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका का लेखन प्रारंभ करके वर्षायोग समापन करके पुनः वहाँ से विहार करके मार्ग में गाँव-गाँव में धर्मप्रभावना करते हुए मगशिर कृष्णा प्रतिपदा तिथि में "महुवा" अतिशयक्षेत्र आकर तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा की वंदना किया। पुनः विहार करते हुए यहाँ अंकलेश्वर में पहुँचकर वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेइसवाँ (२५२३) वर्ष में मगशिर कृष्णा सप्तमी तिथि सोमवार को ईसवी सन् उन्नीस सौ छियानवे (१९९६) में दिनाँक २ दिसम्बर को श्रीपार्श्वनाथ भगवान को बारम्बार नमस्कार करके और आचार्यश्री पुष्पदन्त-भूतबली को भी नमन करके मुझ गणिनी ज्ञानमती द्वारा यह टीका पूर्ण की जा रही है।

इस समय भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा हैं एवं प्रधानमंत्री श्री एच.डी. देवगौडा गणतंत्र शासन का राज्य संचालन कर रहे हैं।

मेरे संघ में आर्यिका चंदनामती, पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर, कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार, ब्रह्मचारी श्रीचंद, ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना, आस्था, सारिका, चन्द्रिका, इन्दू, अलका, प्रीति नाम से सात कुमारी कन्याएँ हैं। इन सभी शिष्यों की अनुकूलता से मार्ग में विहार करते हुए भी मेरा लेखनकार्य निर्विघ्नरूप से चलता रहा अतः इन सभी शिष्य-शिष्याओं के लिए मैं प्रसन्नचित्त होकर बारम्बार बोधिलाभ का आशीर्वाद प्रदान करती हूँ।

श्लोकार्थ — तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को नमन करती हूँ तथा लोक में अतिशयकारी उनकी प्रतिमा की मैं भक्तिपूर्वक वंदना करती हूँ।।१।।

श्रीपुष्पदंत आचार्य एवं भूतबली आचार्य नामक दोनों महासाधुवर्य की मैं सिद्धान्तज्ञान की प्राप्ति हेतु भक्तिपूर्वक वन्दना करती हूँ।।२।।

श्रीशान्तिसागराचार्यं, सूरिं श्री वीरसागरम्। भक्त्या सूरिद्वयं वन्दे, दीक्षागुरुं गुरोर्गुरुम्।।३।।
यावच्चिन्तामणिष्टीका, षोडशस्य न पूर्यते। तावत्सरस्वतीमातः! चित्ताब्जे मे विराजताम्।।४।।
सर्वे विघ्नाः पलायध्वं, जिनभक्तिप्रसादतः। केवलज्ञानमती मे स्यात्, ग्रन्थोऽपि स्थीयतामिह।।५।।

।। इति वर्द्धतां जिनशासनम्।।

पूज्य आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज मेरे गुरु के गुरु एवं उनके प्रथम पट्टाधीश मेरे दीक्षागुरु आचार्यश्री वीरसागर महाराज इन आचार्यद्वय को भी मैं वंदन करती हूँ।।३।।

हे सरस्वती मातः ! जब तक इस षट्खण्डागम ग्रंथ की सम्पूर्ण सोलहों पुस्तकों की सिद्धान्त चिन्तामणिटीका पूर्ण न हो जावे, तब तक आप मेरे हृदयकमल में विराजमान रहें।।४।।

जिनेन्द्रभक्ति के प्रसाद से समस्त विघ्न पलायमान होवें तथा मुझ ज्ञानमती को केवल "ज्ञानमती" लक्ष्मी की प्राप्ति होवे एवं यह ग्रंथ भी इस जग में स्थायित्व को प्राप्त करे, यही भावना है।।५।।

।। जैनशासन सदैव वृद्धिंगत होवे ।।

व्रत और तप सर्वथा कार्यकारी ही हैं

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तह वि झाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं।।
अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि।
वरवयतवेहिं सग्गो मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरु भेयं।।

तप से स्वर्ग सभी प्राप्त करते हैं, पर जो ध्यान से स्वर्ग प्राप्त करता है उसका स्वर्ग प्राप्त करना कहलाता है, ऐसा जीव परभव शाश्वत–मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार अत्यन्त शुभ सामग्री से–शोधन सामग्री से अथवा सुहागा से सुवर्ण शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार काल आदि लब्धियों से आत्मा परमात्मा हो जाता है। व्रत और तप के द्वारा स्वर्ग का प्राप्त होना अच्छा है किन्तु अव्रत और अतप के द्वारा नरक के दुःख प्राप्त होना अच्छा नहीं है क्योंकि छाया और घाम में बैठ कर इष्ट स्थान की प्रतीक्षा करने वालों में बहुत ही अंतर है।

–आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव-मोक्षपाहुड़

हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

श्रीसिद्धान्त सु ग्रंथ है, षट्खण्डागम नाम।
पुष्पदंत अरु भूतबलि, कृत यह ग्रंथ महान।।१।।

सूत्रग्रंथ कहते इसे, सूरि उभय की देन।
पढ़ें इसे न अकाल में, यही मुख्य है नेम।।२।।

चार काल स्वाध्याय में, इसे पढ़ें त्रयकाल।
वैरात्रिक स्वाध्याय में, माना गया अकाल।।३।।

वीरसेन स्वामी रचित, धवला टीका ख्यात।
प्राकृत संस्कृत से सहित, धवल विश्वविख्यात।।४।।

अज्ञजनों के लिए वह, टीका कठिन महान।
इसीलिए स्वाध्याय में, हुआ न प्रचलित नाम।।५।।

एक बार मैंने किया, नम्र निवेदन मात।
ज्ञानमती गणिनीप्रमुख, माताजी के पास।।६।।

सरलरूप में दीजिए, आप हमें कुछ ज्ञान।
सूत्रग्रंथ पर कीजिए, टीका आप महान।।७।।

उनकी अतिशय लेखनी, से प्रसूत यह ग्रंथ।
संस्कृत टीका में बनी, कृति यह जग में वंद्य।।८।।

हिन्दी में अनुवाद का, मुझे मिला सौभाग्य।
तब इसके स्वाध्याय का, प्राप्त हुआ कुछ स्वाद।।९।।

प्रथम खण्ड में ग्रंथ छह, हैं विभक्त जो आज।
ग्रंथ पाँच में है कथन, आठ अनुयोग का सार।।१०।।

मेरे द्वारा हो गया, पाँच ग्रंथ अनुवाद।
उनमें से यह पांचवाँ, ग्रंथ है प्रस्तुत मात।।११।।

ज्ञानमती माता तुम्हीं, हो मम असली मात।
ग्यारह वर्ष की उम्र से, मिला जो आशिर्वाद।।१२।।

नाम माधुरी था मेरा, दीक्षा दी जब मात।
नाम चन्दनामति किया, बना आर्यिका मात।।१३।।

दिया नाम जैसा मुझे, गुण वैसे दो मात।
चन्दन सम शीतल बनूँ, दो यह आशिर्वाद।।१४।।

कहने को लघु बहन हूँ, पर हो गुरु अरु मात।
अनुशासन अरु ज्ञान का, सीखा है बस पाठ।।१५।।

ज्ञानामृत से सींच कर, किया मुझे कुछ योग्य।
भवसागर से खींचकर, दिया स्वात्मसंतोष।।१६।।

मंदगती से कर सकी, मैं इसका अनुवाद।
फिर भी पूरा हो गया, बना आत्मविश्वास।।१७।।

वीर संवत् पच्चीस सौ, पैंतिस का है वर्ष।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थ[१] दिन, है मुझ मन में हर्ष।।१८।।

पद्मप्रभू निर्वाण दिन, पूर्ण हुआ अनुवाद।
हस्तिनापुर शुभ तीर्थ पर, हो रहा मंगल ठाठ।।१९।।

गणिनी माँ के करकमल, अर्पित है कृति आज।
इसे पूर्ण करके मिला, ज्ञानामृत का स्वाद।।२०।।

धरती पर जब तक रहे, द्वादशांग का सार।
यह षट्खण्डागम सभी, को देवे श्रुतसार।।२१।।

सात क्षेत्र में धन का सदुपयोग

चैत्ये चैत्यालये शास्त्रे चतुःसंघेषु सप्तसु।
सुक्षेत्रेषु व्ययः कार्यो नो चेल्लक्ष्मीर्निरर्थिका।।

अर्थ-जिन प्रतिमा के बनवाने में, जिनमंदिर के निर्माण कराने में, शास्त्रों के लिखवाने या जीर्णोद्धार कराने में तथा मुनि, आर्यिका और श्रावक-श्राविका इन चतुर्विध संघ में दान देने में इन सात स्थानों में श्रावकगण अपनी लक्ष्मी का व्यय करें। वरना उनकी लक्ष्मी व्यर्थ है, निरर्थक है।

१. १३ फरवरी २००९, शुक्रवार।

परिशिष्ट

षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन काल : एक दृष्टि में

-गणिनी ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी के शासन में दिगम्बर जैन महामुनि श्री धरसेनाचार्य से ज्ञान प्राप्तकर श्री पुष्पदंताचार्य एवं श्रीभूतबलि आचार्य ने ''षट्खण्डागम'' ग्रंथ की रचना की है। इसमें छह खण्ड हैं— १. जीवस्थान २. क्षुद्रकबंध ३. बंधस्वामित्व ४. वेदनाखण्ड ५. वर्गणाखण्ड एवं ६. महाबंध।

जीवस्थान —प्रथम खण्ड

श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित उन ग्रंथों की प्राकृत-संस्कृत मिश्र ''धवला'' नाम की टीका के आधार से मैंने हस्तिनापुर तीर्थ पर वीर नि. संवत् २५२१ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा — शरत् पूर्णिमा को ८ अक्टूबर सन् १९९५ में —

सिद्धान् सिद्धयर्थमानम्य, सर्वांस्त्रैलोक्यमूर्धगान्।
इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ, शान्तीशो हृदि धार्यते।।१।।

इस प्रकार मंगलाचरण लिखकर 'सिद्धान्तचिंतामणि'' नाम से संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया।

प्रथम खण्ड की टीका को मैंने मांगीतुंगी यात्रा के मध्य लिखते हुए माधोराजपुरा (राजस्थान) में वीर नि. सं. २५२३, फाल्गुन कृ. १३ (दिनाँक ७-३-१९९७) को पूर्ण किया। इस प्रथम खण्ड में छह ग्रंथ हैं और सूत्र संख्या २३७५ है।

क्षुद्रकबंध— द्वितीय खण्ड

इस क्षुद्रकबंध की टीका मैंने पद्मपुरा — अतिशय क्षेत्र पर वीर नि. सं. २५२३, फाल्गुन शु. प्रतिपदा को (दिनाँक १०-३-१९९७) को प्रारंभ करके वीर नि. सं. २५२४, मार्गशीर्ष शु. १३ (दिनाँक १२-१२-१९९७) को हस्तिनापुर में पूर्ण किया। इसमें एक ग्रंथ है, सूत्र संख्या १५९४ है।

बंधस्वामित्वविचय— तृतीय खण्ड

इसकी टीका मैंने हस्तिनापुर में मार्गशीर्ष शु. १३ (दि. १२-१२-१९९७) को प्रारंभ की। पुनः ऋषभदेव कमल मंदिर प्रीतविहार, दिल्ली में वीर नि. सं. २५२५, द्वि. ज्येष्ठ शु. ५, श्रुतपंचमी के दिन (दिनाँक १८-६-१९९९) को पूर्ण की है। इसमें एक ग्रंथ है एवं सूत्र संख्या ३२४ है।

वेदना खण्ड— चतुर्थ खण्ड

मैंने जयसिंहपुरा, नई दिल्ली, अग्रवाल दि. जैन मंदिर में वीर नि. सं. २५२५, आश्विन शु. १५ — शरत् पूर्णिमा (दिनाँक २४-१०-१९९९) को प्रारंभ की। पुनः प्रयाग, शौरीपुर, कुण्डलपुर, पावापुरी, सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की यात्रा व तीर्थ विकास आदि कार्यों के मध्य वीर नि. सं. २५३०, मार्गशीर्ष शु. १३ (दिनाँक ६-१२-२००३) में राजगृही तीर्थ पर पूर्ण की है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या १५२५ है।

वर्गणा खण्ड— पंचम खण्ड

इस ग्रंथ की टीका को मैंने वीर नि. सं. २५३०, पौष कृ. ११ (दि. १९-१२-२००३) को कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) में प्रारंभ किया। पुनः पावापुरी, वाराणसी, अयोध्या, अहिच्छत्र आदि यात्रा करते हुए हस्तिनापुर आकर वीर नि. सं. २५३३, वैशाख कृ. २ (दिनाँक ४-५-२००७) में भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक के पवित्र दिन एवं अपनी आर्यिका दीक्षा तिथि के दिन पूर्ण किया है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या १०२३ है।

वर्तमान में 'धवला' नाम से प्रसिद्ध इन षट्खण्डागम के पाँच खण्डों में हिन्दी अनुवाद सहित १६ पुस्तकें प्रकाशित हैं। मैंने भी इन्हें १६ पुस्तकों में विभक्त किया है। इन ग्रंथों में कुल सूत्र ६८४१ हैं। मेरे द्वारा लिखित पेज ३१०१ है।

त्रित्रिपंचद्विवीराब्दे, वैशाखे द्वितयेऽसिते।
हस्तिनागपुरे तीर्थे, टीकेयं परिपूर्यते।।७।।
श्रीशान्तिनाथतीर्थेशं, नत्वात्यन्तिकशान्तये।
वन्द्यन्ते सर्वसिद्धाश्चा-प्यन्ते शुद्धात्मसिद्धये।।१०।।

इस टीका के प्रारंभ में मैंने सिद्धों की वंदना करके भगवान शांतिनाथ को हृदय में विराजमान किया था। पुनः टीका के समापन में भगवान शांतिनाथ को नमस्कार करके अनंत सिद्धों की वंदना की है।

इस ग्रंथ की पूर्णता के बाद वीर नि. सं. २५३३, वैशाख शु. ११ से पूर्णिमा तक बृहत् स्तर पर तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य वैशाख शुक्ला १४, दिनाँक १-५-२००७ को 'षट्खण्डागम श्रुत महोत्सव'' मनाकर इन सोलहों ग्रंथों की सभी भक्तों ने पूजा की है।

श्री ऋषभदेव चरितम्

इन्हीं ११ वर्षों के मध्य वी.नि.सं. २५२४, मार्गशीर्ष शु. १२ (११-१२-१९९७) को हस्तिनापुर में 'श्रीऋषभदेवचरित' को संस्कृत में लिखना प्रारंभ किया एवं वी.नि.सं. २५२६, शरद्पूर्णिमा (२४-१०-१९९९) को जयसिंहपुरा, नई दिल्ली में पूर्ण किया।

विश्वशांति महावीर विधान

भगवान महावीर के २६००वें जन्मकल्याणक महोत्सव के अवसर पर वी. नि.सं. २५२६ को कार्तिक कृ. अमावस्या को मैंने प्रीतविहार, दिल्ली में ''विश्वशांति महावीर विधान'' लिखना प्रारंभ किया। पुनः प्रयाग की ओर मंगल विहार करके मार्ग में ही लिखते हुए २६०० मंत्रों सहित इस विधान को प्रयाग (इलाहाबाद) पहुँचकर उसी दिन वी. नि. सं. २५२७, पौष शु. ६, दिनाँक १-१-२००१ को मात्र ६६ दिन में पूर्ण किया है।

इस प्रकार षट्खण्डागम टीका लेखन के मध्य ये दो और महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये हैं।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।
द्वादशांगमयी देवी, सा चिताब्जेऽवतार्यते।।

तीर्थयात्रा के मध्य टीका लेखन

(२७ नवम्बर १९९५ से ४ अप्रैल २००७ तक)

हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप महामहोत्सव के समय शरद्पूर्णिमा १९९५ को षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका प्रारंभ कर मांगीतुंगी तीर्थ पर स्थित आर्यिकारत्न श्री श्रेयांसमती माताजी की अत्यधिक प्रेरणा एवं क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के अतीव आग्रह से मगसिर शु. पंचम, (२७ नम्बर १९९५) को हस्तिनापुर से मांगीतुंगी की ओर मैंने मंगल विहार किया।

मार्ग में अनेक तीर्थ वंदना, धर्मप्रभावना करते हुए वैशाख शु. ९, शनिवार (२७ अप्रैल १९९६) को मांगीतुंगी क्षेत्र पर मेरा मंगल प्रवेश हुआ।

ज्येष्ठ शु. २ से षष्ठी, (दिनाँक १९ मई से २३ मई) तक मुनि श्री रयणसागरजी महाराज ससंघ, आर्यिका श्री श्रेयांसमती माताजी ससंघ एवं मेरे ससंघ सानिध्य में २० फुट उत्तुंग भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ, चौबीस तीर्थंकर प्रतिमा, सहस्त्रकूट प्रतिमा आदि का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। वहीं १९९६ के चातुर्मास के मध्य मांगीतुंगी पर्वत पर श्री ऋषभदेव की १०८ फुट उत्तुंग प्रतिमा निर्माण की मैंने घोषणा की।

वहाँ से कार्तिक शु. पंचमी, (१५ नवम्बर १९९६) को मंगल विहार कर अहमदाबाद, उदयपुर आदि होते हुए चैत्र कृ. ६ (३० मार्च १९९७) को मेरा दिल्ली में आगमन हुआ। यहाँ भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष घोषित करके मैंने १९९७ के चातुर्मास में कल्पद्रुम महायज्ञ विधान आदि अनेक धर्मानुष्ठान सम्पन्न कराए हैं।

पुनः कार्तिक शु. ५, (५ नवम्बर) को दिल्ली से विहार कर मैं हस्तिनापुर आ गई, यहाँ १९९८ के चातुर्मास में कुलपति सम्मेलन आदि अनेक कार्यक्रम हुए हैं।

अनंतर दिल्ली आकर सन् १९९९ का चातुर्मास कनाट प्लेस, नई दिल्ली एवं सन् २००० का चातुर्मास प्रीतविहार-दिल्ली में हुआ है। इनके मध्य श्री ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव आदि अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं।

पुनः दिल्ली से कार्तिक शु. ५, (१ नवम्बर सन् २०००) को भगवान ऋषभदेव दीक्षा भूमि प्रयाग की ओर विहार करके १ जनवरी २००१ को नवतीर्थ "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" पर मैं पहुँची। वहाँ नव तीर्थ निर्माण, प्रतिष्ठा, महाकुंभ मस्तकाभिषेक आदि कार्यक्रम व कौशाम्बी-प्रभासगिरी में पंचकल्याणक सम्पन्न हुए।

वहाँ से पुनरपि विहार कर दिल्ली आकर मेरे सानिध्य में २००१ के चातुर्मास में भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस- सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत "छब्बीस विश्व शांति महावीर विधान" आदि अनुष्ठान हुए हैं।

अनंतर माघ शु. ८ (२० फरवरी २००२) को दिल्ली से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) की ओर मेरा मंगल विहार हुआ। मध्य में तीर्थंकर तपस्थली प्रयाग में २००२ का चातुर्मास करके कार्तिक शु. ६, (१० नवम्बर) को वहाँ से विहारकर वाराणसी, आरा, पटना होते हुए पौष कृ. १०, रविवार (२९ दिसम्बर) को कुण्डलपुर पहुँची, वहाँ पर "नंद्यावर्त महल" नवतीर्थ का निर्माण एवं विशाल पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

पुनः पावापुरी, राजगृही, सम्मेदशिखर आदि की यात्रा करके २००३ व २००४ के चातुर्मास कुण्डलपुर में सम्पन्न किये।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी (भेलूपुर) में भगवान पार्श्वनाथ के २८८१वें जन्मजयंती महोत्सव वर्ष का उद्घाटन कराकर सारनाथ (सिंहपुरी) में भगवान श्रेयांसनाथ का पंचकल्याणक, अयोध्या में प्रभु ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी, उ.प्र.) में पंचकल्याणक, अहिच्छत्र तीर्थ के दर्शन, महाभिषेक आदि धर्मप्रभावना के साथ-साथ ज्येष्ठ कृ. दूज (२५ मई २००५, को हस्तिनापुर तीर्थ पर मैंने मंगल प्रवेश किया है।

यहाँ ईस्वी सन् २००५ एवं २००६ के चातुर्मास में अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं। इस मध्य संस्कृत टीका लेखन करते हुए सन् २००७ में वैशाख कृ. द्वितीया (४ अप्रैल २००७) को टीका पूर्ण करके अपने जीवन में आध्यात्मिक कलशारोहण किया एवं वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की राष्ट्रीय स्तर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्ण होकर जिनालय के शिखर पर स्वर्णिम कलशारोहण, ऐसे दो कलशारोहण हुए हैं।

तीर्थयात्रा के मध्य विभिन्न तीर्थ दर्शन एवं अनेक महोत्सवों का संक्षेप में विवरण

२७ नवम्बर १९९५ से २५ मई २००५ तक यात्रा के मध्य १. उत्तरप्रदेश, २. दिल्ली, ३. हरियाणा, ४. राजस्थान, ५. मध्यप्रदेश, ६. महाराष्ट्र, ७. गुजरात से वापसी दिल्ली-हस्तिनापुर आकर पुनश्च प्रयाग-इलाहाबाद जाकर वापस आकर दिल्ली से पुनः ८. बिहार प्रदेश और ९. झारखण्ड ऐसे नव प्रदेशों के विहार— भ्रमण में लगभग दस हजार किलोमीटर की यात्रा हुई है।

सिद्धक्षेत्र की यात्रा

इस मध्य १. सिद्धवरकूट, २. ऊन (पावागिरी), ३. मांगीतुंगी, ४. पावागढ़, ५. तारंगा, ६. मथुरा, ७. गुलजारबाग (पटना), ८. पावापुरी, ९. राजगृही, १०. गुणावां, ११. सम्मेदशिखर ऐसे ११ सिद्धक्षेत्रों की वंदना हुई है। शिखरजी में चोपड़ाकुण्ड पर बैठकर भी मैंने टीका लिखी है।

तीर्थंकर जन्मभूमि यात्रा

ऐसे ही १. कौशाम्बी, २. कंपिलाजी, ३. शौरीपुर, ४. वाराणसी, ५. सिंहपुर (सारनाथ), ६. चन्द्रपुरी, ७. कुण्डलपुरी, ८. राजगृही, ९. अयोध्या, १०. रत्नपुरी (रौनाही) और ११. हस्तिनापुर ऐसे ११ जन्मभूमियों की वंदनाएँ की हैं।

प्रयाग — दीक्षा भूमि, केवलज्ञानभूमि तथा अहिच्छत्र — केवलज्ञान भूमि के दर्शन किए हैं।

इन तीर्थों पर बैठकर टीका लिखते हुए मुझे ऐसा लगता था कि मानो भगवान की वाणी के कुछ अमृत कण ही इसमें आ रहे हैं। उन क्षणों में मुझे एक अद्भुत आनंद का अनुभव होता था। वास्तव में भगवन्तों की (शौरीपुर, कुण्डलपुर छोड़कर) सभी जन्मभूमियों में उनके केवलज्ञान कल्याणक में समवसरण की रचना हुई है और भगवान की दिव्यध्वनि से असंख्य जीवों ने धर्मामृत का पान किया है। उन तीर्थों की वंदना और वहाँ-वहाँ बैठकर टीका लेखन एक सुखद संयोग ही रहा है। इसी प्रकार दिल्ली, जयपुर, इंदौर, अहमदाबाद, उदयपुर, मेरठ आदि शहरों में अनेक प्रभावना के कार्यक्रम हुए हैं।

अतिशय क्षेत्र दर्शन

१. तिजारा, २. पद्मपुरी, ३. महावीरजी, ४. केशवरायपाटन, ५. चांदखेड़ी, ६. चमत्कारजी (सवाईमाधोपुर), ७. जयपुर-खानिया में चूलगिरि, ८. अंकलेश्वर (गुजरात), ९. महुआ, १०. अणिंदा पार्श्वनाथ, ११. त्रिलोकपुर आदि अतिशय क्षेत्रों के दर्शन किए है।

बृहत् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

सन् १९९६ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र, सन् १९९७ में प्रीतविहार, दिल्ली, सन् १९९८ में कमलानगर-मेरठ (उ.प्र.), सन् २००० में लालकिला मैदान-दिल्ली एवं सतघरा मंदिर-दिल्ली, सन् २००१ में प्रयाग-इलाहाबाद एवं प्रभासगिरी (कौशाम्बी) में, सन् २००३ में कुण्डलपुर (जिला-नालंदा), पावापुरी एवं राजगृही, सन् २००५ में सारनाथ (सिंहपुरी, काशी), सन् २००५ में ही टिकैतनगर (जिला बाराबंकी-उ.प्र.), पुनः सन् २००७ में हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर तेरहद्वीप जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ऐसी १३ प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई हैं। इसी मध्य लघु पंचकल्याणक अनेक हुए हैं।

चौबीस कल्पद्रुम महामंडल विधान का अनुष्ठान

अक्टूबर १९९७ में दिल्ली में रिंग रोड पर विशाल पांडाल में एक साथ चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल बनाये गये। ३००० से अधिक श्रावक-श्राविकाओं ने केशरिया परिधान में पूजन विधान का अनुष्ठान किया।

समय-समय पर तीन लोक, जम्बूद्वीप, इन्द्रध्वज, सिद्धचक्र, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि अनेक विधान आदि होते रहे हैं तथा शांतिविधान, गणधरवलय विधान आदि सहस्त्रों लघु विधान हुए हैं।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार

सन् १९९८ में भारत की राजधानी दिल्ली से "भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार" का प्रवर्तन भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से हुआ। जिसका सारे भारत में भ्रमण होकर यह समवसरण "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" प्रयाग जैन तीर्थ पर स्थापित किया गया है। सन् २००३ में कुण्डलपुर से भगवान महावीर ज्योति रथ का भ्रमण कराया गया है।

भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन

अक्टूबर १९९८ में हस्तिनापुर में "भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन" हुआ। इसमें भारत के विश्वविद्यालयों के कुलपति महोदयों ने आकर जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के गुणगान किये। पचास से अधिक प्रोफेसर, विद्वत्गण आदि आये।

वैशाख में आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती के समय सन् २००६ में जम्बूद्वीप स्थल पर 'भट्टारक सम्मेलन" सम्पन्न हुआ है। वाराणसी, फैजाबाद (अयोध्या), मेरठ आदि में विश्वविद्यालयों में प्रवचन एवं अनेक शहरों में जेल में भी प्रवचन आदि हुए हैं। समय-समय पर अनेक विद्वानों की संगोष्ठी, शिक्षण-प्रशिक्षणशिविर आदि हुए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव

४ फरवरी २००० में दिल्ली में "भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव" मनाया गया। इसमें अष्टापद-कैलाशपर्वत की रचना करके १००८ निर्वाणलाडू चढ़ाये गये एवं त्रिकाल चौबीसी के ७२ रत्नों के जिनबिम्बों की एवं श्री ऋषभदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

इस निर्वाण महोत्सव का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया है।

कैलाश मानसरोवर यात्रा

अक्टूबर २००० में वर्षायोग के मध्य विशाल कैलाश मानसरोवर पर्वत बनवाकर त्रिकाल चौबीसी भगवन्तों को विराजमान करके लाखों भक्तों ने कैलाश मानसरोवर यात्रा करके भगवान ऋषभदेव का जयघोष किया है।

महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव

सन २००१ में प्रयाग-इलाहाबाद में भगवान ऋषभदेव का १००८ कुंभों से महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ है। प्रयाग में महाकुंभनगर में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित ''नवम संसद'' में श्री रामचंद्र की जन्मभूमि अयोध्या के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर मेरे द्वारा प्रवचन हुए । पुनश्च कुंडलपुर, अयोध्या, हस्तिनापुर में भी महाकुंभ मस्तकाभिषेक हुए हैं।

विश्वशान्ति महावीर विधानानुष्ठान

सन २००१ में दिल्ली में फिरोजशाह कोटला मैदान में विशाल पांडाल में एक साथ २६ मंडल विधान बनाये गए। प्रत्येक मंडल पर २६०० मंत्रपूर्वक रत्न चढ़ाये गये। यह विशाल पूजानुष्ठान भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में कराया गया है। इसमें सम्पूर्ण विश्व की शांति की कामना की गई।

महामहोत्सव

सन १९९६ में गोम्मटगिरि तीर्थ का दशाब्दी महोत्सव मनाया गया। सन् २००१ में प्रयाग-महाकुंभ नगर में श्री ऋषभदेव पांडाल में भगवान ऋषभदेव का निर्वाणलाडू चढ़ाकर निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया। सन २००५ में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी भेलूपुर में पौष कृ.११ को भगवान पार्श्वनाथ का २८८१ वां जन्मकल्याणक महोत्सव का उद्घाटन किया गया। यह महोत्सव तीन वर्ष तक दिल्ली आदि सारे भारत में मनाया गया। पुनः सन् २००८ में अहिच्छत्र में समापन किया गया।

२००५ अक्टूबर में हस्तिनापुर में चतुर्थ जंबूद्वीप महामहोत्सव, २००६ में वैशाख कृष्णा दूज को (मेरा—गणिनी ज्ञानमती माता जी का) आर्यिका दीक्षा स्वर्णजयंती महोत्सव आदि कार्यक्रम विशाल स्तर पर संपन्न हुए हैं।

नवतीर्थ निर्माण

इस मध्य मांगीतुंगी में सहस्त्रकूट कमल मंदिर, १०८ उत्तुंग श्री ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण घोषणा, दिल्ली में प्रीतविहार में कमल मंदिर, मेरठ में कमलों पर २४ तीर्थंकर, २० तीर्थंकर, प्रयाग में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली नवतीर्थ निर्माण, कुण्डलपुर में नंद्यावर्त महल नवतीर्थ निर्माण, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, अहिच्छत्र में ७२-७२ पांखुड़ियों के दस कमलों पर तीस चौबीसी प्रतिमा विराजमान, खेरवाड़ा में (केशरिया जी के निकट) कैलाश पर्वत की रचना, सम्मेदशिखर, पावापुरी, गुणावां, राजगृही में नवमंदिर निर्माण व मानस्तंभ निर्माण, पिड़ावा (राजस्थान) में समवसरण रचना, माधोराजपुरा (राज.) आर्यिका दीक्षा भूमि में नूतन तीर्थ रचना आदि अनेक भव्य निर्माण भी सम्पन्न हुए हैं।

राजनेता आदि के आगमन

इस मध्य प्रतिष्ठा महोत्सव, महायज्ञविधानानुष्ठान आदि कार्यक्रमों में अनेक राजनेता आये हैं। दिल्ली में २००७ में भारत गणतंत्र शासन के पूर्व राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा, पावापुरी (बिहार प्रांत) में मई २००३ में महामहिम राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुलकलाम, दिल्ली में सन् १९९८ में एवं २००० में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी, अहमदाबाद में गुजरात के राज्यपाल श्री कृष्णपाल सिंह, प्रयाग में राज्यपाल आचार्य श्री विष्णुकांत जी शास्त्री, कुण्डलपुर (जिला-नालंदा) में राज्यपाल श्री विनोदचंद पाण्डेय एवं श्री एम.रामा जोयिस आए हैं। मांगीतुंगी में १९९६ में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी, अहमदाबाद में १९९७ में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री शंकरसिंह वाघेला, दिल्ली में १९९७ में दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंहवर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह, सन् २००० में मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी) उ.प्र. में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव आये हैं। इसी प्रकार समय-समय पर रेलमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री आदि अनेक नेतागण भी आते रहे हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री श्यामल कुमार सेन, न्यायमूर्ति श्री सुधीर नारायण, न्यायमूर्ति श्री एम.सी. जैन (इलाहाबाद), न्यायमूर्ति श्री मिलापचंद जैन (लोकायुक्त-राजस्थान) आदि आये हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. श्री पी.रामचंद्रराव, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय—फैजाबाद के कुलपति डॉ. एस.वी. सिंह, दिल्ली के लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय आदि भी समय-समय पर आकर धर्मचर्चा करते हुए लाभान्वित हुए हैं।

सन् १९९८ में कुलपति सम्मेलन में बाईस कुलपति आये हैं एवं अनेक प्रोफेसर, विद्वद्गण आये हैं।

इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष-विश्वहिन्दू परिषद—श्रीयुत अशोक सिंघल, सांसद एवं विधिवेत्ता श्री एल.एम. सिंघवी, वित्त राज्यमंत्री श्री वी. धनंजय कुमार जैन, श्री वीरेन्द्र हेगड़े, श्री कल्लप्पा आवाड़े, साहू श्री अशोक कुमार जैन, श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल आदि महानुभाव आकर धर्मप्रभावना में भाग लेकर प्रसन्न हुए हैं।

यात्रा के मध्य विहार आदि व्यवस्था

इस यात्रा में प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी एवं जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लकरत्न मोतीसागर महाराज ने आगे-आगे के मार्ग का निर्धारण व सर्वत्र सभा संचालन आदि कार्य व्यवस्था को संभाला है। साथ ही पदविहार का कठिन श्रम किया है। कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन का तीर्थ निर्माण, विकास, जीर्णोद्धार तथा महामहोत्सव आदि कराने में अथक परिश्रम रहा है। ये तीनों ही शिष्यरत्न इसी प्रकार धर्मप्रभावना के कार्यों में सक्रिय रहें, इनके लिए यही मेरी प्रेरणा, मंगलकामना एवं मंगल आशीर्वाद है।

संघस्थ ब्रह्मचारिणी कु. बीना, कु. आस्था आदि ब्र. बहनों ने संघ के आहार-विहार आदि व्यवस्था का संचालन पूर्ण भक्ति एवं कुशलता से किया है तथा प्रत्येक महोत्सव आदि कार्यों में सहयोग किया है। समय-समय पर इन सभी शिष्यों की अनुकूलता से ही मेरा लेखनकार्य निराबाध चलता रहा है। इन सबको रत्नत्रयवृद्धि के लिए मेरा बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद है।

श्री महावीर प्रसाद जैन, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता जैन—बंगाली स्वीट-दिल्ली, संघभक्त

शिरोमणि (संघपति) का संघ विहार एवं प्रत्येक निर्माण आदि में महत्वपूर्ण योगदान इनके साथ ही प्रेमचंद जैन-श्रीमती निर्मला जैन, खारीबावली-दिल्ली एवं आनंद कुमार जैन, जैन मार्बल, मेरठ का योगदान, इन-इनके अतिशय पुण्य संपादन के लिए ही हुआ है। पुनश्च तीर्थ निर्माण आदि में भारत की संपूर्ण दिगम्बर जैन समाज के भक्तों की अर्थाञ्जलि ने भी अनेक तीर्थों को अतिशायी रूप प्रदान किया है। इन सभी के लिए मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है।

इस प्रकार अक्टूबर १९९५ से अप्रैल २००७ तक ९ प्रदेशों के भ्रमण में दश हजार किमी. की यात्रा के मध्य अनेक तीर्थों की यात्रा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, विधानानुष्ठान आदि सभी महामहोत्सवों में मेरी प्रेरणा एवं मेरा ससंघ सानिध्य रहते हुए भी मेरा संस्कृत टीका का लेखनकार्य निर्विघ्नतया होता रहा है।

भगवद् भक्ति का आश्चर्यकारी प्रभाव

इसमें मुझे स्वयं ही आश्चर्य प्रतीत होता है अथवा जिनेन्द्रदेव की भक्ति, परोक्ष से भी गुरुवर्य का वरदहस्त एवं जिनवाणी माता सरस्वती की महती अनुकंपा ही मेरी सिद्धान्तचिंतामणिटीका लेखन में वरदान बनी है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस टीका लेखन में षट्खण्डागम के पाँच खण्डों का स्वाध्याय, चिंतन, मनन करते हुए मन से—मानस मतिज्ञान व दिव्यश्रुतज्ञान से तीनों लोकों की यात्रा करते हुए मैंने मन से कभी सुमेरुपर्वत पर जाकर कभी भगवान के समवसरण में बैठकर अपनी चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन करते हुए असीम—अनवधि आनंद अनुभव प्राप्त किया है। ऐसे केवलज्ञान के लिए बीजस्वरूप श्रुतज्ञान को मेरा अनंत-अनंत नमस्कार होवे।

अनंतानंत तीर्थंकर परम्परा में वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शासन में मूलसंघ में श्री कुंदकुंदाम्नाय में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महामुनिराज, उनके प्रथम शिष्य व प्रथम पट्टाधीश, महाव्रत के प्रदाता दीक्षागुरु श्री वीरसागराचार्य महामुनिराज को मेरा कोटि-कोटि नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

—इन्द्रध्वज्रा छंदः —

सिद्धान्त चिन्तामणि नामधेया, सिद्धान्तबोधामृतदानदक्षा।
टीका भवेत्स्वात्मपरात्मनोर्हि, कैवल्यलब्ध्यै खलु बीजभूता।।१।।

षट्खंडागम का विषय

-गणिनी ज्ञानमती

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक सत्प्ररूपणा में सर्वप्रथम 'णमोकार महामंत्र' से मंगलाचरण किया है। इसमें १७७ सूत्र हैं। इस ग्रंथ की रचना श्रीमत्पुष्पदंत आचार्य ने की है। इसके आगे के संपूर्ण सूत्र श्रीमद् भूतबलि आचार्य प्रणीत हैं।

इस मंगलाचरण की धवला टीका में पांचों परमेष्ठी के लक्षण बताये हैं।

यह मंत्र अनादि है या श्री पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित सादि है ?

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका में इसका स्पष्टीकरण किया है। धवला टीका में इसे 'निबद्धमंगल' कहकर आचार्यदेव रचित 'सादि' स्वीकार किया है। इसी मुद्रित प्रथम पुस्तक के टिप्पण में जो पाठ का अंश उद्धृत है वह धवलाटीका का ही अंश माना गया है। उसके आधार से यह मंगलाचरण 'अनादि' है। आचार्य श्री पुष्पदंत द्वारा रचित नहीं है, ऐसा स्पष्ट होता है। इस प्रकरण को मैंने दिया है। यथा—

अयं महामंत्र सादिरनादिर्वा ?

अथवा षट्खण्डागमस्य मु प्रतौ पाठांतरं। यथा—(मुद्रितमूलग्रन्थस्य प्रथमावृत्तौ)

''जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं''[१]।

अस्यायमर्थः-यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा निबद्धः—संग्रहीतः न च ग्रथितः देवतानमस्कारः स निबद्धः मंगलं। यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा कृतः-ग्रथितः देवतानमस्कारः स अनिबद्धमंगलं। अनेन एतज्ज्ञायते- अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः —

महापंच गुरोर्नाम नमस्कारसुसम्भवम्। महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्[२]।।६३।।

महापंचगुरूणां पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्। उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये[३]।।६८।।

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम्—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः[४]।।३।।

यह महामंत्र सादि है अथवा अनादि ?

अथवा, मुद्रितमूल प्रति में (प्रथम आवृत्ति में) पाठान्तर है। जैसे—

जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्त्ता के द्वारा देवता नमस्कार निबद्ध किया जाता है, वह निबद्धमंगल है और जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्त्ता के द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है-रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है।

इसका अर्थ यह है—सूत्र ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथकार जो देवता नमस्काररूप मंगल कहीं से संग्रहीत करते हैं, स्वयं नहीं रचते हैं वह तो निबद्धमंगल है और सूत्र के प्रारंभ में ग्रंथकर्त्ता के द्वारा जो देवतानमस्कार

१. षट्खण्डागम पुस्तक १, भाग १,पृ. ४२, टिप्पणौ। २. आदिदं-प्रथममित्यर्थः। ३-४. णमोकारमंत्रकल्पे।

स्वयं रचा जाता है, वह अनिबद्धमंगल है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह णमोकार महामंत्र मंगलाचरणरूप से यहाँ संग्रहीत होते हुए भी अनादिनिधन है, वह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

''णमोकार मंत्रकल्प'' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है —

श्लोकार्थ — नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत में ज्येष्ठ — सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।६३।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।६८।।

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है —

श्लोकार्थ — उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।।३।।

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि टीका' में सर्वत्र सूत्रों का विभाजन एवं समुदायपातनिका आदि बनाई हैं। यहाँ मैंने 'समयसार' 'प्रवचनसार' 'पंचास्तिकाय' ग्रंथों की 'तात्पर्यवृत्ति' टीका का अनुसरण किया है। श्री जयसेनाचार्य की टीका में सर्वत्र गाथासूत्रों की संख्या एवं विषयविभाजन से स्थल-अन्तरस्थल बने हुए हैं। उनकी टीका के अनुसार ही मैंने यहाँ स्थल-अन्तरस्थल विभाजित किये हैं।

सर्वत्र मंगलाचरणरूप में मैंने कहीं पद्य, कहीं गद्य का प्रयोग किया है। तीर्थ और विशेष स्थान की अपेक्षा से प्रायः वहाँ-वहाँ के तीर्थंकरों को नमस्कार किया है।

यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गत-गौतमस्वामिमुखकुण्डावतरित-पुष्पदंताचार्यादिविस्तारित-गंगायाः जलसदृशं ''नद्या नवघटे भृतं जलमिव'' इयं टीका सर्वजनमनांसि संतर्पिष्यत्येवेतिमया विश्वस्यते।

अथाधुना श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यदेवविनिर्मिते गुणस्थानादिविंशतिप्ररूपणान्तर्गर्भितसत्प्ररूपणा — नाम ग्रंथे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिका व्याख्यानं विधीयते। तत्रादौ 'णमो अरिहंताणं' इति पंचनमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण गुणस्थानमार्गणा-प्रतिपादनसूचकत्वेन 'एत्तो इमेसिं' इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः चतुर्दशगुणस्थाननिरूपणपरत्वेन ''संतपरूवणदाए'' इत्यादि-षोढशसूत्राणि। ततः परं चतुर्दशमार्गणासु गुणस्थानव्यवस्था-व्यवस्थापन-मुख्यत्वेन ''आदेसेण गदिश्राणुवादेण'' इत्यादिना चतुःपञ्चाशदधिक-एकशतसूत्राणि सन्ति। एवं अनेकान्तरस्थलगर्भित-सप्त-सप्तत्यधिकएकशतसूत्रैः एते त्रयो महाधिकारा भवन्तीति सत्प्ररूपणायाः व्याख्याने समुदायपातनिका भवति।

अत्रापि प्रथममहाधिकारे 'णमो' इत्यादि मंगलाचरणरूपेण प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं। ततो गुणस्थानमार्गणा-कथनप्रतिज्ञारूपेण द्वितीयस्थले 'एत्तो' इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च चतुर्दशमार्गणानां नामनिरूपणरूपेण तृतीयस्थले सूत्रद्वयं। ततः परं गुणस्थानप्रतिपादनार्थं अष्टानुयोगनामसूचनपरत्वेन चतुर्थस्थले 'एदेसिं' इतयादिसूत्रत्रयं। एवं षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य, सत्प्ररूपणायाः पीठिकाधिकारे चतुर्भिरन्तरस्थलैः सप्तसूत्रैः समुदायपातनिका सूचितास्ति।

अथ श्रीमद्भगवद्धरसेनगुरुमुखादुपलब्धज्ञानभव्यजनानां वितरणार्थं पंचमकालान्त्य-वीरांगजमुनिपर्यंतं गमयितुकामेन पूर्वाचार्यव्यवहारपरंपरानुसारेण शिष्टाचारपरिपालनार्थं निर्विघ्नसिद्धान्तशास्त्रपरिसमाप्त्यादिहेतोः श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्येण णमोकारमहामन्त्रमंगलगाथा-सूत्रावतारः क्रियते —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।१।।

जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से निकलकर जो गौतमस्वामी के मुखरूपी कुण्ड में अवतरित गिरी है तथा पुष्पदन्त आचार्य आदि के द्वारा विस्तारित गंगाजल के समान "नदी से भरे हुए नये घड़े के जल सदृश" यह टीका सभी प्राणियों के मन को संतृप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब यहाँ श्रीमान् पुष्पदन्त आचार्यदेव द्वारा रचित गुणस्थान आदि बीस प्ररूपणाओं में अन्तर्गर्भित इस सत्प्ररूपणा नामक ग्रंथ में अधिकारशुद्धिपूर्वक पातनिका का व्याख्यान किया जाता है। उसमें सबसे पहले "णमो अरिहंताणं" इत्यादि इस पञ्चनमस्कार गाथा को आदि में करके सूत्र पाठ के क्रम से गुणस्थान, मार्गणा के प्रतिपादन की सूचना देने वाले "एत्तो इमेसिं" इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद चौदह गुणस्थानों के निरूपण की मुख्यता से "ओघेण अत्थि" इत्यादि सोलह सूत्र हैं। पुनः आगे चौदह मार्गणाओं में गुणस्थान व्यवस्था की मुख्यता से "आदेसेण गदियाणुवादेण" इत्यादि एक सौ चौव्वन (१५४) सूत्र हैं। इस प्रकार अनेक अन्तर्स्थलों से गर्भित एक सौ सतत्तर (१७७) सूत्रों के द्वारा ये तीन महाधिकार हो गए हैं। सत्प्ररूपणा के व्याख्यान में यह समुदायपातनिका हुई।

यहाँ भी प्रथम महाधिकार में "णमो" इत्यादि मंगलाचरणरूप से प्रथम स्थल में एक गाथा सूत्र है पुनः द्वितीय स्थल में गुणस्थान-मार्गणा के कथन की प्रतिज्ञारूप से "एत्तो" इत्यादि एक सूत्र है और उसके बाद चौदह मार्गणाओं के नाम निरूपण रूप से तृतीय स्थल में दो सूत्र हैं। उसके आगे गुणस्थानों के प्रतिपादन हेतु आठ अनुयोग के नाम सूचना की मुख्यता से चतुर्थ स्थल में 'एदेसिं" इत्यादि तीन सूत्र हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथराज की सत्प्ररूपणा के पीठिका अधिकार में चार अन्तरस्थलों के द्वारा सूत्रों में समुदायपातनिका सूचित — प्रदर्शित की गई है।

अब श्रीमत् भगवान धरसेनाचार्य गुरु के मुख से उपलब्ध ज्ञान को भव्यजनों में वितरित करने के लिए पंचमकाल के अन्त में वीरांगज मुनिपर्यन्त इस ज्ञान को ले जाने की इच्छा से, पूर्वाचार्यों की व्यवहार परम्परा के अनुसार, शिष्टाचार का परिपालन करने के लिए, निर्विघ्न सिद्धान्त शास्त्र की परिसमाप्ति आदि हेतु को लक्ष्य में रखते हुए श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा णमोकार महामंत्र मंगल गाथा सूत्र का अवतार किया जाता है —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी में मैंने 'तृतीय महाधिकार' प्रारंभ किया था अतः श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। यथा —

महावीरो जगत्स्वामी, सातिशायीति विश्रुतः।
तस्मै नमोऽस्तु मे भक्त्या, पूर्णसंयमलब्धये।।१।।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

''सुत्तमोदिण्णं अत्थदो तित्थयरादो, गंथदो गणहरदेवादोत्ति[१]।।

ये सूत्र अर्थप्ररूपणा की अपेक्षा से तीर्थंकर भगवान से अवतीर्ण हुए हैं और ग्रंथ की अपेक्षा श्री गणधर देव से अवतीर्ण हुए हैं।

अथवा 'जिनपालित' शिष्य को निमित्त कहा है।

श्री पुष्पदंताचार्य ने अपने भानजे 'जिनपालित' को दीक्षा देकर प्रारंभिक १७७ सूत्रों की रचना करके भूतबलि आचार्य के पास भेजा था। ऐसा 'धवलाटीका' में एवं श्रुतावतार में वर्णित है।

इस मंगलाचरण को सूत्र १ संज्ञा दी है। आगे द्वितीय सूत्र का अवतार हुआ है—

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेवट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति।।२।।

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाण से इन चौदह गुणस्थानों के अन्वेषणरूप प्रयोजन के लिए यहाँ से चौदह ही मार्गणास्थान जानने योग्य हैं।

ऐसा कहकर पहले चौदह मार्गणाओं के नाम बताए हैं। यथा—गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणा हैं।

पुनः पांचवें सूत्र में कहा है—

इन्हीं चौदह गुणस्थानों का निरूपण करने के लिए आगे कहे जाने वाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं।।६।।

इन आठों के नाम—१. सत्प्ररूपणा २. द्रव्यप्रमाणानुगम ३. क्षेत्रानुगम ४. स्पर्शनानुगम ५. कालानुगम ६. अन्तरानुगम ७. भावानुगम और ८. अल्पबहुत्वानुगम।

आगे प्रथम 'सत्प्ररूपणा' का वर्णन करते हुए ओघ और आदेश की अपेक्षा निरूपण करने को कहा है।

इसी में ओघ की अपेक्षा चौदह गुणस्थानों का वर्णन है और आगे चौदह मार्गणाओं का वर्णन करके उनमें गुणस्थानों को भी घटित किया है। मार्गणाओं के नाम ऊपर लिखे गये हैं। गुणस्थानों के नाम—

१. मिथ्यात्व २. सासादन ३. मिश्र ४. असंयतसम्यग्दृष्टि ५. देशसंयत ६. प्रमत्तसंयत ७. अप्रमत्तसंयत ८. अपूर्वकरण ९. अनिवृत्तिकरण १०. सूक्ष्मसांपराय ११. उपशांतकषाय १२. क्षीणकषाय १३. सयोगिकेवली और १४. अयोगिकेवली ये चौदह गुणस्थान हैं।

इस ग्रंथ में मैंने तीन महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में सात सूत्र हैं जो कि ग्रंथ की पीठिका—भूमिकारूप हैं। दूसरे महाधिकार सत्प्ररूपणा के अंतर्गत १६ सूत्रों में चौदह गुणस्थानों का वर्णन है एवं तृतीय महाधिकार में मार्गणाओं में गुणस्थानों की व्यवस्था करते हुए विस्तार से १५४ सूत्र लिए हैं।

इस प्रथम ग्रंथ में प्रारंभ में पंच परमेष्ठियों के वर्णन में एक सुन्दर प्रश्नोत्तर धवला टीका में आया है जिसे मैंने जैसे का तैसा लिया है। यथा—

''संपूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेत् ?

---

१. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वित) पु. १, पृ. ४७।

न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदसत्त्वापत्तेः.....। इत्यादि।

शंका—संपूर्णरत्न—पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव है, रत्नों का एकदेश देव नहीं हो सकता है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि रत्नत्रय के एकदेश में देवपने का अभाव होने पर उसकी संपूर्णता में भी देवपना नहीं बन सकता है।

शंका—आचार्य आदि में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें एकदेशपना ही है, पूर्णता नहीं है ?

समाधान—यह कथन समुचित नहीं है, क्योंकि पलालराशि—घास की राशि को जलाने का कार्य अग्नि के एक कण में भी देखा जाता है इसलिए आचार्य, उपाध्याय और साधु भी देव हैं[१]।"

यह समाधान श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही उत्तम बताया है।

प्रथम पुस्तक 'सत्प्ररूपणाग्रंथ' की टीका को पूर्ण करते समय मैंने उस स्थान का विवरण दे दिया है। यथा—

''वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां खिष्ट्राब्दे षण्णवत्यधिकैकोनविंशतिशततमे पंचविशे दिनांके द्वितीयमासि (२५-२-१९९६) राजस्थान प्रान्ते 'पिडावानामग्रामे' श्री पार्श्वनाथसमवसरणमंदिरशिलान्यासस्य मंगलावसरे एतत्सत्प्ररूपणाग्रन्थस्य 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां' पूरयन्त्या मया महान् हर्षोऽनुभूयते। टीकासहितोऽयं ग्रन्थो मम श्रुतज्ञानस्य पूर्त्यै भूयात्।''

पुनः वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईसवें वर्ष में ही फाल्गुन शुक्ला सप्तमी तिथि को ईसवी सन् १९९६ के द्वितीय मास की २५ तारीख को राजस्थान प्रान्त के पिड़ावा ग्राम में श्रीपार्श्वनाथ समवसरण मंदिर के शिलान्यास के मंगल अवसर पर इस 'सत्प्ररूपणा' ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीका' को पूर्ण करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। टीका सहित यह सत्प्ररूपणा नामक 'षट्खण्डागम' ग्रंथ मेरे श्रुतज्ञान की पूर्ति के लिए होवे, यही मेरी प्रार्थना है।

पुस्तक २—आलाप अधिकार

यह द्वितीय ग्रंथ सत्प्ररूपणा के ही अंतर्गत है। इसमें सूत्र नहीं हैं।

''संपहि संत-सुतविवरण-समत्ताणंतरं तेसिं परुवणं भणिस्सामो।''

सत्प्ररूपणा के सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने पर अनंतर अब उनकी प्ररूपणा का वर्णन करते हैं—

शंका—प्ररूपणा किसे कहते हैं ?

समाधान—सामान्य और विशेष की अपेक्षा गुणस्थानों में, जीवसमासों में, पर्याप्तियों में, प्राणों में, संज्ञाओं में, गतियों में, इन्द्रियों में, कायों में, योगों में, वेदों में, कषायों में, ज्ञानों में, संयमों में, दर्शनों में, लेश्याओं में, भव्यों में, अभव्यों में, संज्ञी-असंज्ञियों में, आहारी-अनाहारियों में और उपयोगों में पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषणों से विशेषित करके जो जीवों की परीक्षा की जाती है, उसे प्ररूपणा कहते हैं। कहा भी है—

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग, इस प्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएं कही गई हैं।

इनके कोष्ठक गुणस्थानों के एवं मार्गणाओं के बनाये गये हैं।

---

१. षट्खण्डागम, सिद्धान्तचिन्तामणि टीकासमन्वित, पु. १।

गुणस्थान १४ हैं, जीवसमास १४ हैं — एकेन्द्रिय के बादर-सूक्ष्म ऐसे २, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ऐसे ३, पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी ऐसे २, ये ७, हुए इन्हें पर्याप्त-अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ हुए। पर्याप्ति ६ — आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। प्राण १० हैं — पांच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास। संज्ञा ४ हैं — आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। गति ४ हैं — नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। इन्द्रियां ५ हैं — एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति। काय ६ हैं — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय। योग १५ हैं — सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग। वेद ३ हैं — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। कषाय ४ हैं — क्रोध, मान, माया, लोभ। ज्ञान ८ हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि। संयम ७ हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, देशसंयम और असंयम। दर्शन ४ हैं — चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। लेश्या ६ हैं — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। भव्य मार्गणा २ हैं — भव्यत्व और अभव्यत्व। सम्यक्त्व ६ हैं — औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र। संज्ञी मार्गणा के २ भेद हैं — संज्ञी, असंज्ञी। आहार मार्गणा २ हैं — आहार, अनाहार। उपयोग के २ भेद हैं — साकार और अनाकार।

इस ग्रंथ को मैंने दो महाधिकारों में विभक्त किया है। इसमें कुल ५४५ कोष्ठक — चार्ट हैं। उदाहरण के लिए पांचवें गुणस्थान का एक चार्ट दिया जा रहा है —

नं. १३ संयतासंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ देश.	१ सं.प.	६	१०	४	२ म. ति.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व. ४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ संयमा.	३ के.द. विना.	द्र.३ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

इनमें से संयतासंयत के कोष्ठक में —

गुणस्थान १ है — पाँचवां देशसंयत। जीवसमास १ है — संज्ञीपर्याप्त। पर्याप्तियाँ छहों हैं, अपर्याप्तियाँ नहीं है। प्राण १० हैं। संज्ञायें ४ हैं। गति २ हैं — मनुष्य, तिर्यंच। इंद्रिय १ है — पंचेन्द्रिय। काय १ है — त्रसकाय। योग ९ हैं — ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, १ औदारिक काययोग। वेद ३ हैं। कषाय ४ हैं। ज्ञान ३ हैं — मति, श्रुत, अवधि। संयम १ है — संयमासंयम। दर्शन ३ हैं — केवलदर्शन के बिना। लेश्या द्रव्य से — वर्ण से छहों हैं, भावलेश्या शुभ ३ हैं। भव्यत्व १ है। सम्यक्त्व ३ हैं — औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। संज्ञीमार्गणा १ है — संज्ञी। आहार मार्गणा १ है — आहारक। उपयोग २ हैं — साकार और अनाकार। यही सब चार्ट में दिखाया गया है।

इस प्रकार यह दूसरी पुस्तक का सार अतिसंक्षेप में बताया गया है।

पुस्तक ३ — द्रव्यप्रमाणानुगम

इस ग्रंथ में श्री भूतबलि आचार्य वर्णित सूत्र हैं अब यहाँ से संपूर्ण 'षट्खण्डागम' सूत्रों की रचना इन्हीं श्रीभूतबलि आचार्य द्वारा लिखित है। कहा भी है —

''संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव पदिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह[१] — ''

जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं के चौदहों गुणस्थानों के — चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण — संख्या के ज्ञान को कराने के लिए श्रीभूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं —

इसमें प्रथम सूत्र —

''दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।।१।।

द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ — गुणस्थान और आदेश — मार्गणा इन दोनों की अपेक्षा से उन-उन में जीवों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रंथ में भी मैंने दो अनुयोगद्वार लिये हैं — द्रव्यप्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम। अतः इन दोनों में चार महाधिकार किये हैं। क्षेत्रानुगम में तृतीय महाधिकार में ४ सूत्र एवं चतुर्थ महाधिकार में ८८ सूत्र हैं, ऐसे कुल सूत्र ९२ हैं। दोनों अनुयोगद्वारों में सूत्र १९२+९२=२८४ हैं। द्रव्यप्रमाणानुगम में प्रथम महाधिकार में १४ सूत्र हैं एवं द्वितीय में १७८ हैं, ऐसे कुल सूत्र १९२ हैं।

चौदह गुणस्थानों में जीवों की संख्या बतलाते हैं —

प्रथम गुणस्थान में जीव अनंतानंत हैं। द्वितीय गुणस्थान में ५२ करोड़ हैं। तृतीय गुणस्थान में १०४ करोड़ हैं। चतुर्थ गुणस्थान में सात सौ करोड़ हैं। पाँचवे गुणस्थान में १३ करोड़ हैं।

प्रमत्तसंयत नाम के छठे गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान के महामुनि एवं अरहंत भगवान 'संयत' कहलाते हैं। उन सबकी संख्या मिलाकर 'तीन कम नव करोड़' है। धवला टीका में कहा है —

''एवं परुविदसव्वसंजदरासिमेकट्ठे कदे अट्ठकोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्स-णवसद-सत्ताणउदिमेत्तो होदि[१]।''

इसी तृतीय पुस्तक में दूसरा एक और मत प्राप्त हुआ है —

''एदे सव्वसंजदे एयट्ठे कदे सत्तरसद-कम्मभूमिगद-सव्वरिसओ भवंति। तेसिं पमाणं छक्कोडीओ णवणउइलक्खा णवणउदिसहस्सा णवसयछण्णउदिमेत्तं हवदि[२]।'' सर्वसंयतों की संख्या छह करोड़, निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नव सौ छ्यानवे है।

इन दोनों मतों को श्री वीरसेनाचार्य ने उद्धृत किया है।

वर्तमान में प्रसिद्धि में 'तीन कम नव करोड़' संख्या ही है।

इन सर्वमुनियों को नमस्कार करके यहाँ इस ग्रंथ का किंचित् सार दिया है। इसकी सिद्धान्तचिंतामणि टीका में मैंने अधिकांश गणित प्रकरण छोड़ दिया है, जो कि धवलाटीका में द्रष्टव्य है।

श्री वीरसेनाचार्य ने आकाश को क्षेत्र कहा है। आकाश का कोई स्वामी नहीं है, इस क्षेत्र की उत्पत्ति में

१. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९७। २. षट्खण्डागम, धवलाटीकासमन्वित, पु. ३, पृ. ९२।

कोई निमित्त भी नहीं है यह स्वयं में ही आधार-आधेयरूप है। यह क्षेत्र अनादिनिधन है और भेद की अपेक्षा लोकाकाश-अलोकाकाश ऐसे दो भेद हैं। इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से क्षेत्र का वर्णन किया है।

क्षेत्र में गुणस्थानवर्ती जीवों को घटित करते हुए कहा है—

''ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे।।२।।

मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में हैं ? सर्वलोक में हैं।।२।।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभाए।।३।।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवलीपर्यंत कितने क्षेत्र में हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।।३।।

इसमें एक प्रश्न हुआ है—

लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, उसमें अनंतानंत जीव कैसे समायेंगे ?

यद्यपि लोक असंख्यात प्रदेशी है फिर भी उसमें अवगाहनशक्ति विशेष है जिससे उसमें अनंतानंत जीव एवं अनंतानंत पुद्गल समाविष्ट हैं। जैसे मधु से भरे हुए घड़े में उतना ही दूध भर दो, उसी में समा जायेगा[१]।

इस अनुयोगद्वार में स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद ऐसे तीन भेदों द्वारा जीवों के क्षेत्र का वर्णन किया है।

इस ग्रंथ की पूर्ति मैंने मांगीतुंगी तीर्थ पर श्रावण कृ. १० को ईसवी सन् १९९६ में की है।

पुस्तक ४—स्पर्शन-कालानुगम

इस चतुर्थ ग्रंथ—पुस्तक में स्पर्शनानुगम एवं कालानुगम इन दो अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इन दोनों की सूत्र संख्या १८५+३४२=५२७ है।

स्पर्शनानुगम—इसमें भी मैंने गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार किये हैं। यह स्पर्शन भूतकाल एवं वर्तमानकाल के स्पर्श की अपेक्षा रखता है। पूर्व में जिसका स्पर्श किया था और वर्तमान में जिसका स्पर्श कर रहे हैं, इन दोनों की अपेक्षा से स्पर्शन का कथन किया जाता है।

स्पर्शन में छह प्रकार के निक्षेप घटित किये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावस्पर्शन।

'तत्र स्पर्शनशब्दः' नाम स्पर्शनं निक्षेपः, अयं द्रव्यार्थिकनयविषयः।

सोऽयं इति बुद्धया अन्यद्रव्येण सह अन्यद्रव्यस्य एकत्वकरणं स्थापनास्पर्शनं यथा घटपिठरादिषु अयं ऋषभोऽजितः संभवोऽभिनंदनः इति। एषोऽपि द्रव्यार्थिकनयविषयः[२]।''

स्पर्शन शब्द नामस्पर्शन है। यह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह वही है, ऐसी बुद्धि से अन्य द्रव्य के साथ अन्यद्रव्य का एकत्व करना स्थापनास्पर्शन निक्षेप है जैसे घट आदि में ये ऋषभदेव हैं, अजितनाथ हैं, संभवनाथ हैं, अभिनंदननाथ हैं इत्यादि। यह भी द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इत्यादि निक्षेपों का वर्णन है।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से प्ररूपणा करते हुए कहा है—

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणांतिक-उपपादगतमिथ्यादृष्टियों ने भूतकाल एवं वर्तमानकाल से सर्वलोक को स्पर्श किया है।

इसी प्रकार गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों के भूतकालीन, वर्तमानकालीन स्पर्शन का वर्णन किया है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. २३। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. १४२।

कालानुगम—इसमें भी गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार कहे हैं। काल को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ऐसे चार भेद रूप से कहा है पुनश्च—'नो आगमभावकाल' से इस ग्रंथ में वर्णन किया है।

यह काल अनादि अनंत है, एक विध है, यह सामान्य कथन है। काल के भूत, वर्तमान और भविष्यत् की अपेक्षा तीन भेद हैं।

एक प्रश्न आया है—

स्वर्गलोक में सूर्य के गति की अपेक्षा नहीं होने से वहां मास, वर्ष आदि का व्यवहार कैसे होगा ?

तब आचार्यदेव ने समाधान दिया है—

यहाँ के व्यवहार की अपेक्षा ही वहाँ पर 'काल' का व्यवहार है। जैसे जब यहाँ 'कार्तिक' आदि मास में आष्टान्हिक पर्व आते हैं, तब देवगण नंदीश्वर द्वीप आदि में पूजा करने पहुँच जाते हैं इत्यादि।

नाना जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है।।२।।

एकजीव की अपेक्षा किसी का अनादिअनंत है, किसी का अनादिसांत है, किसी का सादिसांत है। इनमें से जो सादि और सांत काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है। एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव का सादिसांत काल जघन्य से अंतर्मुहूर्त है[१]।।३।।

वह इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतजीव, परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त काल रह करके, फिर भी सम्यक्त्वमिथ्यात्व को अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है[१]।

इस प्रकार यह कालानुगम का संक्षिप्त सार दिखाया है।

इस ग्रंथ की टीका मैंने मांगीतुंगी क्षेत्र पर भाद्रपद शु. ३, वी.सं. २५२२, दिनाँक १५-९-१९९६ को लिखकर पूर्ण की है।

पुस्तक ५—अन्तर-भाव-अल्पबहुत्वानुगम

इस ग्रंथ में अन्तरानुगम में ३९७ सूत्र हैं, भावानुगम में ९३ सूत्र हैं एवं अल्पबहुत्वानुगम में ३८२ सूत्र हैं। इस प्रकार ३९७+९३+३८२=८७२ सूत्र हैं।

अन्तरानुगम—इस ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मैंने दो महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में अंतर का निरूपण है। द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में अंतर दिखाया गया है।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छहविध निक्षेप हैं। अंतर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची हैं। इस प्रकार के अन्तर के अनुगम को अन्तरानुगम कहते हैं।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है।।३।।

जैसे एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम में बहुत बार परिवर्तित होता हुआ परिणामों के निमित्त से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अंतर्मुहूर्त काल

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. ३२४।

तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वगुणस्थान का अंतर प्राप्त हो गया।

मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम काल है।।४।।

इन ग्रंथों के स्वाध्याय में जो आल्हाद उत्पन्न होता है, वह असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का कारण है। यहाँ तो मात्र नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

भावानुगम—इसमें भी महाधिकार दो हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनकी अपेक्षा यह भाव चार प्रकार का है। इसमें भी भावनिक्षेप के आगमभाव एवं नोआगमभाव ऐसे दो भेद हैं। नोआगमभाव नामक भावनिक्षेप के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पाँच भेद हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि में कौन सा भाव है ?

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है।।५।।

यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से ये भाव कहे हैं। यद्यपि यहाँ औदयिक भावों में से गति, कषाय आदि भी हैं किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता इसलिए उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

अल्पबहुत्वानुगम—इस अनुयोगद्वार के प्रारंभ में मैंने गद्यरूप में श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। इसमें भी दो महाधिकार विभक्त किये हैं।

इस अल्पबहुत्व में गुणस्थान और मार्गणाओं में सबसे अल्प कौन हैं ? और अधिक कौन हैं ? यही दिखाया गया है। यथा—

सामान्यतया—गुणस्थान की अपेक्षा से अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं तथा अन्य सब गुणस्थानों के प्रमाण से अल्प हैं[१]।।२।।

और 'मिथ्यादृष्टि सबसे अधिक अनंतगुणे हैं[२]।।१४।।

इस ग्रंथ में भी बहुत से महत्वपूर्ण विषय ज्ञातव्य हैं। जैसे कि-"दर्शन मोहनीय का क्षपण करने वाले—क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करने वाले जीव नियम से मनुष्यगति में होते हैं।"

जिन्होंने पहले तिर्यंचायु का बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व के साथ तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि भोगभूमि को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है[३]।"

यह सभी साररूप अंश मैंने यहाँ दिये हैं। अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार इन-इन ग्रंथों का स्वाध्याय श्रुतज्ञान की वृद्धि एवं आत्मा में आनंद की अनुभूति के लिए करना चाहिए।

इस ग्रंथ की टीका की पूर्ति मैंने अंकलेश्वर-गुजरात में मगसिर कृ. ७, वीर नि. सं. २५२३, दिनाँक २-१२-१९९६ को की है।

पुस्तक ६—जीवस्थान चूलिका

इस ग्रंथ में चूलिका के नौ भेद हैं—१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, २. स्थान समुत्कीर्तन ३. प्रथम महादण्डक ४. द्वितीय महादण्डक ५. तृतीय महादण्डक ६. उत्कृष्टस्थिति ७. जघन्यस्थिति ८. सम्यक्त्वोत्पत्ति एवं ९. गत्यागती चूलिका।

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २४३-२५२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २५६।

इसमें क्रमशः सूत्रों की संख्या—४६+११७+२+२+४४+४३+१६+२४३=५१५ है।

चूलिका—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारों के विषय—स्थलों के विवरण के लिए यह चूलिका नामक अधिकार आया है।

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन—इस चूलिका में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियों का वर्णन करके उनके १४८ भेदों का भी निरूपण किया है।

२. स्थानसमुत्कीर्तन—स्थान, स्थिति और अवस्थान ये तीनों एकार्थक हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण इनका भी अर्थ एक ही है। स्थान की समुत्कीर्तना—स्थान समुत्कीर्तन है।

पहले प्रकृति समुत्कीर्तन में जिन प्रकृतियों का निरूपण कर आये हैं, उन प्रकृतियों का क्या एक साथ बंध होता है ? अथवा क्रम से होता है ? ऐसा पूछने पर इस प्रकार होता है। यह बात बतलाने के लिए यह स्थान समुत्कीर्तन है।

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि के अथवा सासादन के, सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, असंयतसम्यग्दृष्टि के, संयतासंयत के और संयत के होता है। ऐसे यहाँ छह स्थान ही विवक्षित हैं। क्योंकि 'संयत' पद से छठे, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती संयतों को लिया है। अयोगकेवली गुणस्थान में बंध का ही अभाव है अतः उन्हें नहीं लिया है।

जैसे ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियों का बंध छहों स्थानों में अर्थात् दशवें गुणस्थान तक संयतों में बंध होता है इत्यादि।

३. प्रथम महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के लिए अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा बंधने वाली प्रकृतियों का ज्ञान कराने के लिए यहाँ तीन महादण्डकों की प्ररूपणा आई है।

इसमें प्रथम महादण्डक का कथन सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने के लिए हुआ है। विशेषता यह है कि—

''**एदस्सवगमेण महापावक्खयस्सुवलंभादो**[१]।''

क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

४. द्वितीय महादण्डक—प्रकृतियों के भेद से और स्वामित्व के भेद से इन दोनों दण्डकों में भेद कहा गया है।

५. तृतीय महादण्डक—प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथ्वी का नारकी मिथ्यादृष्टि जीव, पांचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि १६ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन प्रकृतियों को बांधता है इत्यादि।

६. उत्कृष्ट कर्मस्थिति—कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

७. जघन्यस्थिति—उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है। इत्यादि का विस्तार से कथन है।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका—जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों को बाँधता हुआ, जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के द्वारा सत्त्वस्वरूप होते हुए और उदीरणा को प्राप्त होते हुए यह जीव

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.१३३।

सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

"प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है[१]।।४।।"

आगे—"दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करने के लिए आरंभ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरंभ करता है ? अढ़ाई द्वीप समुद्रों में स्थित पंद्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस काल में जिनकेवली और तीर्थंकर होते हैं, वहाँ उस काल में आरंभ करता है[२]।।११।।"

ऐसे दो नमूने प्रस्तुत किये हैं।

९. गत्यागती चूलिका—इसमें सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों को विशेषरूप से वर्णित किया है—

प्रश्न हुआ-"तिर्यंच मिथ्यादृष्टि कितने कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ?।।२१।।

तीन कारणों से—कोई जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनबिंबों के दर्शन से।।२२।।

पुनः प्रश्न होता है—जिनबिंब दर्शन प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्ति में कारण कैसे है ? उत्तर देते हैं—

"जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो। तथा चोक्तं—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा[३]।।१।।"

जिनप्रतिमाओं के दर्शन से निधत्त और निकाचितरूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिंब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण देखा जाता है। कहा भी है—जिनेन्द्रदेवों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजरपर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं।

२१६ सूत्र की टीका में अन्य ग्रंथों के उद्धरण भी दिये गये हैं। नमूने के लिए प्रस्तुत हैं—

आत्मज्ञातृतया ज्ञानं, सम्यक्त्वं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः[४]।।

इस प्रथमखण्ड 'जीवस्थान' की छठी पुस्तक की टीका मैंने अपनी दीक्षाभूमि "माधोराजपुरा" राजस्थान में पूर्ण की है। उसमें मैंने संक्षेप में तीन श्लोक दिये हैं—

देवशास्त्रगुरुन् नत्वा, नित्य भक्त्या त्रिशुद्धितः। षट्खण्डागमग्रंथोऽयं, वन्द्यते ज्ञानवृद्धये।।१।।

द्वित्रिपंचद्विवीराब्दे, फाल्गुनेऽसितपक्षाके। माधोराजपुराग्रामे, त्रयोदश्यां जिनालये।।२।।

नमः श्रीशांतिनाथाय, सर्वसिद्धिप्रदायिने। यस्य पादप्रसादेन, टीकेयं पर्यपूर्यत।।३।।

मैंने शरदपूर्णिमा को वी.सं.२५२१ में हस्तिनापुर में यह टीका लिखना प्रारंभ किया था। मुझे प्रसन्नता है कि फाल्गुन कृष्णा १३, वी. नि. सं. २५२३, दि. ७-३-१९९७ को माधोराजपुरा में मैंने यह प्रथम खंड की टीका पूर्ण की है। यह टीका मांगीतुंगी यात्रा विहार के मध्य आते-जाते लगभग ३६ सौ किमी. के मध्य में मार्ग में अधिकरूप में लिखी गई है।

मैंने इसे सरस्वती देवी की अनुकंपा एवं माहात्म्य ही माना है। इसमें स्वयं में मुझे 'आश्चर्य' हुआ है। जैसा कि मैंने लिखा है—

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २०६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.२४२।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ.४२८। ४. तत्त्वार्थसार का उद्धरण।

''पुनश्च हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे विनिर्मितकृत्रिमजंबूद्वीपस्य सुदर्शनमेर्वादिपर्वतामुपरि विराजमान-सर्वजिनबिंबानि मुहुर्मुहुः प्रणम्य यत् सिद्धान्तचिंतामणिटीकालेखनकार्यं एकविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे मया प्रारब्धं, तदधुना मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रस्य यात्रायाः मंगलविहारकाले त्रयोविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गे एव निर्विघ्नतया जिनदेवकृपाप्रसादेन महद्हर्षोल्लासेन समाप्यते। एतत् सरस्वत्या देव्यः अनुकंपामाहात्म्यमेव विज्ञायते, मयैव महदाश्चर्यं प्रतीयते[१]।''

इस खंड में कुल सूत्र संख्या १७७+१२८४+५२७+८७२+५१५=२३७५ है।

मेरे द्वारा लिखित पेजों की संख्या १६१+८८+१३०+१८९+१९३+१८७=९४८ है।

इस प्रकार 'जीवस्थान' नामक प्रथम खण्ड (अंतर्गत छह पुस्तकों) का यह संक्षिप्त सार मैंने लिखा है।

द्वितीय खण्ड — क्षुद्रकबंध

इसे प्राकृत भाषा में 'खुद्दाबंध' कहते हैं एवं संस्कृत भाषा में 'क्षुद्रकबंध' नाम है।

इसे क्षुद्रक बंध कहने का अभिप्राय यह है कि —

आगे स्वयं भूतबलि आचार्य ने 'तीस हजार' सूत्रों में 'महाबंध' नाम से छठा खण्ड स्वतंत्र बनाया है। इसीलिए १५८९ सूत्रों में रचित यह ग्रंथ 'क्षुद्रकबंध' नाम से सार्थक है।

इस ग्रंथ की टीका को मैंने 'पद्मपुरा' तीर्थ पर प्रारंभ किया था अतः मंगलाचरण में श्रीपद्मप्रभ भगवान को नमस्कार किया है। यथा —

श्रीपद्मप्रभदेवस्य, विश्वातिशयकारिणे।
नमोऽभीप्सितसिद्ध्यर्थं, ते च दिव्यध्वनिं नुमः।।१।।

इस खण्ड में जीवों की प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोड़कर मार्गणा स्थानों में की गई है। इन ग्यारह अनुयोगद्वारों के नाम — १. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व २. एक जीव की अपेक्षा काल ३. एक जीव की अपेक्षा अन्तर ४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा काल ९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम। अंत में ग्यारहों अनुयोगद्वारों की चूलिका रूप से 'महादण्डक' दिया गया है। यद्यपि इसमें अनुयोगद्वारों की अपेक्षा ११ अधिकार ही हैं फिर भी प्रारंभ में प्रस्तावनारूप में 'बंधक सत्त्वप्ररूपणा' और अंत में चूलिकारूप में महादण्डक ऐसे १३ अधिकार भी कहे जा सकते हैं।

बंधक सत्त्वप्ररूपणा — इसमें ४३ सूत्र हैं। जिनमें चौदह मार्गणाओं के भीतर कौन जीव कर्मबंध करते हैं और कौन नहीं करते, यह बतलाया गया है।

१. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व — इस अधिकार में मार्गणाओंसंबंधी गुण व पर्याय कौन से भावों से प्रगट होते हैं, इत्यादि विवेचन है।

२. एक जीव की अपेक्षा काल — इस अनुयोगद्वार में प्रत्येकगति आदि मार्गणा में जीव की जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थिति का निरूपण किया गया है।

३. एक जीव की अपेक्षा अंतर — एक जीव का गति आदि मार्गणाओं के प्रत्येक अवान्तर भेद से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल — विरहकाल कितने समय का होता है ?

---

१. षट्खण्डागम (सिद्धांतचिन्तामणि टीका) पु. ६, अंतिम प्रकरण।

४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय—भंग-प्रभेद, विचय-विचारणा, इस अधिकार में भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीव नियम से रहते हैं या कभी रहते हैं या कभी नहीं भी रहते हैं, इत्यादि विवेचना है।

५. द्रव्यप्रमाणानुगम—भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीवों का संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि काल प्रमाणों की अपेक्षा वर्णन है।

६. क्षेत्रानुगम—सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों लोकों के आश्रय से स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है।

७. स्पर्शनानुगम—चौदह मार्गणाओं में सामान्य आदि पांचों लोकों की अपेक्षा वर्तमान और अतीतकाल के निवास को दिखाया है।

८. नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम—नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंत, अनादिसांत, सादि अनंत और सादि सान्त काल भेदों को लक्ष्य करके जीवों की काल प्ररूपणा की गई है।

९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम—मार्गणाओं में नाना जीवों की अपेक्षा बंधकों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

१०. भागाभागानुगम—इसमें मार्गणाओं के अनुसार सर्वजीवों की अपेक्षा बंधकों के भागाभाग का वर्णन है।

११. अल्पबहुत्वानुगम—चौदह मार्गणाओं के आश्रय से जीवसमासों का तुलनात्मक प्रमाण प्ररूपित किया है।

अनन्तर चूलिकारूप 'महादण्डक' अधिकार में गर्भोपक्रांतिक मनुष्य पर्याप्त से लेकर निगोद जीवों तक के जीवसमासों का 'अल्पबहुत्व' निरूपित है।

इस प्रकार क्रमशः इस द्वितीय खण्ड में सूत्रों की संख्या—

४३+९१+२१६+१५१+२३+१७१+१२४+२७४+५५+६८+८८+२०५+७९=१५९४ है।

मेरे द्वारा सिद्धांतचिंतामणि टीका में पृष्ठ संख्या—२८१ है।

महत्वपूर्ण विषय—इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण विषय आया है, जिसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

''**बादरणिगोदपदिट्ठिदअपदिट्ठिदाणमेत्थ सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिद्दिट्ठा** ?

गोदमो एत्थ पुच्छेयत्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ[१]।''

शंका—वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त जीवों के वनस्पति संज्ञा देखी जाती है। बादरनिगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में 'वनस्पतिसंज्ञा' क्यों नहीं निर्दिष्ट की ?

समाधान—'गौतम गणधर से पूछना चाहिए।' गौतम गणधरदेव बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों की वनस्पति संज्ञा नहीं मानते। हमने यहाँ उनका अभिप्राय व्यक्त किया है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सूत्रों में जैन ग्रंथों में दो मत आये हैं, वहाँ टीकाकारों ने अपना अभिमत न देकर दोनों ही रख दिये हैं।

इस ग्रंथ की टीका का समापन मैंने हस्तिनापुर में 'रत्नत्रयनिलयवसतिका' में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी,

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ७, पृ. ५४१।

वीर नि. संवत् २५२४, दिनाँक-१२-१२-१९९७ को पूर्ण की है।

उसकी संक्षिप्त प्रशस्ति इस प्रकार है—

वीराब्दे दिग्द्विखद्वयंके, शांतिनाथस्य सन्मुखे। रत्नत्रयनिलयेऽस्मिन्, हस्तिनागपुराभिधे।।१।।
षट्खण्डागमग्रंथेऽस्मिन्, खण्डद्वितीयकस्य हि। क्षुद्रकबंधनाम्नोऽस्य, टीकेयं पर्यपूर्यत।।२।।
गणिन्या ज्ञानमत्येयं, टीकाग्रन्थश्च भूतले। जीयात् ज्ञानर्द्धये भूयात् भव्यानां मे च संततम्।।३।।

तृतीय खण्ड—बंधस्वामित्वविचय

पुस्तक ८—

इस तृतीय खण्ड में नाम के अनुसार ही बंध के स्वामी के बारे में विचार किया गया है। यथा—

''जीवकम्माणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगेहि एयत्तपरिणामो बंधो[१]।''

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होता है, वह बंध है और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं।

बंध के स्वामित्व के विचय—विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये एकार्थक शब्द हैं।

वर्तमान में जो साधु या विद्वान् मिथ्यात्व को बंध में 'अकिंचित्कर' कहते हैं उन्हें इन षट्खण्डागम की पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। अनेक स्थलों पर आचार्यों ने कहा है—''मिच्छत्तासंजमकसायजोगभेदेण चत्तारि मूलपच्चया[२]।'' मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के मूलप्रत्यय—मूलकारण हैं।

यहाँ भी गुणस्थानों में बंध के स्वामी का विचार करके मार्गणाओं में वर्णन किया गया है।

सूत्रों में बंध-अबंध का प्रश्न करके उत्तर दिया है। यथा-''पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है [?३]।।५।।

सूत्र में ही उत्तर दिया है—

''मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धसंयत उपशमक व क्षपक तक पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिक काल के अंतिम समय में जाकर इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं[४]।।६।।

यहाँ पाँचवें प्रश्नवाचक सूत्र में टीकाकार ने इस सूत्र को देशामर्शक मानकर तेईस पृच्छायें की हैं—

१. यहाँ क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ? २. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ? ३. या क्या दोनों की साथ में व्युच्छित्ति होती है ? ४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है ? ५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है ? ६. क्या अपने और पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है ? ७. क्या सांतर बंध होता है ? ८. क्या निरंतर बंध होता है ? ९. या क्या सांतर-निरंतर बंध होता है ? १०. क्या सनिमित्तक बंध होता है ? ११. या क्या अनिमित्तक बंध होता है ? १२. क्या गति संयुक्तबंध होती है ? १३. या क्या गति संयोग से रहित बंध होता है ? १४. कितनी गति वाले जीव स्वामी हैं ? १५. और कितनी गति वाले स्वामी नहीं हैं ? १६. बंधाध्वान कितना है—बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक है ? १७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ? १८. क्या प्रथम समय में बंध की

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. २-१६१।
३-४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. ७-१३।

व्युच्छित्ति होती है ? १९. या अप्रथम अचरिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ? २०. क्या बंध सादि है ? २१. या क्या अनादि है ? २२. क्या बंध ध्रुव ही होता है ? २३. या क्या अध्रुव होता है ?

इस प्रकार ये २३ पृच्छायें पूछी गईं इस पृच्छा में अंतर्भूत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पुनः इनका उत्तर दिया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ३२४ सूत्र हैं।

इस ग्रंथ की संस्कृत टीका मैंने मार्गशीर्ष कृ. १३ को (दिनाँक १२-१२-९७) हस्तिनापुर में प्रारंभ की थी। उस समय 'श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' की योजना बनाई थी। भगवान ऋषभदेव का धातु का एक सुंदर ८'×८' फुट का समवसरण बनवाया गया था। इसके उद्घाटन की तैयारियाँ चल रही थीं। इसी संदर्भ में मैंने मंगलाचरण में तीन श्लोक लिखे थे। यथा—

सिद्धान् नष्टाष्टकर्मारीन्, नत्वा स्वकर्महानये। बंधस्वामित्वविचयो, ग्रंथः संकीर्त्यते मया।।१।।
श्रीमत्-ऋषभदेवस्य, श्रीविहारोऽस्ति सौख्यकृत्। जगत्यां सर्वजीवाना-मतो देव! जयत्विह।।२।।
यास्त्यनन्तार्थगर्भस्था, द्रव्यभावश्रुतान्विता। सापि सूत्रार्थयुङ्मान्ये! श्रुतदेवि! प्रसीद नः।।३।।

पुनः दिल्ली में मैंने द्वि. ज्येष्ठ शु. ५ श्रुतपंचमी वीर नि.सं. २५२५ को (दि. १८-६-१९९९ को) डेढ़ वर्ष में प्रीतविहार में श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में पूर्ण किया है।

इस ग्रंथ के अंत में मैंने ध्यान करने के लिए १४८ कर्मप्रकृतियों से विरहित १४८ सूत्र बनाये हैं। यथा—

''**मतिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम् ।।१।।**

पूर्णता का अंतिम श्लोक—

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।
श्री शांतिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम् ।।८।।

इस प्रकार संक्षेप में इस तृतीय खण्ड का सार दिया है।

चतुर्थ—वेदना खण्ड

पुस्तक ९—

इस चतुर्थ और पंचम खण्ड में जो विषय विभाजित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

अग्रायणीय पूर्व के अर्थाधिकार चौदह हैं—१. पूर्वांत २. अपरान्त ३. ध्रुव ४. अध्रुव ५. चयनलब्धि ६. अध्रुवसंप्रणिधान ७. कल्प ८. अर्थ ९. भौमावयाद्य, १०. कल्पनिर्याण ११. अतीतकाल १२. अनागतकाल १३. सिद्ध और १४. बुद्ध[१]।

यहाँ 'चयनलब्धि' नाम के पाँचवें अधिकार में 'महाकर्म प्रकृतिप्राभृत' संगृहीत है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। १. कृति २. वेदना ३. स्पर्श ४. कर्म ५. प्रकृति ६. बंधन ७. निबंधन ८. प्रक्रम ९. उपक्रम १०. उदय ११. मोक्ष १२. संक्रम १३. लेश्या १४. लेश्याकर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व १८. भवधारणीय १९. पुद्गलात्त २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व[२]।

इन चौबीस अनुयोगद्वारों को षट्खण्डागम की मुद्रित नवमी पुस्तक से लेकर सोलहवीं तक में 'वेदना'

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. २२६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, सूत्र ४५, पृ. १३४।

और 'वर्गणा' नाम के दो खंडों में विभक्त किया है। वेदना खण्ड में ९, १०, ११ और १२ ऐसे चार ग्रंथ हैं।

इस नवमी पुस्तक में मात्र प्रथम 'कृति' अनुयोग द्वार ही वर्णित है। छ्यालिसवें सूत्र में कृति के सात भेद किये हैं—

१. नामकृति २. स्थापनाकृति ३. द्रव्यकृति ४. गणनकृति ५. ग्रन्थकृति ६. करणकृति और ७. भावकृति।

इन कृतियों का विस्तार से वर्णन करके अंत में कहा है कि—यहाँ 'गणनकृति' से प्रयोजन है[१]।

इस ग्रंथ में श्रीभूतबलि आचार्य ने 'णमो जिणाणं' आदि गणधरवलय मंत्र लिए हैं जो कि श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं। यहाँ "णमो जिणाणं" से लेकर "णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।" चवालीस मंत्र लिए हैं। अन्यत्र 'पाक्षिक प्रतिक्रमण' एवं 'प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी' टीकाग्रंथ तथा भक्तामर स्तोत्र ऋद्धिमंत्र आदि में अड़तालीस मंत्र लिये गये हैं।

इन ४८ मंत्रों को 'श्रीगौतमस्वामी' द्वारा रचित कृतियों में इसी ग्रंथ में दिया गया है।

इस नवमी पुस्तक में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही विस्तार से इन मंत्रों का अर्थ स्पष्ट किया है। अनंतर 'सिद्धान्त ग्रंथों' के स्वाध्याय के लिए द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धि का विवेचन विस्तार से किया है।

इस ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका मैंने शरदपूर्णिमा वी.नि.सं. २५२५ को (२४-१०-९९ को) दिल्ली में राजाबाजार के दिगम्बर जैन मंदिर में प्रारंभ की थी।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत गणधरवलय मंत्रों की टीका लिखते समय मुझे एक अपूर्व ही आल्हाद प्राप्त हुआ है। इसकी पूर्णता मैंने आश्विन शु.१५—शरदपूर्णिमा वीर.नि.सं. २५२६ को (१३-१०-२००० को) दिल्ली में ही प्रीतविहार-श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में की है। जिसका अंतिम श्लोक निम्नलिखित है—

अहिंसा परमो धर्मो, यावद् जगति वर्त्स्यते।
यावन्मेरुश्च टीकेयं, तावन्नंद्याच्च नः श्रियै।।९।।

इस प्रकार नवमी पुस्तक का किंचित् सार लिखा गया है।

पुस्तक १०—

इस ग्रंथ में 'वेदना' नाम का द्वितीय अनुयोगद्वार है। इस वेदनानुयोग द्वार के १६ भेद हैं—१. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान[२]।

इस दशवीं पुस्तक में प्रारंभ के ५ अनुयोगद्वारों का वर्णन है। सूत्र संख्या ३२३ है। आगे ११वीं और १२वीं पुस्तक में सभी वेदनाओं का वर्णन होने से इस तृतीय खण्ड को वेदनाखण्ड कहा है।

यहाँ प्रथम 'वेदना निक्षेप' के भी नामवेदना, स्थापनावेदना, द्रव्यवेदना और भाववेदना ऐसे निक्षेप की अपेक्षा चार भेद हैं।

दूसरे 'वेदनानयविभाषणा' में नयों की अपेक्षा वेदना को घटित किया है। तीसरे 'वेदनानामविधान' के

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. ४५२। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, सूत्र १।

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की अपेक्षा आठ भेद कर दिये हैं[१]।

वेदना द्रव्यविधान के तीन अधिकार किये हैं—पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इस ग्रंथ में इनका विस्तार से वर्णन है।

इस ग्रंथ में वेदनाक्षेत्रविधान के भी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ऐसे तीन भेद किये हैं।

आश्विन शु. १५—शरदपूर्णिमा (१३-१०-२०००) को दिल्ली में मैंने टीका लिखना प्रारंभ किया था पुनः

इस ग्रंथ की टीका का समापन शौरीपुर भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि में वैशाख कृ. ७, वी.सं. २५२८, दिनाँक ३-५-२००२ को किया है। मेरे द्वारा लिखित पृ. संख्या ११८ हैं।

इस प्रकार संक्षिप्त सार दिया गया है।

पुस्तक नं. ११—

इस ११वें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन है। सूत्र इसमें ५९३ हैं और पृ. संख्या २०० है। इसके पूर्वार्द्ध की पूर्णता "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग" श्री ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ पर की है एवं उद्धरार्ध को अर्थात् पूरे ग्रंथ का समापन पावापुरी-भगवान महावीर की निर्वाणभूमि पर श्रावण शु. ७, वी.सं. २५२९, दिनाँक ४-८-२००३ को किया है।

पुस्तक १२—

इस ग्रन्थ में वेदनाअनुयोगद्वार के १६ भेदों में से ८वें से लेकर १६वें तक भेद वर्णित हैं—८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान।

इन नव वेदना अनुयोगद्वारों का इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णन है। इसमें सूत्र संख्या ५३३ है।

'वेदनाप्रत्ययविधान' में जीवहिंसा, असत्य आदि प्रत्यय—निमित्त से ज्ञानावरण आदि कर्मों की वेदना होती है। जैसे कि—

मुसावादपच्चए।।३।।

.....मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचनसमूह असत् वचन है इत्यादि।

ऐसे संपूर्ण वेदनाओं का वर्णन किया गया है।

इसमें सूत्र ५३३ हैं, पृ. १७५ हैं।

इस ग्रंथ की टीका मैंने कुण्डलपुर तीर्थ पर पौष कृ. ११ वी.नि.सं. २५३० के दिन पूर्ण की है। इसी संदर्भ में मैंने लिखा है—

अस्यां पौषकृष्णैकादश्यां तिथौ काशीदेशे वाराणस्यां नगर्यां महानृपतेः अश्वसेनस्य महाराज्ञ्यः वामादेव्यो गर्भात् भगवान् पार्श्वनाथो जज्ञे। उग्रवंशशिरोमणिः मरकतमणिसन्निभः त्रयस्त्रिंशत्तमस्तीर्थंकरोऽयं अस्मात् वीरनिर्वाणसंवत्सरात् द्विसहस्र-अष्टशताशीतिवर्षपूर्वं अवततार।

उक्तं च तिलोयपण्णत्तिग्रंथे—

अट्ठत्तरिअधियाए वेसदपरिमाणवासअदिरित्ते।
पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्तीवड्ढमाणस्स ।।५७७।।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, पृ. १३।

भगवान पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के २७८ वर्ष बाद वर्धमान भगवान की उत्पत्ति हुई है तथा भगवान महावीर को जन्म लिये २६०२ वर्ष हुए अतः २७८ में वह संख्या जोड़ देने से २७८+२६०२=२८८० वर्ष हो गये अतः मैंने यह घोषणा की थी कि आगे आने वाले पौष कृ. ११ (६-१-२००५) को भगवान पार्श्वनाथ का 'तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' प्रारंभ करें पुनः एक वर्ष तक सारे भारत में भगवान पार्श्वनाथ का गुणगान करें।

इस प्रकार इस बारहवीं पुस्तक का विषय संक्षेप में लिखा है।

पंचम खण्ड — वर्गणाखण्ड

पुस्तक १३ —

नवमीं पुस्तक में चयनलब्धि के 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' के 'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि चौबीस अनुयोगद्वार कहे गये हैं। वेदना खण्ड में मात्र 'कृति और वेदना' ये दो अनुयोगद्वार आये हैं। शेष २२ अनुयोगद्वार इस 'वर्गणाखण्ड' नाम के पांचवें खण्ड में वर्णित हैं। इस खण्ड में भी १३वीं, १४वीं, १५वीं एवं १६वीं ऐसी चार पुस्तकें हैं। इस खण्ड में 'बंधनीय' का आलंबन लेकर वर्गणाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है अतः इसे 'वर्गणाखण्ड' नाम दिया है।

इस तेरहवीं पुस्तक में 'स्पर्श, कर्म और प्रकृति' इन तीन अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इसमें 'स्पर्श अनुयोगद्वार' के सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं-स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्शस्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्शअनंतरविधान, स्पर्शसन्निकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान, स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्शअल्पबहुत्व।[२]

पुनश्च प्रथम भेद 'स्पर्शनिक्षेप' के १३ भेद किये हैं — नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनंतरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बंधस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श[३]।

इस तेरहवें ग्रंथ में सूत्र की टीका के अनंतर मैंने प्रायः 'तात्पर्यार्थ' दिया है। जैसे कि — स्पर्श अनुयोगद्वार में सूत्र २६ में टीका के अनंतर लिखा है।

''अत्र तात्पर्यमेतत्-अष्टसु कर्मसु मोहनीयकर्म एव संसारस्य मूलकारणमस्ति। दर्शनमोहनीय-निमित्तेन जीवा मिथ्यात्वस्य वंशगताः सन्तः अनादिसंसारे परिभ्रमन्ति। चारित्रमोहनीयबलेन तु असंयताः सन्तः कर्माणि बध्नन्ति।

उक्तं च श्री पूज्यपादस्वामिना —

बध्यते मुच्यते जीवः सममः निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ।।

एतज्ज्ञात्वा कर्मस्पर्शकारणभूतमोहरागद्वेषादिविभावभावान् व्यक्त्वा स्वस्मिन् स्वभावे स्थिरीभूय स्वस्थो भवन् स्वात्मोत्थपरमानंदामृतं सुखमनुभवनीयमिति।''

कर्म अनुयोगद्वार में भी प्रथम ही १६ अनुयोगद्वाररूप भेद कहे हैं — कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता, कर्मनाम विधान आदि। पुनश्च कर्मनिक्षेप के दश भेद किये हैं-नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अव्यःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १२, पृ. २७९। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४।

इसमें 'तपःकर्म' के बारह भेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'क्रियाकर्म' में—

''**तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं, चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम**[१]।।२८।।''

यह क्रियाकर्म विधिवत् सामायिक—देववंदना में घटित होता है। इसी सूत्र को उद्धृत करके अनगारधर्मामृत, चारित्रसार आदि ग्रंथों में साधुओं की सामायिक को 'देववंदना' रूप में सिद्ध किया है। इसका स्पष्टीकरण मूलाचार, आचारसार आदि ग्रंथों में भी है। 'क्रियाकलाप' जिसका संपादन पं. पन्नालाल सोनी ब्यावर वालों ने किया था उसमें तथा मेरे द्वारा संकलित (लिखित) 'मुनिचर्या' में भी यह विधि सविस्तार वर्णित है। इन प्रकरणों को लिखते हुए, पढ़ते हुए मुझे एक अद्भुत ही आनंद का अनुभव हुआ है।

तृतीय 'प्रकृति' अनुयोगद्वार में भी सोलह अधिकार कहे हैं—प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान आदि।

इसमें प्रथम प्रकृतिनिक्षेप के चार भेद किये हैं—नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति।

इसमें द्रव्यप्रकृति के दो भेद हैं—आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति। नोआगमद्रव्यप्रकृति के भी दो भेद हैं—कर्मप्रकृति और नोकर्म प्रकृति।

कर्मप्रकृति के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म प्रकृति।

इस तेरहवीं पुस्तक में प्रकृति अनुयोगद्वार में व्यंजनावग्रहावरणीय के ४ भेद किये हैं। धवला टीका में श्री वीरसेनस्वामी ने श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दों के अनेक भेद करके कहा है—

''**सद्दपोग्गला सगुप्पत्तिपदेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्सेण जाव लोगंतं ताव गच्छंति।**

कुदो एदं णव्वदे ?

सुत्ताविरूद्धाइरियवयणादो। ते किं सव्वे सद्दपोग्गला लोगंतं गच्छंति आहो ण सव्वे इति पुच्छिदे सव्वे ण गच्छंति, थोवा चेव गच्छंति।.....

जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि त्ति उवदेसादो[२]।''

शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दशों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्टरूप से लोक के अंतभाग तक जाते हैं।

यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

यह सूत्र के अविरुद्ध व्याख्यान करने वाले आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

क्या वे सब शब्दपुद्गल लोक के अंत तक जाते हैं या सब नहीं जाते ?

सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा—शब्द पर्याय से परिणत हुए प्रदेश में अनंत पुद्गल अवस्थित रहते हैं। दूसरे आकाश प्रदेश में उनसे अनंतगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं।

इस तरह वे अनंतरोपनिधा की अपेक्षा वातवलयपर्यंत सब दिशाओं में उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश के प्रति अनंतगुणे हीन होते हुए जाते हैं।

आगे क्यों नहीं जाते ?

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २८, पृ. ८८ ।

२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २२२।

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वे वातवलय के आगे नहीं जाते हैं। ये सब शब्द पुद्गल एक समय में ही लोक के अंत तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्गल कम से कम दो समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा लोक के अंत को प्राप्त होते हैं।

अष्टसहस्री ग्रंथ में भी शब्द पुद्गलों का आना, पकड़ना, टकराना आदि सिद्ध किया है क्योंकि ये पौद्गलिक हैं — पुद्गल की पर्याय हैं।

इन सभी प्रकरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि —

आज जो शब्द टेलीविजन — दूरदर्शन, रेडियो — आकाशवाणी, टेलीफोन — दूरभाष आदि के द्वारा हजारों किमी. दूर से सुने जाते हैं। टेलीफोन से कई हजार किमी. दूर से वार्तालाप किया जाता है। टेपरेकार्ड, वी.डी.ओ. आदि में भरे जाते हैं, महीनों, वर्षों तक ज्यों की त्यों सुने जाते हैं। यह सब पौद्गलिक चमत्कार है।

वास्तव में ये शब्द मुख से निकलने के बाद लोक के अंत तक फैल जाते हैं। इसीलिए इनका पकड़ना, दूर तक पहुँचाना, भेजना, यंत्रों में भर लेना आदि संभव है।

इन्हीं भावनाओं के अनुसार मैंने ३० वर्ष पूर्व भगवान 'शांतिनाथ स्तुति' में यह उद्गार लिखे थे। यथा —

सुभक्तिवरयंत्रतः स्फुटरवा ध्वनिक्षेपकात्। सुदूरजिनपार्श्वगा भगवतःस्पृशन्ति क्षणात्।
पुनः पतनशीलतोऽवपतिता नु ते स्पर्शनात्। भवन्त्यभिमतार्थदाः स्तुतिफलं ततश्चाप्यते[१]।।२०।।

हे भगवन्! आपकी श्रेष्ठ भक्ति वो ही हुआ ध्वनिविक्षेपण यंत्र, (रेडियो आदि) उससे स्फुट — प्रगट हुईं शब्द वर्गणाएं बहुत ही दूर सिद्धालय में — लोक के अग्रभाग में विराजमान आपके पास जाती हैं और वहाँ आपका स्पर्श करती हैं। पुनः पुद्गलमयी शब्दवर्गणायें पतनशील होने से यहाँ आकर — भक्त के पास आकर आपसे स्पर्शित होने से ही भव्यजीवों के मनोरथ को सफल कर देती हैं, यही कारण है कि इस लोक में स्तुति का फल पाया जाता है अन्यथा नहीं पाया जा सकता था।

इसमें ज्ञानावरण के अंतर्गत श्रुतज्ञानावरण के विषय में कहते हुए 'श्रुतज्ञान' के विषय में बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है।

प्रश्न हुआ है — "श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?

उत्तर दिया है — श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की संख्यात प्रकृतियाँ हैं।

जितने अक्षर हैं और जितने अक्षर संयोग हैं उतनी प्रकृतियां हैं।[२]"

पुनश्च — श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के बीस भेद किये हैं — पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, आदि से पूर्वसमासावरणीय पर्यंत ये बीस भेद हैं।[३] इनसे पहले श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं, जिनके ये आवरण हैं।

उन श्रुतज्ञान के नाम — पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास, ये श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं।

---

१. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से प्रकाशित) पृ. १५१। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४३-४४-४५, पृ. २४५ से। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४८, पृ. २६१।

इस ग्रंथ की टीका के लेखन में मैंने जो परम आल्हाद प्राप्त किया है, वह मेरे जीवन में अचिन्त्य ही रहा है।

एक तो षट्खण्डागमरूपी परम ग्रंथराज, दूसरे श्रीभूतबलि महान आचार्य के सूत्र, तीसरे श्रीवीरसेनाचार्य की धवला टीका और चौथा भगवान महावीर तीर्थ त्रिवेणी का संगम। यही कारण है कि यह ग्रंथ मेरा यहाँ 'तीर्थ त्रिवेणी संगम' में अतिशीघ्र मात्र नव माह में पूर्ण हुआ है।

इस ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य ने अगणित रत्न भर दिये हैं। यथा—**'श्रुतज्ञानमन्तरेण चारित्रानुत्पत्तेः।''**

''द्वादशांगस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राविनाभाविनो मोक्षमार्गत्वेनाभ्युपगमात्।

श्रुतज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए चारित्र की अपेक्षा श्रुत की प्रधानता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अविनाभावी द्वादशांग को मोक्षमार्गरूप से स्वीकार किया गया है।

यहाँ पर ५०वें सूत्र में श्रुतज्ञान के इकतालीस (४१) पर्याय शब्द बताये हैं। जैसे—प्रावचन, प्रवचनीय आदि।

इस ग्रंथ में श्रुतज्ञान के पर्याय, पर्यायसमास आदि बीस भेद किये हैं और उन्हीं का विस्तार किया है।

तब प्रश्न यह हुआ है कि—उन्नीसवां 'पूर्व' और बीसवां 'पूर्वसमास' भेद तो इन बीस भेदों में आ गया है पुनः—

अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचारांग आदि ग्यारह अंग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका, इनका किस श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव होगा ?

तब श्रीवीरसेनस्वामी ने समाधान दिया है कि—

इनका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास में अंतर्भाव होता है अथवा प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान में इनका अंतर्भाव कहना चाहिए परंतु पश्चादानुपूर्वी की विवक्षा करने पर इनका 'पूर्वसमास' श्रुतज्ञान में अंतर्भाव होता है, ऐसा कहना चाहिए[१]।

इस प्रकार इस ग्रंथ में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान का बहुत ही सुन्दर विवेचन है।

अनंतर सर्व कर्मों का वर्णन करके अंत में कहा है कि यहाँ 'कर्म प्रकृति' से ही प्रयोजन है।

यहाँ तक इन १३ ग्रंथों में ५६३० सूत्रों की मेरे द्वारा लिखित संस्कृत टीका के पृष्ठों की संख्या–२८१+१९१+१४०+८३+१२४+२८७+२५७=१३५६+९४८=२३०४ है।

इस प्रकार संक्षेप में इस ग्रंथ का सार दिया है।

पुस्तक १४—

इस ग्रंथ में 'कृति, वेदना' आदि २४ अनुयोगद्वारों में से छठे बंधन अनुयोगद्वार का निरूपण है। सूत्र संख्या ७९७ है। इसमें बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान ये भेद किये हैं। पुनश्च बंध के नामबंध, स्थापनाबंध, द्रव्यबंध और भावबंध ये चार भेद कहे हैं।

भावबंध के आगमभावबंध और नोआगमभावबंध दो भेद हैं।

आगम भावबंध के स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रंथसम, नामसम और घोषसम ये नव भेद हैं। इनके विषय में वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनसे लेकर जो अन्य उपयोग हैं उनमें भावरूप से जितने उपयुक्त भाव हैं, वे सब आगमभावबंध हैं।[२]

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २७६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १४, पृ. ७।

नोआगमभावबंध के भी दो भेद हैं — जीव भावबंध और अजीव भावबंध।

इनमें से जीवभावबंध के ३ भेद हैं — विपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध, अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और तदुभयप्रत्ययिकजीवभावबंध।

इनमें देवभाव, मनुष्यभाव आदि विपाकप्रत्ययिक जीव भावबंध हैं।

अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध के औपशमिक अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और क्षायिकअविपाक-प्रत्ययिकजीवभावबंध, ऐसे दो भेद हैं।

औपशमिक के उपशांत क्रोध, उपशांत मान आदि भेद हैं।

क्षायिक के क्षीणक्रोध, क्षीणमान आदि भेद हैं।

तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबंध के क्षायोपशमिक एकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक द्वीन्द्रियलब्धि आदि बहुत भेद हैं।

इस प्रकार सूत्र १३ से १९ तक इन सबका विस्तार है।

ऐसे ही अजीव भावबंध के भी तीन भेद हैं — विपाकप्रत्ययिक, अविपाकप्रत्ययिक और तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबंध। विपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोगपरिणतवर्ण, प्रयोगपरिणतशब्द आदि भेद हैं।

अविपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के विस्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

तथा तदुभयप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोग परिणत वर्ण और विस्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

इसके अनंतर द्रव्यबंध के आगम, नोआगम आदि भेद-प्रभेद किये हैं।

इस प्रकार 'बंध' भेद का प्ररूपण किया गया है।

अनंतर 'बंधक' अधिकार में मार्गणाओं में बंधक-अबंधक को विचार करने का कथन है।

अनंतर —

बंधनीय के प्रकरण में — वेदनस्वरूप पुद्गल है, पुद्गल स्कंधस्वरूप हैं और स्कंध वर्गणास्वरूप हैं[१], ऐसा कहा है।

वर्गणाओं का अनुगमन करते हुए आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं —

वर्गणा, वर्गणाद्रव्य समुदाहार, अनंतरोपनिधा, परंपरोपनिधा, अवहार, यवमध्य, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व।

वर्गणा के प्रकरण होने से यहां वर्गणा के १६ अनुयोगद्वार बताये हैं—१. वर्गणा निक्षेप २. वर्गणानयविभाषणता ३. वर्गणाप्ररूपणा ४. वर्गणानिरूपणा ५. वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम ६. वर्गणासांतरनिरंतरानुगम ७. वर्गणाओजयुग्मानुगम ८. वर्गणाक्षेत्रानुगम ९. वर्गणास्पर्शनानुगम १०. वर्गणाकालानुगम ११. वर्गणाअनंतरानुगम १२. वर्गणाभावानुगम १३. वर्गणाउपनयनानुगम १४. वर्गणापरिमाणानुगम १५. वर्गणाभागाभागानुगम और १६. वर्गणा अल्पबहुत्वानुगम।

आगे इस ग्रंथ में 'बंधनअनुयोगद्वार' की चूलिका है जिसमें ५८१ से ७९७ तक सूत्र हैं जो कि २१७ हैं। कुल सूत्र ७९७ हैं।

बंधन अनुयोगद्वार की चूलिका के अंत में ७९७वें सूत्र में 'बंध विधान' के चार भेद किये हैं — प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध।।७९७।।

इस सूत्र की टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने कह दिया है कि — 'श्री भूतबलिभट्टारक' ने 'महाबंध' खण्ड में इन चारों भेदों को विस्तार से लिखा है अतः मैंने यहाँ नहीं लिखा है। यथा —

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७०, पृ. ५१।

यहाँ 'भट्टारक' पद से महान पूज्य अर्थ विवक्षित है। ये भूतबलि आचार्य महान दिगम्बर आचार्य थे, ऐसा समझना।

''एदेसिं चदुण्णं बंधाणं विहाणं भूदबलिभडारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं त्ति अम्मेहिं एत्थ ण लिहिदं। तदो सयले महाबंधे एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि[१]।''

पुस्तक १५—

इस ग्रंथ में चौबीस अनुयोगद्वारों में से ७वाँ निबंधन, ८वाँ प्रक्रम, ९वाँ उपक्रम, १०वाँ उदय और १२वाँ मोक्ष इन ५ अनुयोगद्वारों का कथन है। सूत्र संख्या 'निबंधन' अनुयोगद्वार तक है। कुल सूत्र २० हैं।

आगे प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष अनुयोगद्वारों में सूत्रसंख्या नहीं है।

इसमें मंगलाचरण में श्रीवीरसेनाचार्य ने प्रथम निबंधन अनुयोगद्वार में 'श्री अरिष्टनेमि' भगवान को नमस्कार किया है।

द्वितीय 'प्रक्रम' अनुयोगद्वार में श्री शांतिनाथ भगवान को, तृतीय 'उपक्रम' अनुयोगद्वार में श्री अभिनंदन भगवान को एवं चौथे 'उदय' अनुयोगद्वार में पुनरपि श्रीशांतिनाथ भगवान को नमस्कार किया है।

निबंधन—'निबध्यते तदस्मिन्निति निबंधनम्' इस निरूक्ति के अनुसार जो द्रव्य जिसमें संबद्ध है, उसे 'निबंधन' कहा जाता है। उसके नाम निबंधन, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावनिबंधन ऐसे छह भेद हैं।

इनमें से नाम, स्थापना को छोड़कर शेष सब निबंधन प्रकृत हैं। यह निबंधन अनुयोगद्वार यद्यपि छहों द्रव्यों के निबंधन की प्ररुपणा करता है तो भी यहाँ उसे छोड़कर कर्मनिबंधन को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ अध्यात्म विद्या का अधिकार[२] है।

प्रश्न—निबंधनानुयोगद्वार किसलिए आया है ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है, उनके मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है तथा उन कर्मों के योग्य पुद्गलों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है। आत्मलाभ को प्राप्त हुए उन कर्मों के व्यापार का कथन करने के लिए निबंधनानुयोग द्वार आया है[३]।

उनमें मूलकर्म आठ हैं, उनके निबंधन का उदाहरण देखिये—"उनमें ज्ञानावरण कर्म सब द्रव्यों में निबद्ध है और नो कर्म सर्वपर्यायों में अर्थात् असर्वपर्यायों में—कुछ पर्यायों में वह निबद्ध है[४]।।१।।"

यहाँ 'सब द्रव्यों में निबद्ध है।' यह केवल ज्ञानावरण का आश्रय करके कहा गया है क्योंकि वह तीनों कालों को विषय करने वाली अनंत पर्यायों से परिपूर्ण ऐसे छह द्रव्यों को विषय करने वाले केवलज्ञान का विरोध करने वाली प्रकृति है। 'असर्व—कुछ पर्यायों में निबद्ध है' यह कथन शेष चार ज्ञानावरणीय प्रकृतियों की अपेक्षा कहा गया है।

इत्यादि विषयों का इस अनुयोग में विस्तार है।

२. प्रक्रम अनुयोगद्वार के भी नाम, स्थापना आदि की अपेक्षा छह भेद हैं। द्रव्य प्रक्रम के प्रभेदों में कर्म-प्रक्रम आठ प्रकार का है। नोकर्म प्रक्रम सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १४, सूत्र ७९७ पृ. ५६४। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १, पृ. ४।

क्षेत्रप्रक्रम ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकप्रक्रम के भेद से तीन प्रकार का है। इत्यादि विस्तार को धवला टीका से समझना चाहिए।

३. उपक्रम अनुयोगद्वार में भी पहले नाम, स्थापना आदि से छह भेद किये हैं पुनः द्रव्य उपक्रम के भेद में कर्मोपक्रम के आठ भेद, नो कर्मोपक्रम के सचित्त, अचित्त और मिश्र की अपेक्षा तीन भेद हैं पुनः क्षेत्रोपक्रम — जैसे ऊर्ध्वलोक उपक्रांत हुआ, ग्राम उपक्रांत हुआ व नगर उपक्रांत हुआ आदि।

काल उपक्रम में — बसंत उपक्रांत हुआ, हेमंत उपक्रांत हुआ आदि। यहाँ ग्रंथ में कर्मोपक्रम प्रकृत होने से उसके चार भेद हैं — बंधन उपक्रम, उदीरणा उपक्रम, उपशामना उपक्रम और विपरिणाम उपक्रम।

इसी प्रकार इन सबका इस अनुयोगद्वार में विस्तार है।

४. उदय अनुयोगद्वार में नामादि छह निक्षेप घटित करके 'नोआगमकर्मद्रव्य उदय' प्रकृत है, ऐसा समझना चाहिए।

वह कर्मद्रव्य उदय चार प्रकार का है — प्रकृति उदय, स्थितिउदय, अनुभाग उदय और प्रदेश उदय।

इन सभी में स्वामित्व की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं। जैसे —

प्रश्न — पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अंतराय इनके वेदक कौन हैं ?

उत्तर — इनके वेदक सभी छद्मस्थ जीव होते हैं,[१] इत्यादि। इस प्रकार से यहाँ संक्षेप में इन अनुयोगद्वारों के नमूने प्रस्तुत किये हैं।

५. मोक्ष — इसमें श्री मल्लिनाथ भगवान को नमस्कार करके टीकाकार ने मोक्ष के चार निक्षेप कहकर नोआगम द्रव्यमोक्ष के तीन भेद किये हैं — मोक्ष, मोक्षकारण और मुक्त।

जीव और कर्मों का पृथक् होना मोक्ष है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये मोक्ष के कारण हैं। समस्त कर्मों से रहित अनंत दर्शन, ज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण, कृतकृत्य जीव को मुक्त कहा गया है।[२]

इस १५वें ग्रंथ की टीका को मैंने आश्विन शु. १५, वी.सं. २५३२, हस्तिनापुर में पूर्ण किया है।

पुस्तक १६ —

'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बंधन, निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय और मोक्ष ये ग्यारह अनुयोगद्वार नवमी पुस्तक से पंद्रहवीं पुस्तक तक आ चुके हैं। अब आगे के १२. संक्रम, १३. लेश्या, १४. लेश्या कर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व, १८. भवधारणीय, १९. पुद्गलात्त २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व ये १३ अनुयोगद्वार शेष हैं। इस सोलहवीं पुस्तक में इन सबका वर्णन है।

इस ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं, मात्र धवला टीका में ही इन अनुयोगद्वारों का विस्तार है।

१. संक्रम — अनुयोग द्वार के भी छह भेद करके पुनः कर्मसंक्रम के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश संक्रम भेद किये हैं।

विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है कि — चार आयु कर्मों का संक्रम नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है, आदि।

२. लेश्या — इसके भी नामलेश्या, स्थापनालेश्या, द्रव्यलेश्या और भावलेश्या भेद किये हैं।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. २८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६ ।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण में कारणभूत जो मिथ्यात्व, असंयम और कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति होती है उसे नो आगमभाव लेश्या कहते हैं।[१]

भावलेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह भेद हैं।

३. लेश्याकर्म—इसमें छहों लेश्याओं के लक्षण—'चंडो ण मुवइ वेरं' इत्यादि बताये गये हैं।

४. लेश्यापरिणाम—कौन लेश्याएं किस स्वरूप से और किस वृद्धि अथवा हानि के द्वारा परिणमन करती हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ 'लेश्या परिणाम' अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है।

इसमें 'षट्स्थान पतित' का स्वरूप कहा गया है।

५. सातासात अनुयोगद्वार—इसके समुत्कीर्तना, अर्थपद, परमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ऐसे पांच अवान्तर अनुयोगद्वार हैं। समुत्कीर्तना में-एकांत सात, अनेकांत सात, एकांत असात और अनेकांत असात।

अर्थ पद में—सातास्वरूप से बांधा गया जो कर्म संक्षेप व प्रतिक्षेप से रहित होकर सातास्वरूप से वेदा जाता है वह एकांतसात है। इससे विपरीत अनेकांत सात है[२] इत्यादि।

६. दीर्घ-ह्रस्व—इन अनुयोगद्वार के भी चार भेद हैं—प्रकृतिदीर्घ, स्थितिदीर्घ, अनुभागदीर्घ और प्रदेशदीर्घ।

आठ प्रकृतियों का बंध होने पर प्रकृति दीर्घ और उनसे कम का बंध होने पर नो प्रकृतिदीर्घ होता है[३]।

ऐसे ही ह्रस्व में प्रकृति ह्रस्व, स्थिति ह्रस्व आदि चार भेद हैं।

एक-एक प्रकृति को बांधने वाले के प्रकृति ह्रस्व है इत्यादि।

७. भवधारणीय—इस अनुयोगद्वार में भव के तीन भेद हैं—ओघभव, आदेशभव और भवग्रहण भव।

आठ कर्मजनित जीव के परिणाम का नाम ओघभव है। चारगति नामकर्मों का या उनसे उत्पन्न जीव परिणामों को आदेश भव कहते हैं।

भुज्यमान आयु को निर्जीण करके जिससे अपूर्व आयु कर्म उदय को प्राप्त हुआ है, उसके प्रथम समय में उत्पन्न 'व्यंजन' संज्ञा वाले जीव परिणाम को अथवा पूर्व शरीर के परित्यागपूर्वक उत्तरशरीर के ग्रहण करने को 'भवग्रहणभव' कहा जाता है। उनमें यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है।[४]

८. पुद्गलात्त—इस अनुयोगद्वार में नामपुद्गल, स्थापनापुद्गल, द्रव्यपुद्गल और भावपुद्गल ऐसे चार भेद हैं।

यहाँ आत्त-शब्द का अर्थ गृहीत है अतः यहाँ 'पुद्गलात्त' पद से आत्मसात् किये गये पुद्गलों का ग्रहण है। वे पुद्गल छह प्रकार से ग्रहण किये जाते हैं—ग्रहण से, परिणाम से, उपभोग से, आहार से, ममत्व से और परिग्रह से। इत्यादि।

९. निधत्तानिधत्त—इस अनुयोगद्वार में भी प्रकृतिनिधत्त, स्थितिनिधत्त, अनुभागनिधत्त और प्रदेशनिधत्त ऐसे चार भेद हैं।

जो प्रदेशाग्र निधत्तीकृत हैं—अर्थात् उदय में देने के लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृति में संक्रमण करने के लिए शक्य नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करने के लिए शक्य हैं ऐसे प्रदेशाग्र की निधत्त संज्ञा है।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४८५। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४९८।
३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५०७। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१२।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में प्रविष्ट मुनि के सब कर्म अनिधत्त हैं, इत्यादि।

१०. निकाचितानिकाचित—इस अनुयोगद्वार में प्रकृति निकाचित आदि चार भेद हैं। जो प्रदेशाग्र, अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय में देने के लिए भी शक्य नहीं हैं, वे निकाचित हैं। अनिवृत्तिकरणवर्ती मुनि के सर्वकर्म अनिकाचित हैं, इत्यादि।

११. कर्मस्थिति—इस अनुयोग में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों के प्रमाण की प्ररूपणा कर्मस्थिति 'प्ररूपणा है, ऐसा श्री 'नागहस्तीश्रमण' कहते हैं किन्तु आर्यमंक्षु क्षमाश्रमण का कहना है कि—'कर्मस्थिति संचित सत्कर्म की प्ररूपणा का नाम 'कर्मस्थिति' प्ररूपणा है। यहाँ दोनों उपदेशों के द्वारा प्ररूपणा करना चाहिए, ऐसा श्री वीरसेनस्वामी ने कहा[१] है।

१२. पश्चिमस्कंध—इस अनुयोगद्वार में ओघभव, आदेशभव और भवग्रहणभव ऐसे तीन भेद करके यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है। जो अंतिम भव है उसमें उस जीव के सब कर्मों की बंधमार्गणा, उदयमार्गणा, उदीरणामार्गणा, संक्रममार्गणा और सत्कर्ममार्गणा ये पाँच मार्गणाएं पश्चिम स्कंध अनुयोगद्वार में की जाती हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र का आश्रय करके इन पांच मार्गणाओं की प्ररूपणा कर चुकने पर तत्पश्चात् पश्चिम भव ग्रहण में सिद्धि को प्राप्त होने वाले जीव की यह अन्य प्ररूपणा करना चाहिए[२] इत्यादि।

१३. अल्पबहुत्व—इस अनुयोगद्वार में 'नागहस्तिमहामुनि' सत्कर्म की मार्गणा करते हैं और यह उपदेश प्रवाहस्वरूप से आया हुआ परंपरागत है। सत्कर्म चार प्रकार का है—प्रकृतिसत्कर्म, स्थिति सत्कर्म, अनुभाग सत्कर्म और प्रदेश सत्कर्म। इनमें से प्रकृति सत्कर्म के मूल और उत्तर की अपेक्षा दो भेद करके मूल प्रकृतियों के स्वामी को लेकर कहते हैं—"पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पांच अंतराय प्रकृतियों के सत्कर्म का स्वामी कौन है ? इनके सत्कर्म के स्वामी सब छद्मस्थ जीव हैं। इत्यादि रूप से अल्पबहुत्व का विस्तार से कथन किया गया है।[३]

इस प्रकार यहाँ सोलहवें ग्रंथ में इन उपर्युक्त कथित शेष १३ अनुयोगद्वारों को पूर्ण किया है।

उपसंहार यह है कि—कृति, वेदना, स्पर्श आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में से 'कृति और वेदना' नाम के मात्र दो अनुयोगद्वारों में 'वेदनाखण्ड' नाम से चौथा खण्ड विभक्त है। पुनश्च 'स्पर्श' आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक २२ अनुयोगद्वारों में 'वर्गणाखण्ड' नाम से पांचवां खण्ड लिया गया है। यहाँ तक पाँच खंडों को सोलह पुस्तकों में विभक्त किया है। छठे महाबंध खण्ड में सात पुस्तकें विभक्त हैं जो कि हिन्दी अनुवाद होकर छप चुकी हैं।

भगवान महावीर की वाणी से संबंध—इन 'षट्खण्डागम' सूत्र ग्रंथराज का भगवान महावीर की वाणी से सीधा संबंध स्वीकार किया गया है। जैसा कि श्री वीरसेनाचार्य ने नवमी पुस्तक में लिखा है—

"**लोहाइरिए सग्गलोगं गदे**[४].....।

इस प्रकरण को मैंने प्रारंभ में ही उद्धृत किया है।

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो। बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स।।

श्रीधरसेनाचार्य महामुनीन्द्र जयवंत होवें कि जिन्होंने 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' नाम के शैल—पर्वत को

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१८। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१९। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५२२। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. १३३।

बुद्धिरूपी मस्तक से उद्धृत करके — उठा करके श्रीपुष्पदंत एवं श्री भूतबलि ऐसे दो महामुनियों को समर्पित किया है। अनंतर —

जो टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं उनके रचयिता सभी टीकाकारों को मेरा कोटि-कोटि नमन है कि जिनके प्रसाद से श्रीवीरसेनस्वामी ने ज्ञान प्राप्त किया होगा। पुनश्च —

श्री वीरसेनस्वामी के हम सभी पर आज अनंत उपकार हैं कि जिनकी इस धवल-शुभ्र-उज्ज्वल-धवलाटीका के किंचित् मात्र अंश को मैंने समझा है।

इसमें पूर्वजन्म के संस्कार, वर्तमान में सरस्वती की महती कृपा, प्रथम क्षुल्लिका दीक्षागुरु श्री आचार्य देशभूषण जी एवं आर्यिका दीक्षा के गुरु के गुरु इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य एवं उनके प्रथम शिष्य पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज (आर्यिका दीक्षा के गुरु) का मंगल आशीर्वाद ही मेरे इस श्रुतज्ञान में निमित्त है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस ग्रंथ की टीका-सिद्धान्तचिंतामणि को मैंने वैशाख कृ. २, वी.नि.सं. २५३३, दिनाँक ४-४-२००७ को पूर्ण की है। इस षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड में २३७५, द्वितीय खण्ड में १५९४, तृतीय खण्ड में ३२४, चतुर्थ खण्ड में १५२५ और पाँचवें खण्ड में १०२३ ऐसे १६ ग्रंथों में कुल ६८४१ सूत्र हैं और मेरे द्वारा लिखित सिद्धांतचिंतामणि टीका के ३१०७ पृष्ठ हैं। आज मैंने अपनी आर्यिका दीक्षा के ५१ वर्ष पूर्ण कर इस चिंतामणि टीका को पूर्ण करके अपने आध्यात्मिक जीवन पर कलशारोहण किया है। भगवान शांतिनाथ की कृपा प्रसाद से साढ़े ग्यारह वर्ष में इस टीका को पूर्णकर आनंद का अनुभव करते हुए भावश्रुत की प्राप्ति के लिए 'महाग्रंथराज षट्खण्डागम' को अनंत-अनंत बार नमस्कार करती हूँ।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।
द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते[१]।।

निंदक-अपकारी भी भले हैं

तीर्थेशा सदृशो गुणैरनणुभिः सर्वेऽपि धैर्यादिभिः,
सन्त्यप्येवमधीश विश्व विदितास्ते ते गुणा प्रीणनाः।
तत्सर्वं कमठात्तथाहि महतां शत्रौः कृतापक्रियात्,
ख्यातिर्या महती न जातुचिदसौ मित्रात्कृतोपक्रियात्।।

हे स्वामिन्! धैर्य आदि बड़े-बड़े गुणों से यद्यपि सभी तीर्थंकर समान हैं तथापि सबको संतुष्ट करने वाले जो गुण संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं वे सब एक कमठ के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं। सो ठीक है क्योंकि अपकार करने वाले शत्रु से महापुरुषों की जो ख्याति होती है वह उपकार करने वाले मित्र से कभी नहीं होती?

—श्री गुणभद्राचार्य, उत्तरपुराण

१. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वित) पु. १, पृ. २।

अन्तरपरूवणासुत्ताणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	४
२.	ओघेण मिच्छादिट्ठीणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	६
३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	७
४.	उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।	८
५.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	९
६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१०
७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	११
८.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१२
९.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४
१०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४
११.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१४
१२.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१८
१३.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१८
१४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९
१५.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१९
१६.	चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२१
१७.	उक्कस्सेण छम्मासं।	२१
१८.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२१
१९.	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।	२२
२०.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२२
२१.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२५
२२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२५
२३.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	२५
२४.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२६
२५.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	२७
२७.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	२७
२८.	पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठी-णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२९
२९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	२९
३०.	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	२९
३०.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	३१
३२.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३१
३३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	३१
३४.	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	३१
३५.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	३४
३६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	३५
३७.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।	३५
३८.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति ओघं।	३६
३९.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	४०
४०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४०
४१.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।	४०
४२.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	४१
४३.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४१
४४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	४१
४५.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	४१
४६.	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	४४
४७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४४
४८.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	४४
४९.	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	४५
५०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४६
५१.	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।	४६
५२.	पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	४७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	४७
५४.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	४८
५५.	एदं गदिं पडुच्च अंतरं।	४८
५६.	गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं।	४८
५७.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	५०
५८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	५०
५९.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।	५१
६०.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	५२
६१.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	५२
६२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	५२
६३.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	५२
६४.	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	५३
६५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	५४
६६.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	५४
६७.	संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	५५
६८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	५५
६९.	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।	५५
७०.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	५६
७१.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	५६
७२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	५७
७३.	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं।	५८
७४.	चदुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	५८
७५.	उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं।	५८
७६.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।	५८
७७.	सजोगिकेवली ओघं।	५८
७८.	मणुस अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	५९
७९.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	५९
८०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	५९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८१.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।	५९
८२.	एदं गदिं पडुच्च अंतरं।	५९
८३.	गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	५९
८४.	देवगदीए देवगदीए मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	६१
८५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	६१
८६.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	६२
८७.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	६३
८८.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	६३
८९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं।	६३
९०.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	६३
९१.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासिय-देवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	६४
९२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	६४
९३.	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	६४
९४.	सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं।	६४
९५.	आणत जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	६५
९६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	६५
९७.	उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं ऊणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	६६
९८.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं।	६६
९९.	अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च (णत्थि) अंतरं, णिरंतरं।	६७
१००.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।	६७
१०१.	इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	६८
१०२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्धा भवग्गहणं।	६९
१०३.	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्कोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	६९
१०४.	बादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	६९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१०५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	६९
१०६.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	६९
१०७.	एवं बादरेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं।	६९
१०८.	सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	७०
१०९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	७०
११०.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।	७०
१११.	बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदिय तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	७१
११२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	७१
११३.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	७१
११४.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	७२
११५.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	७२
११६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	७२
११७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं।	७२
११८.	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि सागरोवम-सदपुधत्तं।	७२
११९.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	७४
१२०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	७४
१२१.	उक्कस्सेण सागरोपमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरो-वमसदपुधत्तं।	७४
१२२.	चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडि ओघं।	७६
१२३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	७६
१२४.	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरो-वमसदपुधत्तं।	७६
१२५.	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	७७
१२६.	सजोगिकेवली ओघं।	७७
१२७.	पंचिंदियअपज्जत्ताणं वेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो।	७८
१२८.	एवमिंदियं पडुच्च अंतरं।	७८
१२९.	गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	७८
१३०.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइयबादर-सुहुमपज्जत्तम-पज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	८०
१३१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	८१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१३२.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	८१
१३३.	वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	८१
१३४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	८१
१३५.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	८१
१३६.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	८४
१३७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	८४
१३८.	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।	८४
१३९.	तसकाइय — तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	८५
१४०.	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	८५
१४१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, अंतोमुहुत्तं।	८५
१४२.	उक्कस्सेण सागरोवम सहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	८५
१४३.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	८६
१४४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	८७
१४५.	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बेसागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	८७
१४६.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	८८
१४७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	८८
१४८.	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	८८
१४९.	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	८८
१५०.	सजोगिकेवली ओघं।	८८
१५१.	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।	८९
१५२.	एदं कायं पडुच्च अंतरं। गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	८९
१५३.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालिय-कायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्त-संजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९०
१५४.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एकसमयं।	९१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५५.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	९१
१५६.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९१
१५७.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	९१
१५८.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९१
१५९.	चदुण्हं खवाणमोघं।	९१
१६०.	ओरालिय मिस्स कायजोगीसु मिच्छादिट्ठीण मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९२
१६१.	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	९२
१६२.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९२
१६३.	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	९२
१६४.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	९२
१६५.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९३
१६६.	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	९३
१६७.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	९३
१६८.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९३
१६९.	वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो।	९४
१७०.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	९४
१७१.	उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं।	९४
१७२.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९४
१७३.	सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो।	९४
१७४.	आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	९५
१७५.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	९५
१७६.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९५
१७७.	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो।	९६
१७८.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदए मिच्छादिट्ठीणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९७
१७९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	९७
१८०.	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि।	९८
१८१.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	९८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१८२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तं।	९९
१८३.	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।	९९
१८४.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	९९
१८५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१००
१८६.	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।	१००
१८७.	दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं।	१०१
१८८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१०१
१८९.	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।	१०१
१९०.	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०२
१९१.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१०२
१९२.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१०२
१९३.	पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१०३
१९४.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०३
१९५.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१०३
१९६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	१०३
१९७.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	१०३
१९८.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ? णिरंतरं।	१०४
१९९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१०४
२००.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	१०५
२०१.	दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१०६
२०२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१०६
२०३.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	
२०४.	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०६
२०५.	उक्कस्सेण वासं सादिरेयं।	१०६
२०६.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१०६
२०७.	णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१०६
२०८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१०७
२०९.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१०७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२१०.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामगो त्ति मूलोघं।	१०७
२११.	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०७
२१२.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१०९
२१३.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१०९
२१४.	अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	११०
२१५.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	११०
२१६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११०
२१७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	११०
२१८.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	११०
२१९.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	११०
२२०.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	११०
२२१.	अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।	११०
२२२.	सजोगिकेवली ओघं।	१११
२२३.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो।	११२
२२४.	अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	११३
२२५.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	११३
२२६.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतर।	११३
२२७.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।	११३
२२८.	सजोगिकेवली ओघं।	११३
२२९.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	११४
२३०.	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	११४
२३१.	एगजीवं णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	११५
२३२.	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	११५
२३३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११५
२३४.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	११५
२३५.	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिंरतरं।	११६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११६
२३७.	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।	११६
२३८.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	११८
२३९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११८
२४०.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	११८
२४१.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	११९
२४२.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	११९
२४३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११९
२४४.	उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	११९
२४५.	चदुण्हं खवाणमोघं। णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं।	११९
२४६.	मणपज्जवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२१
२४७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२१
२४८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१२१
२४९.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१२२
२५०.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१२२
२५१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२२
२५२.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	१२२
२५३.	चदुण्हं खवगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१२२
२५४.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१२२
२५५.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२२
२५६.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।	१२३
२५७.	अजोगिकेवली ओघं।	१२३
२५८.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति मणपज्जवणाणिभंगो।	१२५
२५९.	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	१२५
२६०.	सजोगिकेवली ओघं।	१२५
२६१.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२६
२६२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२६
२६३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१२६
२६४.	दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१२६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२६५.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१२६
२६६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२६
२६७.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	१२७
२६८.	दोण्हं खवाणमोघं।	१२७
२६९.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२९
२७०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१२८
२७१.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१२८
२७२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१२८
२७३.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१२९
२७४.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२९
२७५.	खवाणमोघं।	१२९
२७६.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो।	१२९
२७७.	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२९
२७८.	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१२९
२७९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१३०
२८०.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१३०
२८१.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं।	१३०
२८२.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।	१३२
२८३.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१३२
२८४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो, अंतोमुहुत्तं।	१३२
२८५.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	१३३
२८६.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१३४
२८७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१३४
२८८.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	१३४
२८९.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१३६
२९०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१३६
२९१.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि।	१३६
२९२.	चदुण्हं खवगाणमोघं।	१३६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९३.	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	१३८
२९४.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	१३८
२९५.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	१३८
२९६.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४०
२९७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४०
२९८.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।	१४०
२९९.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१४१
३००.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	१४१
३०१.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि।	१४१
३०२.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु-मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४३
३०३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४३
३०४.	उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१४३
३०५.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१४३
३०६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	१४३
३०७.	उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१४३
३०८.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४३
३०९.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४५
३१०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४५
३११.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१४५
३१२.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१४५
३१३.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	१४५
३१४.	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	१४५
३१५.	संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४५
३१६.	अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४५
३१७.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४६
३१८.	उक्कस्समंतोमुहुत्तं।	१४६
३१९.	तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१४७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३२०.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१४७
३२१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४७
३२२.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४७
३२३.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१४७
३२४.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१४७
३२५.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४७
३२६.	चउण्हं खवगा ओघं।	१४७
३२७.	सजोगिकेवली ओघं।	१४७
३२८.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	१४९
३२९.	अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१४९
३३०.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५०
३३१.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५५
३३२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५५
३३३.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	१५५
३३४.	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो।	१५६
३३५.	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं।	१५६
३३६.	सजोगिकेवली ओघं।	१५६
३३७.	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५७
३३८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५७
३३९.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	१५७
३४०.	संजदासंजदपमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५७
३४१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५७
३४२.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१५७
३४३.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१५९
३४४.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१५९
३४५.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५९
३४६.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१५९
३४७.	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	१५९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३४८.	सजोगिकेवली ओघं।	१५९
३४९.	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो।	१६०
३५०.	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१६०
३५१.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६१
३५२.	उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि।	१६१
३५३.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१६१
३५४.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६१
३५५.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१६१
३५६.	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६३
३५७.	उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि।	१६३
३५८.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६३
३५९.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६३
३६०.	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६३
३६१.	उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि।	१६३
३६२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६३
३६३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६३
३६४.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६३
३६५.	उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि।	१६३
३६६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६४
३६७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६४
३६८.	तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६५
३६९.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१६५
३७०.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६५
३७१.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	
३७२.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१६५
३७३.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	१६५
३७४.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१६५
३७५.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमयं।	१६८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३७६.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१६९
३७७.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१६९
३७८.	मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१६९
३७९.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।	१७०
३८०.	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसवेदभंगो।	१७०
३८१.	चदुण्हं खवाणमोघं।	१७०
३८२.	असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१७१
३८३.	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१७१
३८४.	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं।	१७२
३८५.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघं।	१७२
३८६.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं।	१७२
३८७.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ।	१७३
३८८.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१७४
३८९.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७४
३९०.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीओ।	१७४
३९१.	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च ओघभंगो।	१७६
३९२.	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७६
३९३.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ।	१७६
३९४.	चदुण्हं खवाणमोघं।	१७६
३९५.	सजोगिकेवली ओघं।	१७६
३९६.	अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो।	१७७
३९७.	णवरि विसेसो, अजोगिकेवली ओघं।	१७७

भावपरूवणासुत्ताणि

१.	भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	१८१
२.	ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो? ओदइओ भावो।	१९४
३.	सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।	१९५
४.	सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	१९६
५.	असंजदसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।	१९७
६.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	१९७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	१९८
८.	चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? ओवसमिओ भावो।	१९९
९.	चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवली त्ति को भावो ? खइओ भावो।	२००
१०.	आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो।	२०४
११.	सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।	२०४
१२.	सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२०४
१३.	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा, खइओ वा, खओवसमिओ वा भावो।	२०४
१४.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२०४
१५.	एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं।	२०६
१६.	विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छा-दिट्ठीणमोघं।	२०६
१७.	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।	२०६
१८.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२०६
१९.	तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदाणमोघं।	२०७
२०.	णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।	२०७
२१.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२०७
२२.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२०८
२३.	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	२०९
२४.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवीओ च मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२०९
२५.	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो।	२०९
२६.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२०९
२७.	सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	२१०
२८.	अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।	२१०
२९.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२१०
३०.	इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३१.	कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१३
३२.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-कायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२१४
३३.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं।	२१४
३४.	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खइओ वा खओवसमिओ वा भावो।	२१४
३५.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२१४
३६.	सजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।	२१५
३७.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो।	२१५
३८.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी ओघं।	२१६
३९.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदो त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२१६
४०.	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं।	२१६
४१.	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२१८
४२.	अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२१८
४३.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।	२२०
४४.	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।	२२०
४५.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासण-सम्मादिट्ठी ओघं।	२२२
४६.	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था ओघं।	२२३
४७.	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।	२२३
४८.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं।	२२३
४९.	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।	२२६
५०.	सामाइयछेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२२६
५१.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं।	२२६
५२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं।	२२६
५३.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं।	२२६
५४.	संजदासंजदा ओघं।	२२७
५५.	असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं।	२२७
५६.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२२८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५७.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	२२८
५८.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	२२८
५९.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदुट्ठाणी ओघं।	२२९
६०.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं।	२२९
६१.	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२२९
६२.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२३०
६३.	अभवसिद्धिय त्ति को भावो ? पारिणामिओ भावो।	२३०
६४.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२३१
६५.	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खइओ भावो।	२३१
६६.	खइयं सम्मत्तं।	२३१
६७.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२३१
६८.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२३२
६९.	खइयं सम्मत्तं।	२३२
७०.	चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? ओवसमिओ भावो।	२३२
७१.	खइयं सम्मत्तं।	२३२
७२.	चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।	२३२
७३.	खइयं सम्मत्तं।	२३२
७४.	वेदयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२३४
७५.	खओवसमियं सम्मत्तं।	२३४
७६.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२३४
७७.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२३४
७८.	खओवसमियं सम्मत्तं।	२३४
७९.	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी त्ति को भावो ? उवसमिओ भावो।	२३५
८०.	उवसमियं सम्मत्तं।	२३५
८१.	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।	२३५
८२.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो ? खओवसमिओ भावो।	२३५
८३.	उवसमियं सम्मत्तं।	२३५
८४.	चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो ? उवसमिओ भावो।	२३५
८५.	उवसमियं सम्मत्तं।	२३५
८६.	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२३६
८७.	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।	२३६
८८.	मिच्छादिट्ठी ओघं।	२३६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८९.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२३७
९०.	असण्णि त्ति को भावो ? ओदइओ भावो।	२३७
९१.	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली त्ति ओघं।	२३८
९२.	अणाहाराणं कम्मइयभंगो।	२३८
९३.	णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो।	२३८

अप्पाबहुगपरूवणासुत्ताणि

१.	अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य।	२४२
२.	ओघेण तिसु अद्धासु उवसमा पवेसेण तुल्ला थोवा।	२४४
३.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय।	२४४
४.	खवा संखेज्जगुणा।	२४५
५.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	२४५
६.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	२४५
७.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	२४५
८.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२४६
९.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२४६
१०.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	२४६
११.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२४७
१२.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२४७
१३.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२४९
१४.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	२४९
१५.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२४९
१६.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२४९
१७.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२४९
१८.	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२५०
१९.	उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५०
२०.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५१
२१.	पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२५२
२२.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२५२
२३.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२५२
२४.	एवं तिसु वि अद्धासु।	२५२
२५.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२५२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२६.	खवा संखेज्जगुणा।	२५२
२७.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी।	२५६
२८.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२५६
२९.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५६
३०.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५६
३१.	असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२५७
३२.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५७
३३.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५७
३४.	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।	२५९
३५.	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	२५९
३६.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२५९
३७.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५९
३८.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२५९
३९.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२६०
४०.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६१
४१.	तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु सव्वत्थोवा संजदासंजदा।	२६२
४२.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६२
४३.	सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा।	२६२
४४.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६२
४५.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६३
४६.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२६४
४७.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६४
४८.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६५
४९.	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी।	२६५
५०.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६५
५१.	णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२६६
५२.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२६६
५३.	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	२६७
५४.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	२६७
५५.	खवा संखेज्जगुणा।	२६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५६.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	२६७
५७.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	२६८
५८.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	२६८
५९.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२६९
६०.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२६९
६१.	संजदासंजदा संखेज्जगुणा।	२६९
६२.	सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२६९
६३.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२६९
६४.	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२६९
६५.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२६९
६६.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७०
६७.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७०
६८.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७०
६९.	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२७०
७०.	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७०
७१.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७१
७२.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७१
७३.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७१
७४.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७१
७५.	णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२७२
७६.	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७२
७७.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७२
७८.	एवं तिसु अद्धासु।	२७२
७९.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२७२
८०.	खवा संखेज्जगुणा।	२७२
८१.	देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	२७४
८२.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७४
८३.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७४
८४.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७४
८५.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७४
८६.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८७.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७५
८८.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्प-वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो।	२७५
८९.	सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइभंगो।	२७६
९०.	आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी।	२७६
९१.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७६
९२.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७६
९३.	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७६
९४.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७६
९५.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७६
९६.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७७
९७.	अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७८
९८.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२७८
९९.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७८
१००.	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७८
१०१.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७८
१०२.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७८
१०३.	इंदियाणुवादेण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८०
१०४.	कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८१
१०५.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकाय-जोगीसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	२८२
१०६.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव।	२८२
१०७.	खवा संखेज्जगुणा।	२८३
१०८.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव।	२८३
१०९.	सजोगिकेवली पवेसणेण तेत्तिया चेव।	२८३
११०.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	२८३
१११.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२८४
११२.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२८४
११३.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	२८४
११४.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८४
११५.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११६.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८४
११७.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	२८४
११८.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पावहु-अमोघं।	२८५
११९.	एवं तिसु अद्धासु।	२८५
१२०.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२८५
१२१.	खवा संखेज्जगुणा।	२८५
१२२.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।	२८६
१२३.	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८६
१२४.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८६
१२५.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	२८६
१२६.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२८६
१२७.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८६
१२८.	वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो।	२८७
१२९.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	२८७
१३०.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८७
१३१.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८७
१३२.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२८७
१३३.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८७
१३४.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८८
१३५.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२८८
१३६.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८८
१३७.	कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।	२८९
१३८.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८९
१३९.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८९
१४०.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	२८९
१४१.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२९०
१४२.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९०
१४३.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९०
१४४.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	२९२
१४५.	खवा संखेज्जगुणा।	२९२
१४६.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२९२
१४७.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२९३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४८.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	२९३
१४९.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९३
१५०.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९३
१५१.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९३
१५२.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९३
१५३.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२९४
१५४.	उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९४
१५५.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९४
१५६.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२९४
१५७.	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९४
१५८.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९४
१५९.	एवं दोसु अद्धासु।	२९४
१६०.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२९४
१६१.	खवा संखेज्जगुणा।	२९४
१६२.	पुरिसवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	२९५
१६३.	खवा संखेज्जगुणा।	२९५
१६४.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२९५
१६५.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२९५
१६६.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	२९५
१६७.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९५
१६८.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९५
१६९.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९६
१७०.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९६
१७१.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहु-अमोघं।	२९६
१७२.	एवं दोसु अद्धासु।	२९६
१७३.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२९६
१७४.	खवा संखेज्जगुणा।	२९६
१७५.	णउंसयवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	२९७
१७६.	खवा संखेज्जगुणा।	२९७
१७७.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२९७
१७८.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	२९७
१७९.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	२९७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१८०.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९७
१८१.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९७
१८२.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२९७
१८३.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	२९७
१८४.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं।	२९८
१८५.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	२९८
१८६.	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९८
१८७.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२९९
१८८.	एवं दोसु अद्धासु।	२९९
१८९.	सव्वत्थोवा उवसमा।	२९९
१९०.	खवा संखेज्जगुणा।	२९९
१९१.	अवगदवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३००
१९२.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३००
१९३.	खवा संखेज्जगुणा।	३००
१९४.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३००
१९५.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	३००
१९६.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३००
१९७.	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३०२
१९८.	खवा संखेज्जगुणा।	३०२
१९९.	णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसाहिया।	३०२
२००.	खवा संखेज्जगुणा।	३०२
२०१.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३०३
२०२.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३०३
२०३.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३०३
२०४.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३०३
२०५.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३०३
२०६.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३०३
२०७.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	३०३
२०८.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पा-बहुअमोघं।	३०४
२०९.	एवं दोसु अद्धासु।	३०४
२१०.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३०४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२११.	खवा संखेज्जगुणा।	३०४
२१२.	अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था।	३०४
२१३.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा।	३०५
२१४.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	३०५
२१५.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३०५
२१६.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगण्णाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	३०६
२१७.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३०६
२१८.	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३०७
२१९.	उवसन्तकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३०७
२२०.	खवा संखेज्जगुणा।	३०७
२२१.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३०७
२२२.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३०७
२२३.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३०७
२२४.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३०८
२२५.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३०८
२२६.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पा-बहुगमोघं।	३०८
२२७.	एवं तिसु अद्धासु।	३०८
२२८.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३०८
२२९.	खवा संखेज्जगुणा।	३०८
२३०.	मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३०९
२३१.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३०९
२३२.	खवा संखेज्जगुणा।	३०९
२३३.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३०९
२३४.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३०९
२३५.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३०९
२३६.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३०९
२३७.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३०९
२३८.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१०
२३९.	एवं तिसु अद्धासु।	३१०
२४०.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३१०
२४१.	खवा संखेज्जगुणा।	३१०
२४२.	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	३१०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२४३.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३१०
२४४.	संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३१२
२४५.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३१२
२४६.	खवा संखेज्जगुणा।	३१२
२४७.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३१२
२४८.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	३१३
२४९.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३१३
२५०.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३१३
२५१.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३१३
२५२.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३१३
२५३.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१३
२५४.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१३
२५५.	एवं तिसु अद्धासु।	३१३
२५६.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३१३
२५७.	खवा संखेज्जगुणा।	३१३
२५८.	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३१४
२५९.	खवा संखेज्जगुणा।	३१५
२६०.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३१५
२६१.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३१५
२६२.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३१५
२६३.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१५
२६४.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१५
२६५.	एवं दोसु अद्धासु।	३१५
२६६.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३१५
२६७.	खवा संखेज्जगुणा।	३१५
२६८.	परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।	३१६
२६९.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३१६
२७०.	पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	३१६
२७१.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१६
२७२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा।	३१७
२७३.	खवा संखेज्जगुणा।	३१७
२७४.	जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो।	३१७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२७५.	संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि।	३१७
२७६.	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	३१७
२७७.	उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३१८
२७८.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३१८
२७९.	असंजदेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	३१८
२८०.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३१८
२८१.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३१८
२८२.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	३१८
२८३.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३१८
२८४.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३१८
२८५.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३१८
२८६.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	३२०
२८७.	णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२०
२८८.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	३२०
२८९.	केवलदंसणी केवलणाणि भंगो।	३२१
२९०.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	३२२
२९१.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३२२
२९२.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२२
२९३.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	३२२
२९४.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।	३२२
२९५.	उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२३
२९६.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२३
२९७.	णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३२३
२९८.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२३
२९९.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२३
३००.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।	३२४
३०१.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३२४
३०२.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३२४
३०३.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२४
३०४.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३२४
३०५.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३०६.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२४
३०७.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मप्पा-बहुअमोघं।	३२४
३०८.	सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३२५
३०९.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३२५
३१०.	खवा संखेज्जगुणा।	३२५
३११.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३२५
३१२.	सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव।	३२५
३१३.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च असंखेज्जगुणा।	३२५
३१४.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	२३५
३१५.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३२६
३१६.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३२६
३१७.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२६
३१८.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३२६
३१९.	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२६
३२०.	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३२६
३२१.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३२६
३२२.	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३२६
३२३.	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३२६
३२४.	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं।	३२६
३२५.	एवं तिसु अद्धासु।	३२७
३२६.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३२७
३२७.	खवा संखेज्जगुणा।	३२७
३२८.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठी जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	३२८
३२९.	अभवसिद्धिएसु अप्पाबहुअं णत्थि।	३२८
३३०.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो।	३३०
३३१.	खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३३०
३३२.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३३०
३३३.	खवा संखेज्जगुणा।	३३०
३३४.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३३१
३३५.	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव।	३३१
३३६.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३३१
३३७.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३३१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३३८.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३३१
३३९.	संजदासंजदा संखेज्जगुणा।	३३१
३४०.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३१
३४१.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे खइयसम्मत्तस्स भेदो णत्थि।	३३१
३४२.	वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा।	३३२
३४३.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३३२
३४४.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३३२
३४५.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३२
३४६.	असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे वेदगसम्मत्तस्स भेदो णत्थि।	३३२
३४७.	उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३३३
३४८.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३३३
३४९.	अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३३३
३५०.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३३३
३५१.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३३३
३५२.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३३
३५३.	असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे उवसम-सम्मत्तस्स भेदो णत्थि।	३३३
३५४.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं।	३३४
३५५.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं।	३३५
३५६.	णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३५
३५७.	असण्णीसु णत्थि अप्पाबहुअं।	३३५
३५८.	आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।	३३७
३५९.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३३७
३६०.	खवा संखेज्जगुणा।	३३७
३६१.	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव।	३३७
३६२.	सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव।	३३७
३६३.	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा।	३३७
३६४.	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।	३३८
३६५.	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।	३३८
३६६.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	३३८
३६७.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३८
३६८.	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३३८
३६९.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३७०.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	३३८
३७१.	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पा-बहुअमोघं।	३३८
३७२.	एवं तिसु अद्धासु।	३३९
३७३.	सव्वत्थोवा उवसमा।	३३९
३७४.	खवा संखेज्जगुणा।	३३९
३७५.	अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।	३३९
३७६.	अजोगिकेवली संखेज्जगुणा।	३३९
३७७.	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३९
३७८.	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३३९
३७९.	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।	३३९
३८०.	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	३४०
३८१.	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	३४०
३८२.	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	३४०

मोक्षमार्ग में निर्विघ्न कौन चल सकते हैं?

मइधणगुहं जस्स थिरं सुदगुण वाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्ध लक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।।

जिस मुनि के पास मतिज्ञान रूपी दृढ़ धनुष है, उस धनुष में श्रुतज्ञानरूपी डोरी है और भेद-अभेद रत्नत्रयरूपी अतिशयवान् वाणी है और जिसने परमार्थ में – निज आत्म स्वरूप में अपना लक्ष्य-निशाना लगा रखा है ऐसा मुनि मोक्षमार्ग से कभी भी च्युत नहीं हो सकता है।

लक्ष्य कौन प्राप्त कर सकता है?

जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्जयविहीणो।
तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स।।

जिस प्रकार निशाना लगाने के अभ्यास से रहित पुरुष लक्ष्य का वेध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार श्रुतज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष मोक्षमार्ग में लक्ष्यभूत अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकता है।

– भगवान श्री कुंदकुंददेव

सिद्धान्तचिंतामणिटीका में प्रयुक्त गाथाएँ

क्र.सं.	गाथा	पृष्ठ सं.
१.	**आज्ञामार्गसमुद्भव-मुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।** **विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च।।११।।** (आत्मानुशासन)	१६७
२.	**यः सारः सर्वसारेषु, स सम्यग्दर्शनं मतम्।** **आ मुक्तेर्न हि मां मुञ्चेत्, वृत्तं च विमलीक्रियात्।।** (तत्त्वार्थवार्तिक अ. १, सूत्र २ की टीका)	१६८
३.	**न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।** **श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत् तनुभृताम्।।** (रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक ३४)	१६९
४.	**अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो य।** **ठवणाए कीरंते ण होंति णाममि एए दु।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५)	१८३
५.	**सम्मत्तुप्पत्तीए सावयविरदे अणंतकम्मंसे।** **दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते।।** **खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।** **तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५)	१८४
६.	**ओदइओ उवसमिओ खइयो तह वि य खओवसमिओ य।** **परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाणं तु।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५)	१८५
७.	**गदिलिंग कसाया वि य मिच्छादंसणमसिद्धदण्णाणं।** **लेस्सा असंजमो चिय होंति उदयस्स ट्ठाणाइं।।**	१८६
८.	**एयं ठाणं तिण्णि वियप्पा तह पारिणामिए होंति।** **भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो चेव बोद्धव्वा।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५)	१८९
९.	**इगिवीस अट्ठ तह णव अट्ठारस तिण्णि चेव बोद्धव्वा।** **ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक ५)	१८९

क्र.सं.	गाथा	पृष्ठ सं.
१०.	**दुग तिग चदु पंचेव य संयोगा होंति सन्निवादेसु।** **दस दस पंच य एक्क य भावा छव्वीस पिंडेण।।**	१९०
११.	**णो खइयभावठाणा णो खइउवसमसहावठाणा वा।।** **ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।**	१९३
१२.	**कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।** **खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं।।५८।।**	१९३
१३.	**मिच्छत्ते दस भंगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा।** **तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव।।**	१९४
१४.	**देसे खओवसमिए विरदे खवगाण ऊणवीसं तु।** **ओसामगेसु पुध पुध पणतीसं भावदो भंगा।।** (षट्खण्डागम (धवला टीका), पु. ५)	१९५
१५.	**दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु।** **णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ।।** (कसायपाहुड़ खवणाहियारे)	२५१

चौबीस तीर्थंकरों की सोलह जन्मभूमियों की नामावली

महानुभावों,

अपने नगर के जिनमंदिरों में चौबीस तीर्थंकरों की सोलह जन्मभूमियों के नाम निम्नानुसार लिखवाएं अथवा शिलापट्ट लगवाएं एवं इन तीर्थों की यात्रा करके पुण्यलाभ प्राप्त करें।

प्रेरणा—गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

तीर्थंकर जन्मभूमि	तीर्थंकरों के नाम
१. **अयोध्या (फैजाबाद-उ.प्र.)**	—श्री ऋषभदेव भगवान, श्री अजितनाथ भगवान, श्री अभिनंदननाथ भगवान, श्री सुमतिनाथ भगवान, श्री अनंतनाथ भगवान
२. **श्रावस्ती (बहराइच-उ.प्र.)**	—श्री संभवनाथ भगवान
३. **कौशाम्बी (उ.प्र.)**	—श्री पद्मप्रभु भगवान
४. **वाराणसी (उ.प्र.)**	—श्री सुपार्श्वनाथ भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान
५. **चन्द्रपुरी (वाराणसी) उ.प्र.**	—श्री चन्द्रप्रभु भगवान
६. **काकन्दी** (देवरिया नि.-गोरखपुर) उ.प्र.	—श्री पुष्पदंतनाथ भगवान
७. **भद्रिकापुरी (भद्दिलपुर)**	—श्री शीतलनाथ भगवान
८. **सिंहपुरी (सारनाथ) उ.प्र.**	—श्री श्रेयांसनाथ भगवान
९. **चम्पापुरी (भागलपुर-बिहार)**	—श्री वासुपूज्यनाथ भगवान
१०. **कम्पिलपुरी (फरूक्खाबाद-उ.प्र.)**	—श्री विमलनाथ भगवान
११. **रत्नपुरी (फैजाबाद-उ.प्र.)**	—श्री धर्मनाथ भगवान
१२. **हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.)**	—श्री शांतिनाथ भगवान, श्री कुन्थुनाथ भगवान, श्री अरनाथ भगवान
१३. **मिथिलापुरी**	—श्री मल्लिनाथ भगवान, श्री नमिनाथ भगवान
१४. **राजगृही (नालंदा-बिहार)**	—श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान
१५. **शौरीपुर (बटेश्वर-उ.प्र.)**	—श्री नेमिनाथ भगवान
१६. **कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)**	—श्री महावीर भगवान

विशेष—ज्ञातव्य है कि पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी द्वारा तीर्थंकर भगवन्तों की जन्मभूमियों के विकास का क्रम सफलतापूर्वक जारी है। इस क्रम में हस्तिनापुर, अयोध्या, कुण्डलपुर (नालंदा), राजगृही, सिंहपुरी (सारनाथ) में सुन्दर निर्माण एवं विकास के कार्य सम्पन्न हुए हैं, जिससे कि प्राचीन तीर्थभूमियाँ प्रकाश में आई हैं तथा उनका राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार हुआ है। इसी क्रम में वर्तमान में भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी का भी निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है। आप भी अपने आसपास के क्षेत्र में स्थित तीर्थंकर जन्मभूमियों के विकास हेतु समाज में जागरुकता पैदा करें एवं संगठित होकर उन प्राचीन तीर्थभूमियों का जीर्णोद्धार करें। इस कार्य में हम सदैव आपके साथ हैं।

निवेदक —**अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी**

अध्यक्ष —**कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन, जम्बूद्वीप**

प्रधान कार्यालय —**जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.,** फोन नं.-०१२३३-२८०१८४, २८०२३६